SARVA DARSHAN SANGRAH

OR

AN EPITOME OF THE DIFFERENT
SYSTEMS OF
INDIAN PHYLOSOPHY

BY

MADHAVA CHARYA

TRANSLATED INTO HINDI

BY

PANDIT UDAYA NARAIN SINH S. O.
MADHURAPUR DITT. MOZAFFERPUR

श्रीः ।

सर्वदर्शनसङ्ग्रहः ।

श्रीमन्मध्वाचार्य विरचितः ।
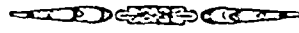
मुजफ्फरपुर-प्रान्तान्तर्गत मधुरापुरनिवासि पं० श्रीउदयनारायणसिंहकृत
भाषाटीकासमेतः ।
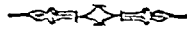
स च

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना
मुम्बय्यां
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।
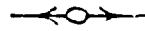
माघ संवत् १९६२. शके १८२७.

भारतवर्षके गौरवस्तम्भ वैश्यवंशावतंस परमोदार देवभाषा (संस्कृत) उद्धारक वैष्णवकुलचूड़ामणि श्रीमान्

सेठ-खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदय.

श्रीमन्!

आपने संस्कृतभाषाकी उन्नति करके हम भारतवासियोंका परम उपकार किया है। ईश्वर-आप ऐसे धर्म्मरक्षक, दानशील और आर्ष एवं आधुनिक ग्रन्थोंके प्रचार करनेवालोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ावे।

प्राचीन ग्रन्थोंमेंसे माध्वाचार्य्यविरचित "सर्वदर्शनसंग्रह" नामक दर्शन ग्रन्थ भारतवर्षमें-भलीभाँति प्रख्यात है--परन्तु ग्रंथ केवल संस्कृतभाषामें होनेके कारण सर्व्वोपयोगी नहीं होते देखकर मैंने इसका भाषामें सरल अनुवाद किया है; जिससे सब लोगोंका उपकार हो।

इस सानुवाद ग्रन्थको आपके करकमलमें अर्पणकर आशा करताहूं कि आप इसे सुन्दर कागजपर शुद्ध छापकर सम्पूर्ण भारतवर्षमें विज्ञापनद्वारा सूचना-दे प्रचारित करेंगे। जिससे लोगोंका उपकार होगा एवं आपकी अतुल कीर्त्ति फैलेगी।

स्थान-मधुरा पुर,
जि० मुज़फ्फरपुर.

आपका-शुभचिन्तक-
उदयनारायणसिंह शा०।

भूमिका ।

भारतभूमि सब रत्नोंकी प्रसवित्री है । भारतवर्ष संसारका प्रदर्शनागार कहकर, भूमण्डलमें प्रसिद्ध है । भारतवर्ष प्रकृतिका प्रियतम निकेतन है । प्रकृति देवीकी विभिन्न भीमकान्त मूर्त्तिका एकत्र समावेश, भारतमें पूर्णरूपसे विकाशित दीख पड़ती है । या गगनस्पर्शी उत्तुङ्गशृङ्ग समन्वित हिमधवलित पर्व्वतमाला या उत्ताल तरङ्गमय भीतिजनक नीलवर्ण सलिलपूर्ण समुद्र, या बहुदूर प्रवाहिनी आवर्त्तमयी सुविस्तीर्णा स्रोतस्वती, या वालुका राशिपूर्ण विभीषिकाकी साक्षात् प्रतिकृती मरुभूमि, या भीषण हिंस्रक श्वापदसंकुल जनमानवविहीन गहन अरण्यानी, या सौधमालापरिशोभित कोलाहलपूर्ण सुन्दरनगरी, या नानाविध सुरस फल पुष्प विभूषित नयन तृप्तिकर सुरम्य उपवन, या लतिका परिवेष्टित सुमधुर पक्षिरव विनादित सुविशाल वृक्षराजि, या श्यामल शस्य परिशोभित कृषकके यत्न परिरक्षित शस्यक्षेत्र (धान्यका खेत), या योगमग्न तपस्वियोंका शान्तिरसास्पद तपोवन—भारतवर्षमें किसीके दृश्यका अभाव नहीं है । भारतविभिन्न भाषाभाषी विभिन्न धर्म्मावलम्बी विभिन्न जातीय लोगोंकी आवासभूमि है । भारतवर्ष भिन्न भूमण्डलके किसी प्रदेशमें जाति, धर्म्म, भाषा, वर्ण, स्वभाव और आचारगत सम्पूर्ण वैसादृश्यका इसप्रकार एकत्र सन्निवेश परिलक्षित नहीं होता । संक्षेपसे, भारतवर्षको क्षुद्रायतन पृथिवी वा छोटा भूमण्डल कहनेसे भी अत्युक्ति दोष नहीं होगा ।

भारत जिसप्रकार प्रागुक्त मनोमुग्धकर नैसर्गिक दृश्यादिमें जगत्‌में सबसे श्रेष्ठ एक समय धन एवं ज्ञानरत्नसे भी भारत उसीप्रकार श्रेष्ठ आसनपर अधिष्ठित था महामूल्य धनरत्नकी प्रसवित्री कहकर मिसरीय, फिनिसीय, इहूदी, ग्रीक, रोम्यान, आरब और चैनिक (चिनदेशका) प्रभृति नाना प्राचीन वैदेशिक जाति वाणिज्य व्यपदेशसे भारतमें आकर, भारतके धनसे अपना २ धनागार (खजाना) परिपूर्ण किये । भारतका अतुल ऐश्वर्य्यप्राप्ति दुराशामें विमोहित होकर, नानाजातीय नानादेशीय, दिग्विजयीगण, भारतको अपने करतलगत करनेके लिये विभिन्नसमयमें प्रयासी हुए हैं, एवं निदारुण उत्पीडनसे निरीह भारतवासीको दस्युक्त उत्पीडित और भयसंत्रस्त कर छोड़ा ।

विधर्म्मी और विजातीय वैदेशिक दस्युदलके पुनः पुनः आक्रमणमें भारतवर्ष विध्वस्त, विपर्य्यस्त और परपदानत होता एवं भारतकी अतुलनीय धनराशि वारम्वार लुटी जाती है बहुतसे वैदेशिक परिव्राजक विभिन्न समयमें चक्षुकर्णके विसम्वाद निवटानेके लिये भारतमें आकर अपनी २ भाषामें भारतकी यशोगीति संग्रथित कर, भारतकी मनोमुग्धकर प्रतिकृति जगत्‌के सामने रखकर, अपनी २ उदारता और महानुभावताके उदाहरण दिखला गये हैं।

प्राचीन भारत जिसप्रकार धन रत्नोंसे जगत्‌में सबसे श्रेष्ठ था । जिससमय पृथिवीका अधिकांश देश असभ्य आममांसभोजी अरण्याचारी मनुष्यद्वारा परिपूर्ण था—उस समय

भारत सभ्यताके उच्चतम चोटीपर अधिष्ठित होकर, अपने सौभाग्यप्रभासे जगत्‌को मुग्ध और पुलकित करता था । जिससमय सम्पूर्ण जगत् घोरतम अज्ञानान्धकारमें समाछन्न था, जिस समय ज्ञान और सभ्यताका क्षीण आलोकभी युरोप आदि महादेशमें शनैः शनैः पादविक्षेपसे नहीं प्रसृत होता था,--उससमय भारत विद्या बुद्धि, ज्ञान और सभ्यताके पूर्ण आलोकसे जगत्‌को आलोकितकर, अविनश्वर गौरव महिमामें सविशेष गौरवान्वित हुआ था । क्या धर्म्म, क्या विज्ञान, क्या दर्शन, क्या गणित, क्या ज्योतिष, क्या भैषज्यतत्त्व, क्या काव्य; क्या पुराण, क्या शिल्प, क्या वाणिज्य, क्या भाषा, क्या साहित्य,—सर्व्वविध विषयोंमें भारत संसारके शीर्षस्थानीय था । भारतका विज्ञान और सभ्यता आरबआदिके द्वारा युरोपमें लाया जाकर युरोपके ज्ञान और सभ्यताको देदीप्यमान आलोकसे समुज्ज्वल किया । इसवी सन् १००० से १७०० पर्य्यन्त भारतके शिष्यस्थानीय अरब, उपदेष्टाके वरणीय पदमें अधिष्ठित रहकर युरोपमें विद्या और ज्ञानकी सुविमलज्योति विकिरणपूर्वक, युरोपको समुद्भासित किया है ।

भारतका सर्व्वविध विषयकअभ्युदय जिसप्रकार सबकी अपेक्षा प्राचीन, उसी परिमाणसे उसका प्राचीनकालीय आख्यानमय इतिहास विद्यमान नहीं, । विभिन्नप्रदेशीय राजन्यवर्गकी धारावाहिक वंशावली और कीर्त्तिकलाप, एवं तदीय आविर्भाव कालादिका विनिर्णाक, वैज्ञानिक इतिहासका प्रवेश द्वारा स्वरूप, सर्व्वाङ्गसुन्दर आख्यानमय प्राचीन इतिस—केवल भारतवर्षहीका क्यों, ग्रीस, रोम, मिसर, फिनिसिया, एसिरिया, वेबिलन र्थिया, पारस्य और चीन प्रभृति किसी देशका सर्व्वाङ्गीन भावसे विद्यमान नहीं । काल्पक उपन्यास और जनश्रुति, सबही देशोंमें अतिप्राचीनकालीय अतीतसाक्षी इतिहासका णीय पदपर समासीन रहा है । किन्तु जो इतिहास अतीतका एकमात्र वर्षीयान् अपक्षपाती क्षि—जो इतिहास प्रकृतप्रस्तावसे समाजका अभ्रान्त उपदेष्टा और परिचालक,—जो इतिस मानवजीवनका और मानवसमाजका यथा यथा प्रतिकृति अङ्कितकर, समाजका विर्भाव उन्नति और अवनति यथोचित कारण, निर्देशपूर्व्वक अभ्रान्तरूपसे प्रदर्शन करता—जो इतिहास सुनिपुण शिल्पविद्का सुकौशल विचित्रित विचित्र फूलकी नाई समाजका यथार्थतत्त्व सुस्पष्टरूपसे प्रकट करता है। सुविमल स्वच्छ दर्पणकी नाई जिसमें समाजकी यथायथ प्रतिकृति प्रतिभापित होती है,--उस वैज्ञानिक इतिहासका यथोपयुक्त उपकरण प्रचुररूपसे संस्कृतसाहित्यमें विद्यमान रहाहै । संस्कृतसाहित्यमें भारतीय आर्यजातिका जातीय जीवन, जातीय इतिहास, जातीय चरित्र, जातीय धर्म, जातीय ज्ञान और जातीय विद्या, बुद्धि, जातीय रीति, नीति, और जातीय सभ्यता स्वर्णाक्षरमें सुस्पष्टरूपसे लिपिबद्ध है । भारत किससमय जो अद्वितीय नाइबुर, ग्रोट, गिबनवा प्रेस्कट आविर्भूत होकर, इन सब वहुमूल्य ऐतिहासिक तत्व एकत्र संग्रहीतकर जगतको अच्छीप्रकार दिखलाकर विमोहित करेगा सो भगवा

जो आर्यजाति अतुलसाहस, विक्रम, तेजस्विता और मनस्विता प्रभावसे भूगण्डलमें अक्षय कीर्ति लाभकरगयी, जो आर्यजाति एकदा पृथिवीमें सब विषयोंमें सर्व्वश्रेष्ठ जाति कहकर परिगणित हुई थी। जो आर्यजाति ज्ञान और सभ्यताका विमल आलोकमें जगत्को उद्भासित कर, जगत्के शिक्षा गुरु बहुसम्मानार्ह वरणीय पदपर अधिरुढ थी—जिस आर्यजातिके गौरव प्रभावसे भारतवर्षका इतिहासके शीर्षस्थानमें विराज रहा है। जिस आर्यजातिके वंशधर कहकर हमलोग परपददलित होकरभी अद्यापि सभ्यसमाजमें ससम्मानसे परिगृहीत होते हैं, उसी जगद्गुरु आर्य्यजातिके पवित्र कीर्त्तिपूर्ण इतिहास आज अदृष्टचक्रके आवर्त्तनसे कीर्त्ति विलोपकारी करालकालके विस्मृति कवल(ग्रास)में निहितहै। व्यास, वाल्मीकि,कालिदास प्रभृति जिस देशके कवि,—पाणिनि, पतञ्जलि; प्रभृति जिसदेशके वैयाकरण,—कपिल, कणाद और गौतम, प्रभृति जिस देशके दार्शनिक—चरक, सुश्रुत आदि जिसदेशके चिकित्सक,--मनु नारद, बृहस्पति, रघुनन्दन प्रभृति जिस देशके धर्म्मोपदेष्टा--आर्यभट्ट पराशरादि जिस देशका ज्योतिर्व्वित,--बुद्ध, शङ्कराचार्य्य, रामानुज, मध्वाचार्य्य आदि जिस देशके धर्म्म प्रचारक,--मल्लिनाथ, सायनाचार्य्य आदि जिसदेशके भाष्यकार--अमरसिंह, महेश्वर आदि जिसदेशके कोषकार--उस भारत विलुप्तप्राय गौरवके उद्धारसाधनार्थ अतीतसाक्षी इतिहासके आश्रय अवलम्बन करनेके लिये निश्चेष्ट, निष्क्रिय परपदानत भारतवासी आर्य्यसन्तानकी प्रवृत्ति और उत्साह उत्पन्न नहीं होता। जो जाति पूर्वपुरुषाओंके कीर्त्ति कल्याणका यथा-योग्य आदर और सम्मान करना नहीं जानती, जो जाति आत्मगौरव और आत्माभिमानके मर्म्म हृदयङ्गम करनेमें समर्थ नहीं होती, उस जातिका अभ्युदय सुदूर पराहत, उस जातिका पतन और परपदानति, अवश्यम्भावी। इसीकारण विधातानें भारतके भाग्यमें ऐसी दशाविपर्यय अदृष्ट नेमिका इसप्रकार निदारुण परिवर्तन लिख रक्खा है एवं स्वाधीनताके साथ २ भारतकी विद्या, बुद्धि, ज्ञान, धर्म्म, कीर्त्ति, गरिमा, समस्त विलुप्त कियाहै जिस भारत निकटसे शिक्षा लाभकर, युरोपआदि सुलभ्यदेशकी इतनी श्रीवृद्धि हुई है,—वही भारत इस समय ज्ञानकेलिये युरोपके समीप भिक्षा प्रार्थी, वही सुविज्ञ भारत इस समय सूत्रसञ्चालित क्रीडापुत्तलीकी नाई निरवच्छिन्न जडभावापन्न वही भारत इससमय हिताहित बोधशून्य चित्तमें युरोपके अनुकरण करनेमें व्यतिव्यस्त।

अमृतलाभकी आशासे आज युरोपीय पण्डितवर्ग बद्धपरिकर होकर भारतके अतुलनीय गौरवका निदानभूत संस्कृतसाहित्य समुद्रमन्थन करते हैं—आज भारतके अतीतज्ञानका अक्षयभण्डार युरोपीय पण्डितोंके अविचलित यत्न, अदम्य उत्साह और दृढ़-तर अध्यवसायमें. जीवनीशक्तिरहित, निमीलितनेत्र और मोहनिद्राशायित भारतवासीके सन्मुखमें उपस्थापित रहा है, भारतवासी निश्चेष्टभावसे उस विस्मयचकित हृदयमें चाह-कर देखते है। भारतके भूतपूर्व गौरव महिमाके प्रसङ्ग अपने २ देशमें मुक्त कण्ठसे प्रचार पुरःसर, युरोपके मनस्वी पण्डितवर्ग कृतार्थमान्य होते हैं। मृतसञ्जीवनी विद्याप्रभावसे

भूमिका।

विलुप्तप्राय संस्कृतसाहित्यको पुनर्जीवितकर, भारतके निर्जीव और निष्पन्ददेहमें मृदुमन्द वेगसे वे लोग जीवनीशक्तिके तड़िताल्लोक सञ्चालित करते हैं, एवं भारतके पूर्व्वतन अपूर्व्व कीर्त्तिकलाप द्वार २ पर डङ्का बजाकर मोहनिद्रामें चिराभिभूत भारतवासीको जगाकर सचेत करते हैं। पुरा तत्वानुसन्धायी शास्त्रज्ञ युरोपीय पण्डितोंको सौ सौ धन्यवाद, हम लोग उनके प्रदर्शित युक्ति, तर्क, विचार, शक्ति, और गवेषणके प्रभावसे, भारतके अनेक अपरिज्ञेयकल्पविषय परिज्ञानसे समर्थ होते हैं।

संस्कृत साहित्यकीनाई अनन्त रत्नराजिपरिपूर्ण साहित्य संसारमें दुर्लभ है। देवभाषा संस्कृतकी नाई मधुरभाषा पृथिवीमें कहीं नहीं है। संस्कृतभाषा और संस्कृतसाहित्य जगत्में सबसे श्रेष्ठ पदपर अधिष्ठित है। संस्कृत साहित्यके अक्षयभण्डारमें क्या २ अमूल्य रत्नराजि संनिविष्ट है, सो केवल संस्कृतभाषामें ग्रन्थोके होनेसे सर्वसाधारणको सम्यक्तया ज्ञात नहीं।

आज मैं उन्हीं संस्कृतके अनेक रत्नोंमेंसे "सर्व्वदर्शनसंग्रह" नामक ग्रन्थके भाषानुवाद को कर पांठकोंको अवलोकन कराता हूं। इस भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे वैदिकमतके विरुद्ध अनेक बौद्ध, चार्वाक, आर्हत, जैन आदि मत प्रचरित हैं और प्रतिदिन इन मतोंके अतिरिक्त नये २ सम्प्रदाय वा मत बढते जाते हैं, परन्तु उक्त बौद्ध, आदिके ग्रन्थोंको सर्व साधारण लोग नहीं देखते इसकारण प्रत्येक प्रधान २ मतोंका हाल सब नहीं जानते। संस्कृतमें उक्तमतोंके सिद्धान्त वर्णनके लिये श्रीमध्वाचार्य्यजीने "सर्वदर्शनसंग्रह" नामक ग्रन्थ प्रणयन किया है। जो संस्कृतमें होनेके कारण सर्व साधारणको सुविख्यात नहीं। पर यह ग्रन्थ ऐसा प्रयोजनीय है कि जितने पाण्डित और धर्म्मके सूक्ष्मभेद जिज्ञासु व्यक्ति हैं। प्रायः सबही इसकी एक २ प्रति रखते हैं। इसमें क्रमसे१ चार्वाकदर्शन, २ बौद्धदर्शन, ३ आर्हतदर्शन,४ रामानुजदर्शन, ५ पूर्णप्रज्ञदर्शन वा वेदान्तदर्शन, ६ नकुलीशपाशुपतदर्शन, ७ शैवदर्शन, ८ प्रत्यभिज्ञादर्शन, ९ रसेश्वरदर्शन, १० औलुक्यदर्शन, ११ अक्षपाददर्शन, १२ जैमिनिदर्शन, १३ पाणिनिदर्शन,१४ सांख्यदर्शन,१५ पातञ्जलदर्शन, इन पन्द्रह दर्शन, वा मत या सम्प्रदाय या सिद्धान्तोंका पूर्णतया वर्णन है। इस एकही ग्रन्थके पढनेसे उक्त पन्द्रह मतोंके अनेक ग्रन्थोंके सारभागका बोध होता है। दर्शन शास्त्रोंका अनुवाद करना बहुत कठिन है उसपरभी प्राकृतभाषामें तो औरभी कठिन है, पर जहांतक सरल करते बना अनुवाद किया है—सज्जन पाठगण अनुवादके दोष पारित्यागपूर्वक--मूलके आशयको समझकर इस ग्रन्थसे लाभ उठावेंगे तो मेरा परिश्रम सफल होगा। अलमिति बुद्धिमद्वर्य्येषु।

स्थान-मधुरापुर,
डाक विद्दूपुर,
जिला. मुजफ्फरपुर.

अनुवादक—
उदयनारायणसिंह.
१०।९।०२

सर्वदर्शनसंग्रहस्य विषयाणां सूचीपत्रम्।
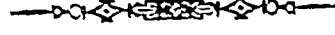
संख्या.	विषयाः.	पृष्ठानि.
१	चार्वाकदर्शनम्	१
२	बौद्धदर्शनम्	११
३	आर्हतदर्शनम्	४०
४	रामानुजदर्शनम्	७४
५	पूर्णप्रज्ञदर्शनम्	१०२
६	नकुलीशपाशुपतदर्शनम्	१२२
७	शैवदर्शनम्	१३२
८	प्रत्यभिज्ञादर्शनम्...	१४८
९	रसेश्वरदर्शनम्	१६०
१०	औलुक्यदर्शनम्	१६९
११	अक्षपाददर्शनम्	१८४
१२	जैमिनीयदर्शनम्...	२०१
१३	पाणिनिदर्शनम्	२२४
१४	सांख्यदर्शनम्	२४४
१५	पातञ्जलदर्शनम्	२५४

इति सूचीपत्रम्।

॥ श्रीः ॥

अथ सर्वदर्शनसंग्रहः ।

भाषाटीकासमेतः ।

अथ चार्वाकदर्शनम् ।

नित्यज्ञानाश्रयं वन्दे निःश्रेयसनिधिं शिवम् ।
येनैव जातं मह्यादि तेनैवेदं सकर्तृकम् ॥ १ ॥

जो नित्य ज्ञानका आश्रय, मुक्तिका आकारस्वरूप एवं जिससे यह दृश्यमान पृथिवी आदि पदार्थ उत्पन्न हुए हैं । और जो अनन्तब्रह्माण्डका कर्त्ता है, उसी शिवको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥

पारं गतं सकलदर्शनसागराणामात्मोचितार्थचरितार्थितसर्वलोकम् । श्रीशार्ङ्गपाणितनयं निखिलागमज्ञं सर्वज्ञविष्णुगुरुमन्वहमाश्रयेऽहम् ॥ २ ॥

जिसने सम्पूर्ण दर्शनशास्त्ररूप समुद्रके पार गमन किया है और जिसने आत्मोचित अर्थद्वारा सब अर्थीजनोंको चरितार्थ किया है उसी श्रीशार्ङ्गपाणितनय निखिलशास्त्रवेत्ता विष्णुगुरुको नियत सेवा करताहूं ॥ २ ॥

श्रीमत्सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभेन महौजसा ।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शनसंग्रहः ॥ ३ ॥

श्रीमत्सायनस्वरूप क्षीरसमुद्रके कौस्तुभमणिरूप महातेजस्वी माधवाचार्य्य सर्व्वदर्शनसंग्रह नामक ग्रंथको प्रणयन करतेहैं ॥ ३ ॥

पूर्वेषामतिदुस्तराणि सुतरामालोड्य शास्त्राण्यसौ श्रीमत्सायणमाधवः प्रभुरुपन्यास्थत्सतां प्रीतये । दूरोत्सारितमत्सरेण मनसा शृण्वन्तु तत्सज्जना माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न सञ्जायते ॥ ४ ॥

श्रीमत्सायन माधवाचार्य्यप्रभुने साधुगणके सन्तोषकेलिये प्राचीनपण्डितोंके दुर्बोधशास्त्रोंको आलोचना कर इस सर्व्वदर्शनसंग्रह नामक ग्रन्थको बनाया है । साधुलोग मानसिक मात्सर्य परित्यागकर इस ग्रन्थके तात्पर्य्यको श्रवण करें । बोध होताहै कि, उससे उनको असन्तोष नही होगा । क्योंकि विचित्र पुष्पमाल्यको देखनेसे किसीको असन्तोष नही होसकता ॥ ४ ॥

अथ कथं परमेश्वरस्य निःश्रेयसप्रदत्वमभिधीयते बृहस्पतिमतानुसारिणा नास्तिकशिरोमणिना चार्वाकेण दूरोत्सारितत्वात् दुरुच्छेदं हि चार्वाकस्य चेष्टितम् । प्रायेण सर्वप्राणिनस्तावत् "यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः । भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः" इति ॥ ५ ॥

परमेश्वर जो मुक्ति देताहै यह किसप्रकार जानाजाताहै । बृहस्पतिमतानुसारी नास्तिकशिरोमणि चार्व्वाक "ईश्वर मुक्ति देताहै" इसबातको नहीं मानता । इस चार्व्वाकमतका खण्डन करना प्रायः असाध्य है । सब कहते हैं कि, जबतक जीवित रहे सुखभोग करे कोईभी मृत्युके बाहर नही रहसकता, सब किसीको मृत्युके मुखमें गिरना पड़ेगा । एवं मरने पीछे जो सुख होगा; यह सम्भव नही, देह जलनेपर किसीप्रकार उस देहका पुनरागमन नहीं होसकता ॥ ५ ॥

लोकगाथामनुरुन्धाना नीतिकामशास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थौ मन्यमानाः पारलौकिकमर्थमपह्नुवानाश्चार्व्वाकमतमनुवर्त्तमाना एवानुभूयन्ते । अत एव तस्य चार्व्याकमतस्य लोकायतमित्यन्वर्थमपरं नामधेयम् ॥ ६ ॥

जो लोग लौकिकवाक्यके वशवर्त्ती होकर नीति और कामशास्त्रानुसार काम एवं अर्थको ही पुरुषार्थ कहकर स्वीकार करते हैं पारलौकिक अर्थ स्वीकार नही करते उन्हीं सब चार्व्वाकमतानुवर्ती लोगोंने अनुभव किया है । इस कारण चार्व्वाकमतका "लोकायत" यह दूसरा नाम सार्थक होता है ॥ ६ ॥

तत्र पृथिव्यादीनि भूतानि चत्वारि तत्त्वानि तेभ्य एव देहाकारपरिणतेभ्यः किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते तेषु विनष्टेषु सत्सु स्वयं विनश्यति । तदिह विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति स न प्रेत्य संज्ञास्तीति ॥ ७ ॥

पृथिव्यादि चार भूत ही तत्त्वस्वरूप है । इसी भूतचतुष्टयसे देह उत्पन्न होताहै । अनन्तर-मदकणासमूहसे जिसप्रकार मादकताशक्ति उत्पन्न होतीहै उसीप्रकार देहाकार परिणत भूत-चतुष्टयसे चैतन्य उत्पन्न होताहै । सुतरां उन्ही सब भूतके विनाश होनेसे मनुष्य स्वयं वि-नष्ट होजाताहै; इसलिये जानाजाताहै कि, जिन सबभूतोंसे मनुष्य समुत्थित होताहै उन्ही सब भूतोंके नाश होनेपर मनुष्यभी विनाशको प्राप्त होजाताहै उसके बाद उसका जन्म नही होता ॥ ७ ॥

तत् चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणा-भावात् प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेरनङ्गीकारेण प्रामा-ण्याभावात् ॥ ८ ॥

पूर्वोक्तकारणोंसे जानाजाताहै कि, चैतन्यविशिष्ट देहही आत्माहै, देहके अतिरिक्त आत्माके होनेमें कोई प्रमाण नही जिनलोगोंके मतमें केवल एकमात्र प्रत्यक्षही प्रमाणरूपमें परिणत होताहै अनुमानादि प्रमाणमें परिमाणित नही होता उनलोगोंके मतमें देहके अतिरिक्त आत्मा माननेमें दूसरा कोई प्रमाण नही दीखता ॥ ८ ॥

अङ्गनालिङ्गनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः । न चास्य दुःखसंभि-न्नतया पुरुषार्थत्वमेव नास्तीति मन्तव्यम् । अवर्जनीयतया प्राप्तस्य दुःखस्य परिहारेण सुखमात्रस्यैव भोक्तव्यत्वात् । तद्यथा मत्स्यार्थी सशल्कान् सकण्टकान् मत्स्यानुपादत्ते स यावदादेयं तावदादाय निवर्तते । यथा वा धान्यार्थी सपलालानि धान्या-न्याहरति स यावदादेयं तावदादाय निवर्तते । तस्माद्दुःखभ-यान्नानुकूलवेदनीयं सुखं त्यक्तुमुचितम् । नहि मृगाः सन्तीति शालयो नोप्यन्ते नहि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्री-यन्ते यदि कश्चिद् भीरुर्दृष्टं सुखं त्यजेत् तर्हि स पशुवन्मूर्खो भवेत् ॥ ९ ॥

उनकमतानुसार कामिनीसङ्गजनित सुखही पुरुषार्थ है । स्त्रीसङ्गजनित सुखमें दुःखसम्पर्क है (यदि ऐसा) कहकर इसको पुरुषार्थ न कहे तो इसको नही मानसकते चाहे युवतीके संसर्गमें दुःखहो तथापि इस दुःखको छोडकर केवल सुखहीका भोग होसकताहै । जिसप्रकार मछलीखाने-वाले लोग छिलका और काटमिली हुई मछलीके छिलका और कांटेको परित्यागकर सार-भागमात्र ग्रहण करते हैं । और धान्यार्थी व्यक्तिगण तृणयुक्त धान्य लाकर तृण परित्यागकर केवल सारभाग धान्य ग्रहण करतेहैं, इसीप्रकार स्त्रीसङ्गमें दुःख होनेपर उस दुःखको

परित्यागकर सुख भोगाजासकताहै; इसलिये दुःखके भयसे सुख परित्याग करना उचित नहीं । जिसदेशमें मृग होते हैं क्या वहां धान्य नहीं बोयेजाते ? एवं भिक्षुकभयसे क्या चूल्हे-पर हांडी नही चढ़ाई जाती? यदि कोई भीरुव्यक्ति इसप्रकार दृष्टसुखको छोड़े तो उसको पशुतुल्य मूर्खभिन्न और क्या कहाजासकता है ॥ ९ ॥

तदुक्तम्--त्याज्यं सुखं विषयसङ्गमजन्म पुंसां दुःखोपसृष्टमिति मूर्खविचारणैषा । व्रीहीन् जिहासति सितोत्तमतण्डुलाढ्यान् को नाम भोस्तुषकणोपहितान् हितार्थी ॥ १० ॥

विषयभोगजनित सुखमें दुःखसम्पर्क है इसलिये उस विषयसुखको परित्याग करना चाहिये ऐसा करना मूर्खका काम है कौन ऐसा बुद्धिमान् शुक्लवर्ण उत्तम तण्डुल मिला धान्यमें तुष और कणा है ऐसा समझकर उस धान्यके छोडनेकी इच्छा करता है ? ॥ १० ॥

ननु पारलौकिकसुखाभावे बहुवित्तव्ययशरीरायाससाध्ये अग्निहोत्रादौ विद्यावृद्धाः कथं प्रवर्तिष्यन्ते इति चेत् तदपि न प्रमाणकोटिं प्रवेष्टुमीष्टे अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषैर्दूषिततया वैदिकम्मन्यैरेव धूर्त्तबकैः परस्परं कर्म्मकाण्डप्रामाण्यवादिभिर्ज्ञानकाण्डप्रामाण्यवादिभिः कर्म्मकाण्डस्य च प्रतिक्षिप्तत्वेन त्रय्या धूर्त्तप्रलापमात्रत्वेन अग्निहोत्रादेर्जीविकामात्रप्रयोजनत्वात् । तथा चाभाणकः " अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् । बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः " ॥ ११ ॥

यदि परलोकमें कोई सुखही नहीं रहेगा तो किसनिमित्त प्राचीन विद्वान् बहु धनव्यय और शारीरिक परिश्रमसाध्य अग्निहोत्रादि यज्ञमें प्रवृत्त हुए थे ? यह पारलौकिक सुखप्रमाणसे सिद्ध नही होसकता; कारण यह है कि, वैदिकमतावलम्बी धूर्त्त बकलोग मिथ्या व्याघात और पुनरुक्तादि दोषोंसे दूषित वेदको अवलम्बन कर सुखोपायमें अपनी जीविका निर्वाहकेलिये अग्निहोत्रादि यज्ञकी विधि प्रचारित कियाहै । वेद-धूर्तादिकोंका प्रलापमात्र है । विशेषतः कर्म्मकाण्डवादीगण कर्मकी प्रशंसा कर ज्ञानकाण्डके प्रति दोषारोपण करते हैं और ज्ञानकाण्डवादीगण ज्ञानको प्रधान कहकर कर्म्मकाण्डकी निन्दा करतेहैं; पुनश्च अग्निहोत्रादि यज्ञकी प्रथा देखनेसे पारलौकिक सुखको स्वीकार नहीं कियाजासकता प्राचीन धर्तब्राह्मण लोगोंनेही धनकी लालसा चरितार्थ करनेकेलिये अग्निहोत्र यज्ञकी प्रथा चलाई है

बृहस्पति कहताहै कि, तीन वेद यज्ञोपवीत और भस्मलेपन ये सब बुद्धि और पुरुषहीन व्यक्तियोंकी जीविकामात्र है ॥ ११ ॥

अत एव कण्टकादिजन्यं दुःखमेव नरकं लोकसिद्धो राजा परमेश्वरः देहोच्छेदो मोक्षः । देहात्मवादे च कृशोऽहं कृष्णोहमित्यादि सामानाधिकरण्योपपत्तिः । मम शरीरमिति व्यवहारो राहोः शिर इत्यादिवदौपचारिकः ॥ १२ ॥

अब इससमय प्रकृतसिद्धान्त यह है कि, कण्टकादिके लिये दुःखही नरक है, लोकप्रसिद्ध राजाही परमेश्वर और देहत्यागही मुक्ति है । देहही आत्मा है । इसमतको माननेसे मैं कृश और मै कृष्ण हूं इसप्रकारके वाक्यकी अर्थोपपत्ति होसकतीहै । देह और आत्मा विभिन्न होनेसे " कृशव्यक्ति मैं कृश एवं कृष्णवर्णपुरुष मै कृष्ण " इसप्रकार नहीं कहसकते । यदि देहही आत्मा हुआ तो मेरा शिर इसप्रकारका व्यवहार किसप्रकार सम्भवित होसकता? इसका उत्तर यहहै जो--जिसप्रकार राहु, शिरभिन्न कुछभी नहीं तथापि "राहुका शिर" इसप्रकार उपचार प्रसिद्ध है, उसीप्रकार देह और आत्मा अभिन्न होनेसे मेरा शिर इसप्रकार उपचार होसकताहै ॥ १२ ॥

तदेतत् सर्व्वं समग्राहि " अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्य्यनलानिलाः । चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ॥ १३ ॥

पूर्वोक्त विषय सब संग्रहकर कहाहै कि, इस जगतमें भूमि, जल, वायु और अग्नि येही केवल चार भूत हैं, इन्हीं चारभूतोंसे चैतन्य उत्पन्न होताहै ॥ १३ ॥

किण्वादिभ्यः समेतेभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत् । अहं स्थूलः कृशोऽस्मीति सामानाधिकरण्यतः ॥ १४ ॥ देहः स्थौल्यादि योगाच्च स एवात्मा न चापरः । मम देहोऽयमित्युक्तिः सम्भवेदौपचारिकी" इति ॥ १५ ॥

जिसप्रकार मदकी कणा सब मिलकर ही मध्यमें मादकता शक्ति उत्पन्न करती है, उसी प्रकार भूत सब एकत्र होनेपर उसमें चैतन्य उत्पन्न होसकता है । देह और आत्माके अभेद विषयमें दूसरा प्रमाण यह है जो " मैं स्थूल एवं मैं कृश हूं " इसप्रकार प्रतीति सदा होती है यदि देह और आत्मा विभिन्न होता तो उसप्रकार प्रतीति नहीं होती । जिसका देह मोटा होता है वही व्यक्ति कहताहै कि 'मैं स्थूल हूं' एवं जो व्यक्ति कृश है उसीको बोध होता है कि मैं कृश हूं । सुतरां देह और आत्मा अभिन्न जान पडते हैं । इससमय इसप्रकार संशय

होता है जो यदि देहसे आत्मा अभिन्न हुआ तो मेरा देह इसप्रकार प्रतीति किसप्रकार होसकती है ? इसके उत्तरमें यही कहना है जो " राहुका शिर " इत्यादि प्रतीतिकी नाई मेरा देह इसप्रकार औपचारिक प्रतीति होजाती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

स्यादेतत् स्यादेष मनोरथो यद्यनुमानादेः प्रामाण्यं न स्यात् अस्ति च प्रामाण्यं कथमन्यथा धर्मोपलम्भानन्तरं धूमध्वजे प्रेक्षावतां प्रवृत्तिरुपपद्येत । नद्यास्तीरे फलानि सन्तीति वचनश्रवणमनन्तरं फलार्थिनां नदीतीरे प्रवृत्तिरिति । तदेतन्मनो राज्यविजृम्भणं व्याप्तिपक्षधर्म्मताशालि हि लिङ्गं गमकमभ्युपगतमनुमानप्रामाण्यवादिभिः व्याप्तिश्चोभयविधोपाधिविधुरः सम्बंधः स च स्वसत्तया चक्षुरादिवन्नाङ्गभावं भजते किन्तु ज्ञाततया । कः खलु ज्ञानोपायो भवेत् । न तावत प्रत्यक्षं तच्च बाह्यमान्तरं वाभिमतम् । न प्रथमः तस्य सम्प्रयुक्तविषय ज्ञानजनकत्वेन भवति प्रसरसम्भवेऽपि भूतभविष्यतोस्तदसम्भवेन सर्वोपसंहारवत्याव्याप्तेर्दुर्ज्ञानत्वात् न च व्याप्तिज्ञानं सामान्यगोचरमिति मन्तव्यं व्यक्त्योरविनाभावाभावप्रसङ्गात् नापि चरमः अन्तःकरणस्य बहिरिन्द्रियतन्त्रत्वेन बाह्येऽर्थे स्वातन्त्र्येण प्रवृत्त्यनुपपत्तेः ॥ १६ ॥

ऐसा होनेपर तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हुआ इससमय कहो देखता हूं यदि अनुमानादिकी [illegible]णता अस्वीकार करो तो धूमदर्शनमात्रसे--इसस्थानमें अग्नि है यह ज्ञान क्योंकर होसकता है ? [illegible] तटपर फल हैं, इसवाक्यको सुननेहीसे फलार्थी व्यक्तिकी नदीतीरके गमनमें क्यों प्रवृत्ति होतीहै ? प्रतिपक्षका वक्तव्य यही है जो यदी तुमलोगोंके ऐसाही समझमें आयाहो तो सुनो अनुमान प्रामाण्यवादीगण व्याप्तिज्ञान और पक्षधर्म्मताशाली धूमादिलिङ्गको अनुमानके प्रति कारण स्वीकार करतेहैं, व्याप्तिज्ञानसम्बन्ध विषे वह प्रत्यक्षमें चक्षुआदिकी नाई अनुमानका कारण नहीं व्याप्ति प्रत्यक्ष होता नही केवल ज्ञान होजाताहै । तब [illegible] उपाय क्या होसकताहै? यदि कहो कि, प्रत्यक्षही ज्ञानका कारण विद्यमान है तब भी नहीं [illegible] तुम जो [illegible] को कारण कहतेहो; वह प्रत्यक्ष या आभ्यन्तरिक बाह्य प्रत्यक्षज्ञानका कारण नहीं होसकता, कारण जो वस्तुमें इन्द्रियसंयोग होताहै, उसीका बाह्य प्रत्यक्ष होजाताहै, पुनरा [illegible] भिन्न अतीत और भविष्यतवस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भावित नहीं होसकता [illegible]

संहारकारक व्याप्तिका दुर्बोध हुआ। व्याप्ति जो सामान्यरूपसे गोचर है सोभी नही कहाजासकता, कारण यह है जो व्याप्तिके सम्बन्धमें सदा स्थायित्वही प्रसिद्ध है। और आभ्यन्तर प्रत्यक्षभी ज्ञानका कारण नही होता। जिसकारण अन्तःकरण बहिरिन्द्रियका परतन्त्र स्वतन्त्ररूपसे बाह्यविषयमें अन्तःकरणकी प्रवृत्ति हो नही सकती। अन्यान्यशास्त्रोमे भी कहा है ॥ १६ ॥

तदुक्तम्–'चक्षुराद्युक्तविषयं परतन्त्रं बहिर्म्मन' इति। नाप्यनुमानं व्याप्तिज्ञानोपायः तत्र तत्राप्येवमिति। अनवस्थादौस्थ्यप्रसङ्गात्। नापि शब्दस्तदुपायः काणादमतानुसारेणानुमान एवान्तर्भावात् अनन्तर्भावे वा वृद्धव्यवहाररूपलिङ्गावगतिः सापेक्षतया प्रागुक्तदूषणलङ्घनाजङ्घालत्वात्। धूमध्वजयोरविनाभावोऽस्तीति वचनमात्रे मन्वादिवद् विश्वासाभावाच्च। अनुपदिष्टाविनाभावस्य पुरुषस्यार्थान्तरदर्शनेनार्थान्तरानुमित्यभावे स्वार्थानुमानकथायाः कथाशेषत्वप्रसङ्गाच्च। उपमानादिकन्तु दूरापास्तं तेषां संज्ञासंज्ञिसम्बन्धादिबोधकत्वेनानौपाधिकत्वसम्बन्धबोधकत्वासम्भवात्। किञ्च उपाध्यभावोऽपि दुरवगम उपाधीनां प्रत्यक्षत्वनियमासम्भवेन प्रत्यक्षाणामभावस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि अप्रत्यक्षाणामभावस्याप्रत्यक्षतया अनुमानाद्यपेक्षायामुक्तदूषणानतिवृत्तेः ॥ १७ ॥

और कहते हैं कि:- व्याप्तिज्ञान अनुमानका हेतु नही कारण यह है कि, उसके होनेपर उसप्रकार वह उसस्थानमें अनवस्थादोषका प्रसङ्ग होताहै शब्द और अनुमानका कारण नहीं होसकता जिसकारण कणादमतानुसार शब्द और अनुमानके अन्तर्गत है यदि इनको स्वीकार करो तो अनुमान वृद्धव्यवहार प्राप्त धूमादिदर्शनरूप लिङ्गज्ञान सापेक्ष प्रयुक्त पूर्वोक्तदोष इसी अवस्थामें रहा कोई उसदोषका खण्डन नही करसकता विशेषतः धूम और अग्नि इन दोनोंका नित्य सम्बन्ध है अर्थात् धूममें कभी अग्निका अभाव नही रहता यह केवल कहनेमात्रसे नही मानाजाता। जिसव्यक्तिको धूम और अग्निके सम्बन्धका उपदेश नहीं हुआ उस पुरुषके अर्थान्तर दर्शनमें दूसरे वस्तुका अनुमान नही होता पुनः। स्वार्थानुमान [illegible] हुई उपमानादिकी प्रमाणताका खण्डन होताहै, कारण यह है कि संज्ञासंज्ञिके सम्बन्धसे बोधहीने [illegible] होताहै इन सबका [illegible] ॥ और उपाधिअभाव [illegible]

दुर्बोध जिसकारण उपाधि सबके प्रत्यक्षत्वनियमका असम्भवप्रयुक्त प्रत्यक्षाभावका अप्रत्यक्षत्व एवं अप्रत्यक्षाभावकी प्रत्यक्षताके हेतु अनुमानादिकी अपेक्षा है; सुतरां पूर्वोक्तदोषकी अनतिवृत्ति (पूर्ववत् अवस्थिति) होतीहै ॥ १७ ॥

अपिच—साधनाव्यापकत्वे सति साध्यसमव्याप्तिरिति तल्लक्षणं कक्षीकर्त्तव्यम् । तदुक्तम्—अव्याप्तसाधनो यः साध्यसमव्याप्तिरुच्यते स उपाधिरिति ॥ १८ ॥

पक्षान्तरमें कहते हैं कि, साधनके अव्यापकत्व सत्वमें साध्य समताही व्याप्ति है इसप्रकार व्याप्तिलक्षण नहीं होसकता कारण यह है कि, जो साधनमें व्याप्तिज्ञान नहीं उसमें जो साध्यसमव्याप्ति कहीजाती है वही उपाधि उपाधि सत्वमें अनुमान होता नहीं सुतरां अनुमानकी प्रमाणता स्वीकार नहीं कीजासकती ॥ १८ ॥

शब्देऽनित्यत्वे साध्ये सकर्तृकत्वं घटत्वमश्रावणताञ्च व्यावर्त्तयितुमुपात्तान्यत्र क्रमतो विशेषणानि त्रीणि । तस्मादिदमनवद्यं समासमेत्यादिनोक्तमाचार्य्यैश्चेति।तत्र विध्यध्यवसायपूर्व्वकत्वान्निषेधाध्यवसायस्योपाधिज्ञाने जाते तदभावविशिष्टसम्बन्धरूपं व्याप्तिज्ञानं व्याप्तिज्ञानाधीनं चोपाधिज्ञानमिति परस्पराश्रय वज्रप्रहारदोषो वज्रलेपायते । तस्मादविनाभावस्य दुर्बोधितया नानुमानाद्यवकाशः । धूमादिज्ञानानन्तरमग्न्यादिज्ञाने प्रवृत्तिः प्रत्यक्षमूलतया भ्रान्त्या वा युज्यते । क्वचित् फलप्रतिलम्भस्तु मणिमन्त्रौषधादिवत् यादृच्छिकः अतस्तत्तु साध्यमदृष्टादिकमपि नास्ति । नन्वदृष्टानिष्टौ जगद्वैचित्र्यमाकस्मिकं स्यादिति चेत् न तद्भद्रं "अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः । केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिरिति" ॥ १९ ॥

अनुमानके दोषान्तर दिखलाते हैं:--सकर्तृकत्वके कारण शब्दके अनित्यत्व साधन करनेसे उपाधिदोष होजाताहै--इसीनिमित्त हमारे आचार्य्यलोगोने अनुमानको नहीं मानाहै । विशेषतः उपाधिके अभावविशिष्ट सम्बन्धविशेषही व्याप्तिज्ञान है और उसीव्याप्तिज्ञानके अधीनही उपाधिज्ञानहै सुतरां परस्पर आश्रयाश्रयिभावरूप दोष अनिवार्य्य हुआ । अतएव धूम और अग्निका अविनाभाव सम्बन्ध अर्थात धूमाधिकरणस्थानमें अग्निका अभाव असिद्ध

इसीप्रकार सम्बन्धकी दुर्बोधितापयुक्त अनुमान हो नही सकता । तब धूमादिज्ञानके परे जो वह्नि प्रभृतिका ज्ञान उसको प्रत्यक्षज्ञान जानना । धूम देखनेहीसे अभ्रान्त अग्निज्ञान होजाताहै । मणिमन्त्र औषधआदि प्रयोगमें जिसप्रकार अपनी इच्छानुसार फल होता है, उसीप्रकार इसस्थानमें भी कदाचित् फलप्राप्तिका सम्भव होता है । इसलिये जानाजाताहै जो यागादि साध्य अदृष्ट नहीं, यदि अदृष्ट स्वीकार न कियाजाय तो जगत्में नानाप्रकारकी लोक सृष्टिका कारण क्या ? इसका उत्तर यह है जो जगत्के सब पदार्थ आकस्मिक है इसके प्रति कोई कारण नही यदि यही आकस्मिक सृष्टि स्वीकार न कियाजाय तो ऐसा होनेपरभी स्वभावसेही जगत्की विचित्रता माननी पड़ेगी । जिसप्रकार अग्निकी उष्णता जलकी शीतता एवं वायुका शीतल स्वाभाविक अर्थात् इसप्रकार विचित्रताका कोई कारण नही उसीप्रकार स्वभावसेही जगत्की विचित्रता और अवस्थित होजाती है ॥ १९ ॥

तदेतत् सर्व्वं बृहस्पतिनाप्युक्तम् । " न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः । नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ २० ॥

बृहस्पतिनेभी यह सब कहा है कि, न स्वर्ग है, न मोक्ष, न आत्मा और न पारलौकिक कोई फलही है । और वर्ण और आश्रम भेदमें क्रिया करनेसे उत्तरकालमे उस क्रियाका फल हो सो भी सम्भव नही ॥ २० ॥

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् । बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्म्मिता ॥ २१ ॥

अग्निहोत्रादि यज्ञ. ऋक्, यजुः एव साम ये तीन वेद, त्रिदण्ड (यज्ञोपवीत) और शरीरमें भस्मलेपन. ये सब केवल बुद्धि और पौरुषहीन धूर्तादिककी जीविकामात्र हैं । जिन लोगोंकी बुद्धि. अथवा किसीप्रकारकी क्षमता नही वे ही लोग अग्निहोत्रादि यज्ञद्वारा सब लोगोंको ठगकर स्वार्थ साधन करते हैं । ब्रह्माने मूर्खोंके लिये ऐसी जीविका विधान किया है ॥ २१ ॥

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति । स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ २२ ॥

तुम्लोग कहतेहो जो ज्योतिष्टोमादि यज्ञमें जिस पशुका वध कियाजाता है वह स्वर्गमें जाता है । यदि वही होगा तो तुमभी कोई यज्ञ करके अपने पिताको बलिप्रदान क्यों नही करते ? ऐसा करनेसे तो वह अनायास स्वर्गमे जासकता है ॥ २२ ॥

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् । गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ २३ ॥

और मृतव्यक्तिके नामपर श्राद्ध करनेसे यदि उस मृतव्यक्तिकी तृप्ति होसके तो किसी स्थानमें जानेके लिये मार्गभोजन साथ लेजानेका प्रयोजन क्या ? क्योंकि घरहीमें तुम्हारे खानेके लिये अन्नपाक करके निवेदन करनेसे तुम्हे वह भोजन मार्गमें अपने आप पहुंच जावेगा या उससे तृप्ति होजावेगी । श्राद्धभी यदि परलोकगामीके तृप्तिजनक होताहै तो स्वगृहस्थित भोजनीय द्रव्य तुम्हारी तृप्ति क्यो नही करेगा ? ॥ २३ ॥

स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः । प्रासादस्योपरि-स्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ २४ ॥

पिता जब स्वर्गमें अवस्थितिकरते हैं उस समय उनको दान देनेसे यदि उसदानमें पिता तृप्तिलाभ करसकते हैं तो तुम अपने घरके कोठेपर पितृस्थान कल्पना करके दान क्यों नहीं करते? दानद्वारा स्वर्गस्थित पिताकी तृप्ति होनेपर कोठेपर स्थित पिताकी तृप्ति क्यों नही होगी ॥ २४ ॥

यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् । भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ २५ ॥

पूर्वोक्तकारणोंसे जानाजाताहै कि जो धर्म्माधर्म्म और परलोकप्रभृति सबही मिथ्या है इस-समय जो कुछ सुख भोग करसकते हैं उसीको करो । जबतक जीवन तुह्मारा रहेगा सुख-पूर्वक तुह्मारा कालयापन होगा । जिससे शारीरिक पुष्टिसाधन होसके वही कर्त्तव्य है, अतएव ऋण (कर्ज) करके घृतपान करना चाहिये । यह शरीर भस्म होनेपर पुन्हा इसका प्रत्यागम किसीप्रकार नही होसकताहै ॥ २५ ॥

यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः । कस्माद् भूयो न चा-याति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥ २६ ॥

यदि कोई इस देहसे निकलकर परलोक जासके तो बन्धुवर्गके स्नेहमें आकुल होकर पुन: क्यों नही वापस आता ? जो देहसे चलकर जासकता है फिर उसके प्रत्यागमनमें आप‌त्ति

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः । जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥ २८ ॥

भण्ड, धूर्त और निशाचर ये लोग वेदके कर्त्ता हैं । इनके नाना प्रकारके जर्फरी, तुर्फरी इत्यादि वाक्योंहीसे वेद भरा है । इन सब वाक्योंहीसे वेद कहांतक सत्य है । सो जाना जाता है ॥ २८ ॥

अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम् । भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम् । मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितमिति । तस्माद् बहूनां प्राणिनामनुग्रहार्थं चार्व्वाकमतमाश्रयणीयमिति रमणीयम् ॥ २९ ॥

इति सायणमाधवीये सर्वदर्शनसंग्रहे चार्वाकदर्शनं समाप्तम् ।

अश्वमेधयज्ञमें यजमानकी पत्नी घोड़ेका शिश्न ग्रहण करे इत्यादि विषय सब भण्डरचित है । स्वर्ग नरकादि विषय सब धूर्त्तोंने रचा और जिन सबशास्त्रोंमें मद्यमांस निवेदनादिके विधिहैं वे सब निशाचर कल्पित हैं । इसप्रकार धूर्त्त, भण्ड और निशाचर पण्डितोंने अनेकप्रकारकी क्रियाओंको रचकर अपना २ प्रयोजन सिद्ध कियाहै । चार्वाकने इन्हीं भण्ड पण्डित आदिकोंके मतोंके खण्डनकर सब प्राणियोंके प्रति अनुग्रह प्रकाशपूर्वक निज मतका प्रचार कियाहै, इसी मतका सबको आश्रय लेना चाहिये । यही मत सब मतोंमें प्रधान है ॥ २९ ॥

इति सर्व्वदर्शनसंग्रहे चार्वाकदर्शनं समाप्तम् ।

अथ बौद्धदर्शनम् ।

अत्र बौद्धैरभिधीयते यदभ्यधायि अविनाभावो दुर्बोध इति तदसाधीयः तादात्म्यतदुत्पत्तिभ्यामविनाभावस्य सुज्ञानत्वात् तदुक्तम्–

"कार्य्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।
अविनाभावनियमो दर्शनान्तरदर्शनादिति" ॥ १ ॥

और तदुत्पत्तिद्वारा ही अविनाभावसम्बन्ध ज्ञात होसकताहै । शास्त्रान्तरमें कहाहै कि, धूम और अग्नि इत्यादिके कार्य्य कारण वशतः और नियामक स्वभावहेतु अविनाभाव सम्बन्ध सुस्पष्ट प्रतीयमान होताहै एवं अन्यदर्शनमें भी इसीप्रकार सम्बन्ध प्रमाणीकृत हुआ है ॥ १ ॥

अन्वयव्यतिरेकाववविनाभावनिश्चायकाविति पक्षे साध्यसाधनयोरव्यभिचारो दुरवधारणो भवेत् । भूते भविष्यति वर्त्तमाने अनुपलभ्यमाने च व्यभिचारशङ्काया अनिवारणात् । ननु तथा विधस्थले तावकेऽपि मते व्यभिचारशङ्का दुष्परिहरेति चेत् मैवं वोचः विनापि कारणं कार्य्यमुत्पद्यतामित्येवंविधायाः शङ्काया व्याघातावधितया निवृत्तत्त्वात् । तदेवह्याशंक्येत यस्मिन्नाशंक्यमाने व्याघातादयो नावतरेयुः । तदुक्तम् । व्याघातावधिराशङ्केति तस्मात्तदुत्पत्तिनिश्चयेन अविनाभावो निश्चीयते तदुत्पत्तिनिश्चयश्च कार्य्यहेत्वोः प्रत्यक्षोपलम्भानुपलम्भपञ्चकनिबन्धनः । कार्य्यस्योत्पत्तेः प्रागनुपलम्भः कारणोपलम्भे सत्युपलम्भः उपलम्भस्य पश्चात् कारणानुपलम्भादनुपलम्भ इति पञ्चकारण्या धूमधूमध्वजयोः कार्य्यकारणभावो निश्चीयते । तथा तादात्म्यनिश्चयेनाप्यविनाभावो निश्चीयते । यदि शिंशपावृक्षत्वमतिपतेत् स्वात्मानमेव जह्यादिति विपक्षे बाधकप्रवृत्तेः । अप्रवृत्ते तु बाधके भूयः सहभावोपलम्भेऽपि व्यभिचारशङ्कायाः को निवारयिता । शिंशपावृक्षयोश्च तादात्म्यनिश्चयो वृक्षोऽयं शिंशपेति सामानाधिकरण्यबलादुपपद्यते । नह्यत्यन्ताभेदे तत् सम्भवति पर्य्यायत्वेन युगपदपि प्रयोगायोगात् नाप्यत्यन्तभेदे गवाश्वयोरनुपलम्भात् । तस्मात् कार्य्यात्मानौ कारणमात्मानमनुमापयत इति सिद्धम् ॥ २ ॥

और जहां धूमसत्ता है वहां अग्निकी सत्ता होती है और जहां अग्नि नहीं वहां धूमका अभाव, इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक प्रमाणानुसारभी धूम और अग्निका

अविनाभाव सम्बन्धका निश्चय होता है । यदि कहो, पक्षमें (अनुमानका आधारभूत पर्व्व-तादिमें) साध्य अग्नि आदि एवं साधन धूमादिका अव्यभिचार अवधारण करना दुष्कर होता है, वस्तुतः भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान येही तीन काल हैं उक्त व्यभिचार शङ्का अनिवार्य्य है । तथापि यदि कहो तुम्हारे मतमें भी पूर्वोक्त स्थलमें व्यभिचारी शङ्का दुष्परिहार्य्य है । यह बात नहीं कहनी चाहिये, जिसलिये कारण व्यतिरेक कार्य उत्पन्नहो इसप्रकार आशङ्काका व्याघातावधिकत्व हेतु निवृत्त है । जिसकी आशङ्कामें व्याघातादि दोषका अवतरण नहीं होता, उसीकी आशङ्का होजाती है । दूसरे शास्त्रमें कहा है कि–व्याघातावधि ही आशङ्का होती है अर्थात् जबतक व्याघात दोष रहता है तबतक आशङ्का होसकती है । अतएव उसकी उत्पत्ति निश्चयद्वारा ही धूम और वह्निका अविनाभाव सम्बध निश्चित होता है । कार्य्यहेतु, प्रत्यक्ष उपलम्भ, और कारणका उपलम्भ होनेहीसे कार्य का उपलम्भ कार्य्योपलम्भके पीछे कारणानुपलम्भ इत्यादि प्रकार पञ्च कारणजन्य धूम और अग्निका कार्य्य कारण भाव निश्चय होता है । इसीप्रकार तादात्म्य निश्चय हेतु धूम और अग्निका अविनाभाव सम्बध निश्चय किया जाता है । शिंशपा नामक वृक्ष यदि वृक्षत्वका अति पातन करे उसने अपनेहीको परित्याग किया इत्यादि स्थलमे विपक्षमें बाधक प्रवृत्तिहै, परन्तु बाधकके अप्रवृत्तिमे पुनर्व्वार सहकारी भावका उपलम्भ होनेसे कौन व्यभिचार शङ्काका निवारण करसकता है ? शिंशपा और वृक्ष इन दोनोंहीका तादात्म्य निश्चय है । जिसकारण यह वृक्ष शिंशपा है, इसप्रकार सामानाधिकरण्यहोके बलसे शिंशपा और वृक्षका तादात्म्य उपपन्न होताहै । अत्यन्त अभेद स्थलमें तादात्म्य सम्भव नहीं कारण यह है जो पर्य्यायक्रमसे एकदा प्रयोग असम्भव और अत्यन्त भेदस्थलमेभी तादात्म्य सम्भव नहीं गौ और अश्व इन सबका अत्यन्त भेदहेतु तादात्म्यसम्भव नहीं अतएव जानाजाताहै कि, जो कार्य्यस्वरूप पदार्थ कारण को अनुमान करनेकेलिये है ॥ २ ॥

यदि कश्चित् प्रामाण्यमनुमानस्य नाङ्गीकुर्यात् तं प्रति ब्रूयात् अनुमानप्रमाणं न भवतीत्येतावन्मात्रमुच्यते तत्र न किञ्चन साधनमुपन्यस्यते उपन्यस्यते वा । न प्रथमः एकाकिनी प्रतिज्ञाहि प्रतिज्ञातं न साधयेदिति न्यायात् । नापि चरमः अनुमानं प्रमाणं न भवतीति ब्रुवाणेन त्वया अशिरस्कवचनस्योपन्यासे मम माता वन्ध्येतिवद् व्याघातापातात् । किञ्च प्रमाणतदाभासव्यवस्थापनं तत् समानजातीयत्वादिति वदता भवतैव स्वीकृतं स्वभावानुमानम् । परगता विप्रतिपत्तिस्तु

वचनालिङ्गेनेति ब्रुवता कार्य्यलिङ्गकमनुमानम् अनुपलब्ध्या कञ्चिदर्थं प्रतिषेधयतानुपलब्धिलिङ्गकमनुमानम्। तथा चोक्तं तथागतैः--प्रमाणान्तरसामान्यस्थितिरन्यधियो गतेः। प्रमाणान्तरसद्भावःप्रतिषेधाच्च कस्यचिदिति॥ पराक्रान्तश्चात्र सूरिभिरिति ग्रन्थभूयस्त्वभयादुपरम्यते॥ ३॥

यदि कोई व्यक्ति अनुमानकी प्रमाणता नहीं स्वीकार करता तो उस अनुमान प्रतिवादीको कहना चाहिये जो तुम क्या अनुमान प्रमाण नहो ? तुम क्या यही वाक्य मात्र कहते हो किम्वा उसका कोई कारण है ? यदि कोई कारण है; तो वह कार्य्यकारी नहीं, केवल प्रतिज्ञा करनेहीसे क्या वह प्रतिज्ञा प्रतिज्ञात विषय साधन करसकती है ? और यदि कहो कि, अनुमानकी अप्रमाणता ये कोई कारण नहीं, तथापि अनुमान प्रमाण नहीं। तुम्हारी इस प्रकारकी बेशिरकी बात कहनेसे " मेरी माता वन्ध्या है " इस वाक्याकी नाईं व्याघात दोषापात होताहै। और स्वयंही कहदेते हो जो समान जातीयत्व प्रयुक्त प्रमाण और प्रमाणाभास व्यवस्थापन करना होता है, सुतरां स्वभावही से अनुमानकी प्रमाणता स्वीकार करते हो, परगत विप्रतिपत्तिभी वचनमात्र ही है, यह बात बोलनेहीसे कार्य्यलिङ्गक अनुमान स्वीकृत हुआ और अनुपलब्धिवशात् कोई अर्थ प्रतिषेध करनेहीसे अनुपलब्धिलिङ्गक अनुमान स्वीकार होता है। पण्डित लोग कहते हैं जो किसी २ मतमें इसप्रकार प्रमाणानुसार सामान्यस्थिति जानी जाती है। एवं अन्यान्यमतमें अन्यप्रकार प्रमाणमें पदार्थ परिकल्पित हो जाता है। इस विषयमें आचार्य्योंकी वादानुवादकी अधिक शक्ति होनेपरभी वे लोग ग्रन्थके विस्तार होनेके भयसे विरत हुए हैं। साधारणतः ही उक्त मतानुसार दोष दिखलाया जाता है,सुतरा वादानुवाद निष्प्रयोजनहै॥ ३॥

ते च बौद्धाश्चतुर्विधया भावनया परमपुरुषार्थं कथयन्ति। ते च माध्यमिकयोगाचारसौत्रान्तिकवैभाषिकसंज्ञाभिः प्रसिद्धाः बौद्धा यथाक्रमं सर्व्वशून्यत्वबाह्यशून्यत्वबाह्यार्थानुमेयत्वबाह्यार्थप्रत्यक्षत्ववादानातिष्ठन्ते॥ ४॥

बौद्ध पण्डितगण चार प्रकारकी भावना द्वारा परम पुरुषार्थ कहते हैं। १ माध्यमिक २ योगाचार ३ सौत्रान्तिक और ४ वैभाषिक इन्हीं चारनामोंसे उक्त भावनानुष्ठय प्रसिद्ध हैं माध्यमिक भावनामें सर्व्वशून्यत्व योगाचारभावनामें बाह्यशून्यत्व सौत्रान्तिक भावनामें बाह्यार्थानुमेयत्व एवं वैभाषिक भावनामें बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद अवस्थित है। इसका विशेष विवरण दूसरे स्थानमें प्रकाशित होगा॥ ४॥

यद्यपि भगवान् बुद्ध एक एव बोधयिता तथापि बोद्धव्यानां बुद्धिभेदाच्चातुर्विध्यं यथागतोऽस्तमर्क इत्युक्ते जारचौरानूचानादयः स्वेष्टानुसारेणाभिसरणपरस्वहरणसदाचरणादिसमयं बुध्यन्ते । सर्वं क्षणिकं क्षणिकं दुःखं दुःखं स्वलक्षणं स्वलक्षणं शून्यं शून्यमिति भावनाचतुष्टयमुपदिष्टं द्रष्टव्यम् । तत्र क्षणिकत्वं नीलादिक्षणानां सत्वेनानुमातव्यं यत् सत् तत् क्षणिकं यथा जलधरपटलं सन्तश्चामी भावा इति न चायमसिद्धो हेतुः अर्थक्रियाकारित्वलक्षणस्य सत्त्वस्य नीलादिक्षणानां प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । व्यापकव्यावृत्या व्याप्यव्यावृत्तिन्यायेन व्यापकक्रमाक्रमव्यावृत्तावक्षणिकात् सत्त्वव्यावृत्तेः सिद्धत्वाच्च । तच्चार्थक्रियाकारित्वं क्रमाक्रमाभ्यां व्याप्तं न च क्रमाक्रमाभ्यामन्यः प्रकारः समस्ति परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः । नैकतापि विरुद्धानामुक्तिमात्रविरोधत इति न्यायेन व्याघातस्योद्भटत्वात् तौ च क्रमाक्रमौ स्थायिनः सकाशाद्व्यावर्त्तमानौ अर्थक्रियामपि व्यावर्त्तयन्तौ क्षणिकत्वपक्ष एव सत्त्वं व्यवस्थापयत इति सिद्धम् ॥ ९ ॥

यद्यपि भगवान् एकमात्र बुद्धही बोधयिता है तथापि बुद्धिभेदवशात् बोद्धव्य विषय चार प्रकारका जानना चाहिये जिस प्रकार सूर्य्यने अस्तगमन किया है यह बात कहनेसे जार (उपपति) चौर और अनूचान (जो लोग गुरुके पास साङ्ग वेद अध्ययन करके धर्म्माचरणमे प्रवृत्त है) ये लोग अपने २ इष्ट कार्य्यके साधनमें समयज्ञान करते हैं अर्थात् जारव्यक्ति परस्त्रीके अनुसन्धानका चौरव्यक्ति पराया धन चुरानेका एवं धार्म्मिकव्यक्ति धर्म्माचरणका समय मनमें उपस्थित करके अपने २ कार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं उसी प्रकार बुद्ध एक होनेपरभी बुद्धिभेदवशात् बोद्धव्यविषयके चार भेद जानना । सब पदार्थही क्षणिक दुःखमय स्वलक्षणाक्रान्त एव सबही शून्य इसप्रकार भावनाचतुष्टयका उपदेश जानना नीलादिलक्षणकी सत्ताहेतु क्षणिकत्व अनुमान करना चाहिये अर्थात् जो सबपदार्थ विद्यमानहैं वे सबही क्षणिक मेघमालाकी नाई कोई पदार्थ चिरस्थायी नही । यह असिद्ध हेतु नही कारण यह है जो सबही विद्यमान पदार्थका अर्थ क्रियाकारित्व एवं नीलादि गुणका प्रत्यक्ष होजाताहै । नीलवर्ण घट लावो, इत्यादिस्थलमें घटका लाना और नीलगुणका प्रत्यक्ष होताहै,

क्रम और अक्रम प्रकारमें अर्थ क्रियाकारित्व प्राप्त होजाताहै । अथज्ञान विषयमें क्रम और अक्रम भिन्न प्रकार नहीहै पदार्थसबकेपरस्पर विरोध होनेपरभी क्रम और अक्रमभिन्न प्रकारान्तरमें अवस्थिति नही होती एवं मुक्तिमात्रका विरोध प्रयुक्त विरुद्धपदार्थकी एकताभी सम्भव नही । इस प्रसिद्ध न्यायबलसे व्याघातका उद्भव हो उठताहै । स्थायी पदार्थका सम्बन्धही उक्त क्रम और अक्रम व्यावृत्त है एवं अर्थक्रियामें भी उन सबकी व्यावृत्ति जानना, सुतरां क्षणिकत्व पक्षही सत्वका व्यवस्थापक यह सिद्ध हुआ, अर्थात् क्षणकाल विद्यमान रहता है ऐसा कहकरही पदार्थ सबको सत् कहाजाता है ॥ ५ ॥

नन्वक्षणिकस्यार्थक्रियाकारित्वं किं न स्यादिति चेत् तदयुक्तं विकल्पासहत्वात् । तथा हि वर्तमानार्थक्रियाकरणकाले अतीतानागतयोः किमर्थक्रिययोः स्थायिनः सामर्थ्यमस्ति ? नोवा ? आद्ये तयोरनिराकरणप्रसङ्गः समर्थस्य क्षेपायोगात् यत् यदा यत्करणसमर्थं तत् तदा तत् करोत्येव यथा सामग्री स्वकार्य्ये समर्थश्चायं भाव इति प्रसङ्गानुमानाच्च । द्वितीयेऽपि कदापि न कुर्य्यात् सामर्थ्यमात्रानुबन्धित्वादर्थक्रियाकारित्वस्य यत् यदा यन्न करोति तत् तदा तत्रासमर्थं यथाहि शिलाशकलमङ्कुरे । न चैष वर्त्तमानार्थक्रियाकरणकाले वृत्तवर्त्तिष्यमाणे अर्थक्रिये करोतीति तद्विपर्ययाच्च ॥ ६ ॥

यदि कहो कि, सब पदार्थोंको अक्षणिक कहनेसे क्या उन सबकी अर्थ क्रिया कारित्व सम्भव नही?यह आशङ्का युक्तियुक्त नही है, जिस कारण क्षणिकत्व और अक्षणिकत्व इसप्रकार विकल्प सम्भवपर नहीं, अर्थात् वर्त्तमान अर्थ क्रिया करण कालमें भूत और भविष्यत् अर्थ क्रिया का सामर्थ्य है या नहीं ? यदि कहो कि सामर्थ्य है, तो सामर्थ्य और असामर्थ्य इसका निराकरण होता नही, असमर्थ होनेसे उसका अकरण असम्भव नहीं । जिस २ कार्य्य का समर्थ, सो अवश्यही वह कार्य्य करता है । और यदि कहो कि सामर्थ्य नही तो कभीभी कार्य्यसाधन नही करसकता परन्तु कभी २ कार्य्य दृष्ट होता है, अर्थक्रिया कारित्व सामर्थ्यमात्रका अनुगामी है । जिससमय जिसकार्य्यको जो नहीं करता, सुतरां उसकार्य्यसे उसका असामर्थ्यही जाना जाता है । जिसप्रकार शिलाखण्डमें कभी अङ्कुरोत्पादन नही देखा जाता; सुतरां शिलाखण्डमें कभी अङ्कुरोत्पादकता सामर्थ्य नही, यही जानना होगा । उसीप्रकार सर्वत्र ही सामर्थ्य और असामर्थ्य प्रकाश पाना है । और वर्त्तमान अर्थक्रिया करण कालमें अतीत और भविष्यत् अर्थ नही करसकता ॥ ६ ॥

ननु क्रमवत् सहकारिलाभात् स्थायिनः अतीतानागतयोः क्रमेण क्रमणमुपपद्यते इति चेत् तत्रेदं भवान् पृष्टो व्याचष्टां सहकारिणः किं भावस्योपकुर्व्वन्ति? न वा? न चेत् नापेक्षणीयास्ते अकिञ्चित् कुर्वता तेषां तादार्थ्यायोगात्। उपकारकत्वपक्षेसोऽयमुपकारः किं भावाद्भिद्यते ? न वा ? भेदपक्षे आगन्तुकस्यैव तस्य कारणत्वं स्यात् न भावस्याक्षणिकस्य आगंतुकातिशयान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् कार्य्यस्य । तदुक्तम् वर्षातपाभ्यां किं व्योम्नश्चर्म्मण्यस्ति तयोः फलम् । चर्म्मोपमश्चेत् सोऽनित्यः खतुल्यश्चेदसत्फल इति ॥ ७ ॥

क्रम और अक्रममें जिस प्रकार अर्थ क्रिया कारित्व प्राप्त होजाताहै उसीप्रकार सहकारीसेभी अतीत और भविष्यत पदार्थ क्रम उपन्न होता है । यदि इस प्रकार स्वीकार करो तो तुमको पूछताहूँ तुम कहो देखताहूं सहकारी गणभावका उपकार करता या नहीं ? यदि उपकार नहीं करता तो सहकारी अपेक्षणीय नहीं कारण यह है जो कार्यमें उपकार करता नहीं उसका अर्थयोग नहीं और यदि कहो उपकार करता है तो कहो देखता हूं वह उपकार क्या भावसे भिन्न है ? या भिन्न नहीं ? यदि भिन्न होता है तो आगन्तुककी भी कारणता होता है क्षणिक भावकी कारणता होती नहीं किसी प्रकारभी आगन्तुकका कार्यानुविधायित्व नहीं है । दूसरे शास्त्रमें कहाहै जो वर्षा और आतपद्वारा आकाशका कुछभी नहीं होता चर्म्महीमें आहादिकका फल होता है भावपदार्थ चर्म्मकी नाईं अनित्यहै उसमें कभीभी सत्फल नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ भावस्तैः सहकारिभिः सहैव कार्य्यं करोतीति स्वभाव इति चेत् अस्तु तर्हि सहकारिणो न जह्यात् प्रत्युत पलायमानानपि गले पाशेन बद्ध्वा कृत्यं कार्य्यं कुर्य्यात् स्वभावस्यानपायात् । किञ्च सहकारिजन्योऽतिशयः किमतिशयान्तरमारभते न वा उभयथापि प्रागुक्तदूषणपाषाणवर्षणप्रसङ्गः । अतिशयान्तरारम्भपक्षे बहुमुखानवस्थादौस्थ्यमपि स्यात् अतिशये जनयितव्ये सहकार्य्यन्तरापेक्षायां तत्परम्परापात इत्येकानवस्था आस्थेया तथाहि सहकारिभिः सलिलपवना-

दिभिः पदार्थसार्थैराधीयमाने बीजस्यातिशये बीजमुत्पादक मभ्युपेयम् । अपरथा तदभावेऽप्यतिशयः प्रादुर्भवेत् बीजञ्चातिशयमादधानं सहकारिसापेक्षमेवाधत्ते अन्यथा सर्वदोपकारापत्तौ अङ्कुरस्यापि सदोदयः प्रसज्येत तस्माद्तिशयार्थमपेक्षमाणैः सहकारिभिरातिशयान्तरमाधेयं बीजे तस्मिन्नप्युपकारे पूर्व्वन्यायेन सहकारिसापेक्षस्य बीजस्य जनकत्वे सहकारिसम्पाद्यबीजगतातिशयानवस्था प्रथमा व्यवस्थिता ॥ ८ ॥

और यदि कहो कि, भावपदार्थमें सहकारीके सार्थ कार्य्य करता है । यही उसका स्वभाव है, तो कभीभी सहकारिको परित्याग नहीं करता, वरन् उस सहकारिके भागने परभी गलेमें रस्सी बान्धकर लाना और कार्य्य कराना जिस कारण किसी समयभी स्वभाव को अन्यथा (बदलना) नहीं होता, और सहकारी जो कार्य्य उत्पादन करता है उसको छोडकर वही सहकारी आतिरिक्तान्तर उत्पन्न करता या नहीं ? दोनोंही प्रकारसे प्रागुक्त दूषणरूप पाषाण वर्ष प्रसङ्ग है और यदि कहो कि, सहकारीगण अतिशयान्तर आरम्भ करते हैं तो बहुत प्रकारके अनवस्था, दोष होते हैं । जब अतिरिक्तकार्य्य उत्पन्न होगा तब भी अन्य सहकारीकी अपेक्षा करता है, उसी प्रकार परस्पर अपेक्षितत्व प्रयुक्त एक अनवस्था दोष होताहै बीजोत्पत्तिके प्रति जलवायु प्रभृति सहकारी पदार्थ साधककी सहकारितामें ही बीज उत्पादक होताहै, अन्यथा उसके अभावमें अन्य प्रकारसे होजाता है । बीज सब जो, अतिरिक्त कार्य्य उत्पन्न करता है, वह भी सहकारी सापेक्ष है नहीं तो सर्वदा उपकार सम्भवमें सदैव बीजसे अङ्कुरकी उत्पत्ति होसकती है अत एव अतिशयार्थ अपेक्षमाण सहकारी सब बीजमें दूसरी शक्तिकी अराधना करता है । उस उपकारमें पूर्व्वोक्त प्रकारसे सहकारी सापेक्ष बीजके जनकत्व विषयमें अन्य सहकारी सम्पाद्य बीजस्थित अतिशय अवस्था ही प्रथम अनवस्था व्यवस्थित है ॥ ८ ॥

अथोपकारः कार्य्यार्थमपेक्षमाणोऽपि बीजादिनिरपेक्षं कार्य्यं जनयति तत्सापेक्षो वा प्रथमे बीजादेरहेतुत्वमापतेत् । द्वितीये अपेक्ष्यमाणेन बीजादिना उपकारे अतिशय आधेय एव तत्रापीति बीजादिजन्यातिशयनिष्ठातिशयपरम्परापात इति द्वितीयानवस्था स्थिरा भवेत् । एवमपेक्ष्यमाणेनोपकारेण बीजादौ धर्म्मिण्युपकारान्तरमाधेयमित्युपकाराधेयबीजातिशयाश्रया-

तिशयपरम्परापात इति तृतीयानवस्था दुरवस्था स्यात् । अथ भावादभिन्नोऽतिशयः सहकारिभिराधीयत इत्यभ्युपगम्यते तर्हि प्राचीनो भावोऽनतिशयात्मा निवृत्तः अन्यश्चातिशयात्मा कुर्व्वद्रूपादिपदवेदनीयो जायत इति फलितं ममापि मनोरथद्रुमेण॥९॥

कहो देखताहूं, कार्यसाधनकेलिये उपकारकी अपेक्षा करताहै या नही ? एवं बीजादिकी अपेक्षा न करके कार्य्य उत्पन्न करता है या नहीं ? अथवा बीजादिकी अपेक्षा करके कार्य्यजन्मताहै ? इसमे यदि कहोकि:- बीजादिकी अपेक्षा नहीं करता तो बीजादि अङ्कुरोत्पत्तिका कारण नहींहै यही इसमे होसकताहै और यदि कहो कि सहकारी अङ्कुरोत्पादनमें बीजादिकी अपेक्षा करता है तो अनवस्थादोषकी अवस्थिति स्थिरतर होती है इसप्रकार बीजादिमे उपकारकी अपेक्षा हेतु दूसरे उपकारकी आवश्यकता जानपडतीहै, इसीनिमित्त परस्पर उपकार और आधेय नांवका अतिशय आश्रयाश्रयितामयुक्त तृतीय अनवस्था सघटित होजाती है, सुतरां कार्य्यका दुरवस्थापात होता है । और इसीको मानो जो सहकारीगण भावसे अतिशय अभिन्नभाव आश्रय करता है तो अनतिशय प्राचीन भाव निवृत्त होता है जो आश्रयातिशय स्वरूप, वहभी अन्यप्रकारहै, सुतरां मेराही मनोरथ सफल हुआ ॥ ९ ॥

तस्मादक्षणिकस्यार्थक्रिया दुर्घटा नाप्यक्रमेण घटते विकल्पासहत्वात् । तथाहि युगपत् सकलकार्य्यकरणसमर्थः सभावस्तदुत्तरकालमनुवर्त्तते न वा । प्रथमे तत्कालवत् कालान्तरेऽपि तावत् कार्य्यकरणमापतेत् । द्वितीये स्थायित्ववृत्याशा मूषिकभक्षित बीजादावङ्कुरादिजननप्रार्थनामनुहरेत् । यद्विरुद्धधर्म्माध्यस्तं तन्नाना यथा शीतोष्णे विरुद्धधर्म्माध्यस्तश्चायमिति जलधरे प्रतिबन्धसिद्धिः न चायमसिद्धो हेतुः, स्थायिनि कालभेदेन सामर्थ्यासामर्थ्ययोः प्रसङ्गतद्विपर्य्यय सिद्धत्वात्तत्रासामर्थ्यसाधकौ प्रसङ्गतद्विपर्य्ययौ प्रागुक्तौ सामर्थ्य साधकावभिधीयेते यद्यदा यज्जननासमर्थं तत्तदा तन्न करोति यथा शिलाशकलमङ्कुरमसमर्थश्चायं वर्त्तमानार्थ क्रियाकरण काले अतीतानागतयोरर्थक्रिययोरतिप्रसङ्गः यत यदा यत् करो-

ति तत्तदा तत्र समर्थं यथा सामग्री स्वकार्य्यं करोति चायमतीतानागतकाले तत्कालवर्तिन्यावर्थक्रिये भाव इति प्रसङ्गव्यत्ययः विपर्य्ययः। तस्माद्विपक्षे क्रमयौगपद्यव्यावृत्त्या व्यापकानुपलम्भेनाधिगतव्यतिरेकव्याप्तिकं प्रसङ्गताद्विपर्य्ययबलादगृहीतान्वयव्याप्तिकं सत्त्वं क्षणिकत्वपक्ष एव व्यवस्थास्यतीति सिद्धम् ॥ १० ॥

पूर्वोक्त कारणसे जाना जाता है जो, अक्षणिककी अर्थ क्रियाभी दुर्घट है और विकल्पताके कारण अक्रममेंभी अर्थ क्रिया नही घटती। इससमय आशङ्का होती है, जो स्वभाव ही सब कार्यके करनेमें समर्थ है वह उत्तर कालका अनुवर्त्तन करता या नहीं? यदि कहो कि, उत्तर कालका अनुवर्त्तन करता है तो उसी कालकी नाई कालान्तरमें भी सम्भवित होसकता है। और उत्तर कालके अनुवर्त्तन नही करनेसे स्थायित्ववृत्तिकी आशा मूषिक भक्षित बीजके अङ्कुर जनन प्रार्थना की नाई अलीक होता है। और जो विरुद्ध धर्म्मोंकी संयोग है वह भी अनेक प्रकारका जिस प्रकार शीत और उष्ण इत्यादि मेघमें जो प्रतिबन्ध सिद्धि वह भी विरुद्ध धर्म्म जानना और यह प्रसिद्ध हेतु नहीं है, स्थायी विषयमें कालभेदके कारण सामर्थ्य और असामर्थ्यके प्रसङ्ग और उसके विपर्य्यय सिद्धत्व प्रयुक्त पूर्वोक्त प्रसङ्ग और उसके विपर्य्यय असामर्थ्य साधक होताहै अतएव सामर्थ्यही कार्य्यसाधक कहकर जाना जाता है। जिस समय जो कार्य्य जननेमें असमर्थ होता उस समय वह उस कार्य्यको नहीं कर सकता जिसप्रकार शिलाखण्डभी अङ्कुरोत्पादनमें असमर्थ होताहै और वर्त्तमानार्थ क्रियामें और एवं अतीत और अनागत अर्थ क्रियामें अति प्रसङ्ग होताहै। जब जो जिसको करता है, तब वह उसमें समर्थ होताहै जिस प्रकार कार्य्य मात्रकी प्रति उस कार्य्यकी सामग्री कार्य्य साधनमें समर्थ होती है। अत एव विपक्षमें क्रमयोग व्यावृत्ति अनुसार व्यापकानुपलम्भके कारण अधिगत व्यतिरेक व्याप्ति एवं प्रसङ्गसे तद् विपर्य्यय वशात गृहीत अन्वय व्याप्ति हेतु क्षणिकत्व पक्षही सिद्ध हुआ ॥ १० ॥

तदुक्तं ज्ञानश्रिया--यत् सत् तत् क्षणिकं यथा जलधरः सन्तश्च भावा अमी सत्ताशक्तिरिहार्थकर्म्मणि मितेः सिद्धेषु सिद्धा न सा ॥ नाप्येकैव विधान्यथापरकृतेनापि क्रियादिर्भवेद् द्वेधापि क्षणभङ्गसङ्गतिरतः साध्ये च विश्राम्यतीति ॥ ११ ॥

ज्ञानश्री—ने कहाहै जो पदार्थ सत् है, वही क्षणिक है, जिस प्रकार आकाशमें मेघ विद्यमान देखा जाताहै, क्षणभरके पीछे उसका अभाव होता है । ये सब पदार्थोंकी विद्यमानता क्रियामात्रही सिद्ध है ॥ ११ ॥

न च कणभक्षाक्षचरणादिपक्षकक्षीकारेण सत्तासामान्य योगित्वमेव सत्त्वमिति मन्तव्यं सामान्यविशेषसमवायानामसत्वप्रसङ्गात् न च तत्र स्वरूपसत्तानिवन्धनः सद्व्यवहारः प्रयोजकगौरवापत्तेः अनुगतत्वाननुगतत्वविकल्पपराहतेश्च सर्षप महीधरादिषु विलक्षणेषु क्षणेष्वनुगतस्याकारस्य मणिषु सूत्रवद्भूतगणेषु गुणवच्चाप्रतिभासनाच्च ॥ १२ ॥

कणाद और अक्षपादादिका मत स्वीकार करके सत्तासामान्ययोगित्वही सत्त्व है यहभी नहीं कहाजाता जिसकारण सामान्यभी विशेषके समवायका सत्त्वप्रसङ्ग होताहै । और यदि उसका स्वरूप सत्तानिवन्धन सद्व्यवहार होता नहीं कहो तो प्रयोजककी गौरवापत्ति होजातीहै । और अनुगतत्त्व और अननुगतत्त्व यही विकल्पका पराभव होताहै । कभीभी अतिविषय सर्षप और पर्व्वत एवं मणि और गुणवन्ध भौतिकपदार्थका समान प्रतिभास नहीं होता ॥ १२ ॥

किञ्च सामान्यं सर्वगतं स्वाश्रयसर्वगतं वा प्रथमे सर्ववस्तुसंकरप्रसङ्गः । अपसिद्धान्तापत्तिश्च यतः प्रोक्तं प्रशस्तपादेन—स्वविषयसर्वगतमिति किञ्च विद्यमाने घटे वर्त्तमानं सामान्यमन्यत्र जायमानेन सम्बध्यमानं तस्मादागच्छत्सम्वध्यते अनागच्छद्वा आद्ये द्रव्यत्वापत्तिः द्वितीये सम्बन्धानुपपत्तिः । किञ्च विनष्टे घटे सामान्यमवतिष्ठते न विनश्यति स्थानान्तरं गच्छति वा प्रथमे निराधारत्वापत्तिः द्वितीये नित्यत्ववाचो युक्त्ययुक्तिः तृतीये द्रव्यत्वप्रसक्तिः, इत्यादि दूषणग्रहग्रस्तत्वात् सामान्यमप्रामाणिकम् ॥ १३ ॥

पक्षान्तरमें कहतेहैं -सामान्यही क्या सर्वगत है ? किम्वा स्वाश्रयत्वही सर्वगतहै ? इसी आनन्दमें यदि कहो कि. सामान्यही सर्वगत है तो सब वस्तुओंका सांकर्य्य प्रसङ्ग होताहै और अपसिद्धान्तकी उपपत्ति होती है । जिसका कारण प्रथम पादमेंही कहा है और

विद्यमान घटमेंही सामान्यत्व वर्त्तमान रहताहै-अन्यत्र जायमान पदार्थका सम्बन्ध मात्र देखाजाताहै इसलिये जो वर्त्तमान है, उसीके साथ सम्बन्ध होताहै क्या ? या जो अवर्त्तमान है उसके साथ सम्बन्ध होजाता है ? इसके आद्यपक्षमें द्रव्यत्वापत्ति एवं द्वितीय पक्षमें सम्बन्धकी अनुपपत्ति होतीहै। दूसरा पक्ष कहता है- क्या विनष्ट घटमेंही सामान्य वर्त्तमान रहता है ? या घटके नाशसे उसका भी नाश होताहै ? किम्वा वह दूसरे स्थानमें चला-जाताहै ? यदि कहो कि, विनष्ट घटमेंही वह रहता है तो निराधारापत्ति होती है, अर्थात् घटके नाश से किसके आधारसे उसका रहना हो सकता है। और घटके नाशसे सामान्यका नाश होता है, इस बातके बोलनेसे नित्यता वाक्य अलौकिक होजाता है। और घटके नाश होनेपर सामान्य अन्यत्र गमन करता है, यह कहनेसे द्रव्यत्व प्रसक्ति होती है। इनदोषोसे जाना जाता है, कि सामान्य उक्त दोषसमूह ग्रस्त होनेसे अप्रामाणिक है ॥ १३ ॥

तदुक्तम्-अन्यत्र वर्त्तमानस्य ततोऽन्यस्थानजन्मनि। तस्मादचलतः स्थानाद्वृत्तिरित्यति युक्तता ॥ यत्रासौ वर्त्तते भावस्तेन सम्बध्यते न तु। तद्देशिनश्च व्याप्नोति किमप्येतन्महाद्भुतम् ॥ न याति न च तत्रासीदस्ति पश्चान्न चांशवत् जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसनसन्ततिरिति ॥ अनुवृत्तप्रत्ययः किमालम्बन इति चेत् अङ्ग अन्यापोहालम्बन एवेति सन्तोष्टव्यमायुष्मतेति अलमति प्रसङ्गेन ॥ १४ ॥

शास्त्रान्तरमें लिखा है जो, अन्यत्र वर्त्तमान पदार्थके अन्यस्थानमें अवस्थान और अन्य स्थानमें जन्म हो सकता है, किन्तु जो लोग अपने स्थानसे सचल, उन सबकी ही इस प्रकारकी वृत्ति होजाती है। यह युक्ति युक्त मत नहीं है। जिस स्थानमें भावपदार्थ वर्त्तमान रहता है, उसी स्थानके साथ उसका कोई सम्बन्ध नही जो अन्यत्र नही गमन करता और उस स्थानमें पहिलेभी नहीं था, एवं परकालमें अंशरूप नही था, वह पदार्थ पूर्वाधार परित्याग नही करता। यही स्थिर वृत्ति जानना ॥ १४ ॥

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्व्वतीर्थकरसम्मतम्। अन्यथा तन्निवर्त्तयिषूणां तेषां तन्निवृत्त्युपाये प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। तस्मात् सर्व्वं दुःखं दुःखमिति भावनीयम्। ननु किं वदिति पृष्टे दृष्टान्तः कथनीय इति चेन्मैवं स्वलक्षणानां क्षणानां क्षणि-

कतया सालक्षण्याभावात् नैतेन सदृशमपरमिति वक्तुमशक्य-त्वात् । ततः स्वलक्षणं स्वलक्षणमिति भावनीयम् । एवं शून्यं शून्यमपि भावनीयं स्वप्ने जागरणे च न मया दृष्टमिदं रजतादीति विशिष्टनिषेधस्योपलम्भात् । यदि दृष्टं सत् तदा तद्विशिष्टस्य दर्शनस्येदन्ताया अधिष्ठानस्य च तस्मिन्नध्यस्तस्य रजतत्वादेस्तत् सम्बन्धस्य च समवायादेः सत्त्वं स्यात् न चैतदिष्टं कस्यचिद्वादिनः । न चार्द्धजरतीयमुचितं न हि कुक्कुट्या एको भागः पाकाय अपरो भागः प्रसवाय कल्प्यतामिति कल्प्यते। तस्मादध्यस्ताधिष्ठानं तत् सम्बन्धदर्शन द्रष्टृणां मध्ये एकस्यानेकस्य वा असत्त्वे निषेधविपयत्वेन सर्व्वस्यासत्त्वं बलादापतेदिति भगवतोपदिष्टे माध्यमिकास्तावदुत्तमप्रज्ञा इत्थमचीकथन् । भिक्षुपादप्रसारणन्यायेन क्षण भङ्गाद्यभिधानमुखेन स्थायित्वानुकूलवेदनीयत्वानुगतसर्व्वसत्यत्वभ्रमव्यावर्त्तनेन सर्व्वशून्यतायामेव पर्य्यवसानम् । अतस्तत्त्वं सदसदुभयानुभवात्मकचतुष्कोटिविनिर्म्मुक्तं शून्यमेव । तथाहि यदि घटादेः सत्त्वं स्वभावस्तर्हि कारकव्यापार वैयर्थ्यम् । असत्त्वं स्वभाव इति पक्षे प्राचीन एव दोपः प्रादुष्यात् ॥ १८ ॥

सबहीके पक्षमें संसार दुःखकर यही सर्व्वसम्मत पक्ष है । अन्यथा संसारनिवृत्तिसमुत्सुकलोगोंके संसारनिवृत्तिके उपायमें प्रवृत्तिकी आपत्ति होतीहै अतएव सब संसार दुःखजनक है यही भावना करनी होगी इसविषयमें यदि कोई जिज्ञासा करे जो संसार किसकी नाई दुःखजनक करताहै? इसमें दृष्टान्त कहना आवश्यक है सो नहीं । स्वलक्षण क्षणके क्षणिकत्व हेतु सो लक्षणका अभाव है अर्थात् सदृशाभाव प्रयुक्त दृष्टान्तका देना असम्भव है संसारमें जिसप्रकार दुःखभोग होताहै इसप्रकार दुःखका अन्यत्र सम्भव नहीं कहकर दृष्टान्तप्रदर्शनद्वारा सांसारिक दुःखका प्रकाश होसकताहै । अतएव जिसका कोई लक्षण नहीं उसको उसके रूपमें भावना करनी चाहिये—जिसप्रकार शून्यको शून्यत्वरूपही ज्ञान करना पड़ता है । [illegible] में वा जागरणमें रजतादि नहीं देखताहूं इसस्थानमेंभी विशिष्टनिषेधका उपल-

पहै। और यदि दृष्ट पदार्थ ही सत् होता है तो उससे विशिष्ट कहे दर्शन होनेहीसे उसके अधिष्ठानका एवं उस अधिष्ठानमें अधिष्ठित रजतादि और तत् सम्बंध समवायादि सत्ता जानी जाती है, इसको कोई वादीभी स्वीकार नहीं करता । और अर्द्धजरती मतसे भी उचित नहीं, जिसकारण कुक्कुटका एक भाग पाकार्थ एवं अपर भाग प्रसवार्थ इसप्रकार कल्पना नहीं कियी जाती । अतएव अध्यस्त, अधिष्ठान और उसका सम्बन्ध दर्शन द्रष्टा आदिके मध्यमें एक या अनेककी सत्तामें बलपूर्व्वक सबकी असत्ताकी आपत्ति होती है । भगवद्बुद्धि विषयमें भी उत्तम प्राज्ञ माध्यामिक लोगोंने भी इसी प्रकार कहा है। क्षणभङ्गादि कथनद्वारा स्थायित्वानुकूल ज्ञातव्यार्थानुगत सब पदार्थही सत्यत्वके भयके व्यावर्त्तन हेतु सर्व शून्यताही पर्य्यवसित होताहै । इसलिये तत्त्वही सत् और असत् यही उभयात्मक वास्तविक वह शून्य है । यदि घटादिका सत्त्वही स्वभाव होता तो कर्त्तादि कारक व्यापार व्यर्थ होता है और असत् स्वभाव पक्षमें भी प्राचीन दोषका प्रादुर्भाव होजाताहै ॥ १५ ॥

यथोक्तम्--न सतः कारणापेक्षा व्योमादेरिव युज्यते। कार्य्यस्यासम्भवो हेतुः खपुष्पादेरिवासत इति ॥ विरोधादितरौ पक्षावनुपपन्नौ तदुक्तं भगवताऽलङ्कावतारे--बुद्ध्या विविच्यमानानां स्वभावो नावधार्य्यते । अतो निरभिलप्यास्ते निःस्वभावाश्च दर्शिता इति ॥ इदं वस्तु बलायातं यद् वदन्ति विपश्चितः। यथा यथार्थाश्चिन्त्यंते विशीर्य्यन्ते तथा तथेति च ॥ न क्वचिदपि पक्षे व्यवतिष्ठत इत्यर्थः दृष्टार्थव्यवहारश्च न स्वप्नव्यवहारवत् संवृत्त्या सङ्गच्छते ॥ अत एवोक्तम्--परिव्राट् कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ । कुणपः कामिनी भक्ष्य इति तिस्रो विकल्पना इति ॥ १६ ॥

दूसरे शास्त्रमें कहा है कि, जिस प्रकार आकाशादिकी कारणकी अपेक्षा नहीं उसी प्रकार सत्पदार्थकी कारणापेक्षा युक्त नहीं होती । और जिस प्रकार आकाश पुष्पका कार्य्य असम्भव है, उसीप्रकार असत्पदार्थका अभाव हेतु है उसका कार्य्य असम्भव जानना । और विरोध हेतु अन्य दोनोंपक्ष अनुपपन्न होते है, भगवाननें लङ्कावतारमें कहाहै जो, बुद्धिद्वारा विविच्यमान पदार्थका स्वभाव अवधारण नहीं किया जाता इसलिये सबपदार्थोंका कोई स्वभाव नहीं है यही जानाजाताहै । और यह यही वस्तु है

पण्डितलोग बलपूर्व्वक यह बात कहते हैं । जिस कारण जिस २ स्थानमें वस्तुका निश्चय होजाताहै, उसी २ स्थानमें वे सब शीर्ण (नाश) होते हैं, सुतरां वस्तुकी सत्ताही असम्भव होती है । दृष्टार्थ व्यवहार भी वृत्तिक्रममें सङ्गत नहीं होता । अतएव कहाहै जो परिव्राजक कामुक और कुक्कुट ये सबही एक प्रमदाशरीरमें समासक्त है परन्तु इन सबके प्रकार भेद है ॥ १६ ॥

तदेवं भावनाचतुष्टयवशान्निखिलवासनानिवृत्तौ परनिर्व्वाणं शून्यरूपं सेत्स्यतीति वयं कृतार्थाः नास्माकमुपदेश्यं किञ्चिदस्तीति । शिष्यैस्तावद्योगश्चाचारश्चेति द्वयं करणीयम् । तत्राप्राप्तस्यार्थस्य प्राप्तये पर्य्यनुयोगो योगः गुरूक्तस्यार्थस्याङ्गीकरणमाचारः गुरूक्तस्याङ्गीकरणादुत्तमाः पर्य्यनुयोगस्याकरणादधमाश्च अतस्तेषां माध्यमिका इति प्रसिद्धिः । गुरूक्तभावनाचतुष्टयं बाह्यार्थस्य शून्यत्वञ्चाङ्गीकृत्यान्तरस्य शून्यत्वञ्चाङ्गीकृतं कथमिति पर्य्यनुयोगस्य करणात् केषाञ्चिद् योगाचारप्रथा । एषा हि तेषां परिभाषा स्वयं वेदनं तावदङ्गीकार्य्यमन्यथा जगदान्ध्यं प्रसज्येत । तत् कीर्तितं धर्म्मकीर्त्तिना ॥ १७ ॥

तब चारों भावनाओंके कारण निखिल वासनाकी निवृत्ति होनेसे जो परम मोक्षपद लाभ होता है. वहभी शून्यरूपमें सिद्ध होता है इस समय हमही लोग कृतार्थ हुए, हमलोगोंका और कुछ उपदेश नही किन्तु शिष्यगण योग और आचार येही दो कार्य्य करेंगे अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिये जो पर्य्यनुयोग उसीको योग कहते हैं, और गुरु जो कहते हैं, उसीका स्वीकार करना आचार है । जो लोग गुरुका उपदेश ग्रहण करते हैं वही लोग उत्तमाधिकारी हैं और जो लोग योगानुष्ठान नही करते वे लोग अधम अधिकारी हैं। अतएव माध्यमिकाधिकारी प्रसिद्धही है गुरूक्त भावना चतुष्टय और शून्यता स्वीकार करनेपर आन्तरिक की शून्यता किस प्रकार स्वीकृत होसकती ? योगाचरण हेतु किस २ व्यक्तिकी योगाचरण प्रथा प्रसिद्ध हुई है । यह उनकी परिभाषामात्र है । स्वयं ज्ञानही उन सबके स्वीकार करने योग्य हैं. अन्यथा जगत्‌हीकी अन्धता प्रसङ्ग हो उठेगी । यही धर्म्मकीर्त्ति मानवगणने कीर्त्तन किया हैं ॥ १७ ॥

प्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिध्यतीति । बाह्यं ग्राह्यं नोपपद्यत एव विकल्पानुपपत्तेः । अर्थो ज्ञानग्राह्यो भावादुत्पन्नो भवति अनुत्पन्नो वा । न पूर्व्वः उत्पन्नस्य स्थित्यभावात् नापरः अनुत्पन्न-

स्यासत्त्वात् । अथ मन्येथाः अतीत एवार्थो ज्ञानग्राह्यः तज्जनकत्वादिति तदपि बालभाषितं वर्त्तमानतावभासविरोधात् इन्द्रियादेरपि ग्राह्यत्वप्रसङ्गाच्च ॥ १८ ॥

और अप्रत्यक्षीभूत पदार्थकी अर्थदृष्टि प्रसिद्ध नहीं जिसकारण बाह्यपदार्थ ग्राह्य है या अग्राह्य? इसप्रकार विकल्पकी उपपत्ति असम्भवहै । ज्ञानग्राह्य क्या भावपदार्थसे उत्पन्न होताहै या अभावजन्य ? इसमें कहना यही है जो ज्ञानग्राह्य अर्थ भावपदार्थसे उत्पन्न होता है यह नहीं कहाजाता कारण यह है जो उत्पन्न पदार्थकी स्थिति नहीं । और अभावजन्य यहभी नहीं हो सकताहै; जिसकारण अनुत्पन्नकी सत्ता असम्भव नही यदि यही ज्ञान करोजो तज्जनकत्वहेतु भूतअर्थही ज्ञानग्राह्य है तो यहभी बालकका वाक्यहै जिसहेतु अतीतार्थकी वर्त्तमानताका विरोध है एवं इन्द्रियादिकाभी ग्राह्यात्वप्रसङ्ग होताहै । इसलिये अतीतार्थज्ञान ग्राह्य होसकताहै ॥ १८ ॥

किञ्च ग्राह्यः किं परमाणुरूपोऽर्थः अवयविरूपो वा । न चरमः कृत्स्नैकदेशविकल्पादिना तन्निराकरणात् । न प्रथमः अतीन्द्रियत्वात् षट्केन युगपद्योगस्य बाधकत्वाच्च । यथोक्तम्—षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता । तेषां मध्येकदेशत्वे पिण्डः स्यादणुमात्रक इति ॥ तस्मात् स्वव्यतिरिक्तग्राह्यविरहात्तदात्मिका बुद्धिस्स्वयमेव स्वात्मरूप प्रकाशिका प्रकाशवदितिसिद्धम् । तदुक्तम्—नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति तस्यानानुभवोऽपरः । ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाशत इति ॥ १९ ॥

दूसरा पक्ष कहते हैं:—परमाणुरूप ही क्या अर्थ ग्रहण होता है अथवा अवयवरूपमें अर्थग्रहण होताहै? इसमें वक्तव्य यहहै जो अवयवरूपमें अर्थग्रहण होताहै, यह कहा नहीं जाता कारण यह है जो सबपदार्थका क्या एकदेशका ज्ञान होताहै? इसप्रकार विकल्पद्वाराही उसका निरास होताहै । और परमाणुरूपसे अर्थग्रहण होताहै यह सम्भव नहीं । जिसकारण परमाणु अतीन्द्रिय वह ग्राह्य नहीं होसकता एव षट् पदार्थका एकदा योगमें बाधक है शास्त्रान्तरमें कहाहै जो छःपदार्थका एकदा योग स्वीकार करनेपर परमाणुकोभी छः अंश होसकते और उन सबका एकदेशमात्र कहहेंगे पिण्डभी अणुमात्र होजाताहै । अतएव स्वव्यतिरिक्तमें ग्राह्य नहीं होसकता सुतरां तदात्मका बुद्धि स्वयही आत्मरूपमें प्रकाश पाताहै । जिसप्र-

कार प्रकाश अपनेआप बढ़ताहै उसीप्रकार वस्तुविषयक बुद्धि भी स्वय प्रकाशित हो जाती है इसी विषयमें कहा है जो बुद्धिका दूसरा अनुभवनीय नहीं एवं बुद्धिका भी अपर अनुभव असम्भवहै तो ग्राह्य और ग्राहककी विचित्रता वशात् स्वयं बुद्धि प्रकाश पाती है ॥ १९॥

ग्राह्यग्राहकयोरभेदश्चानुमातव्यः यद्वेद्यते येन वेदनेन तत्ततो न भिद्यते यथा ज्ञानेनात्मा। वेद्यन्ते तैश्च नीलादयः। भेदे हि सत्य-धुना अनेनार्थस्य सम्बन्धित्वं न स्यात् तादात्म्यस्य नियम हेतोरभावात्तदुत्पत्तेरनियामकत्वात् यश्चायं ग्राह्यग्राहकसंवि-त्तीनां पृथगवभासः-। स एकस्मिंश्चन्द्रमसि द्वित्वावभास इव भ्रमः । अत्राप्यनादिरविच्छिन्नप्रवाहभेदवासनैव निमित्तम् । यथोक्तम्--सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः । भेदश्च भ्रा-न्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वय इति ॥ अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्य्यासितदर्शनैः । ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यत इति च ॥ न च रसवीर्य्यविपाकादिसमानमाशामोदकोपार्जित मोदकानां स्यादिति वेदितव्यं वस्तुतो वेद्यवेदकाकारविधु-राया अपि बुद्धेर्व्यवहर्त्तृपरिज्ञानानुरोधेन विभिन्नग्राह्यग्राह-काकाररूपवत्तया तिमिराद्युपहताक्ष्णां केशेन्द्रनाडीज्ञाना भेद-वदनाद्युपप्लववासनासामर्थ्याद्व्यवस्थोपपत्तेः पर्यनुयो गात् । यथोक्तम्--अवेद्यवेदकाकारा यथा भ्रान्तैर्निरीक्ष्यते । विभक्त-लक्षणग्राह्यग्राहकाकारविप्लवा ॥ तथा कृतव्यवस्थेयं केशा-दिज्ञानभेदवत् । यदा तदा न सञ्चोद्या ग्राह्यग्राहकलक्षणेति ॥ तस्माद्बुद्धिरेवानादिवासनावशादनेकाकारवभासत इति सिद्ध-म् । ततश्च प्रागुक्तभावनाप्रचयबलान्निखिलवासनोच्छेदविगलि-तविविधविषयाकारोपप्लवविशुद्धविज्ञानोदयो महोदय इति॥२०॥

और ग्राह्य और ग्राहक इन्ही दोनोंके अभेद हेतु यही अनुमान किया जासकता जो; वही ज्ञानान्तरसे भी ज्ञानद्वारा उसका भेदज्ञान होता नहीं जिसप्रकार ज्ञानद्वारा

आत्माको जान सकते एवं नीलादि भी परिज्ञात होजाताहै । यदि भेदज्ञान रहताहै तो अधुना अर्थका सम्बन्ध नहींहोता । जिसकारण तादात्म्यके नियमहेतु अभावप्रयुक्त उसकी उत्पत्तिकी नियामकता है । इसप्रकार जो ग्राह्य और ग्राहक ज्ञानका पृथक्प्रकाश होताहै वह एक चन्द्रमामें द्वित्व (दो) ज्ञानकी नाईं भ्रम मात्रजानना । वस्तुतः इसविषयमें अनादि अविच्छिन्न प्रवाहभेदवासनाही निमित्त है । शास्त्रान्तरमें कहाहै जो, एकत्र ज्ञानकी उपलब्धिका नियम होनेपर नीलपदार्थ और उसकी बुद्धि इन सबका अभेद होताहै । और इसका जो भेदज्ञान वह एक चन्द्रमामें दो चन्द्रमाके ज्ञानकी नाईं भ्रान्ति जानना । और जो लोग विपरीतदर्शी हैं उनलोगोंके पक्षमें बुद्धि औरआत्माका अविभागग्राह्यग्राहक ज्ञानका भेद निशिष्टकी नाईं लक्षित होताहै और रसवीर्य्य विपाकादि आशारूपी लड्डुके तुल्य नहीं है । यही जानना होगा । वास्तविक बुद्धि वेद्य और वेदन कर्त्ताके अधीनहै व्यवहार कर्त्ताके परिज्ञानानुरोधसे विभिन्न ग्राह्य और ग्राहकाकार रूपकताहै । जिसप्रकार जिनलोगोंके चक्षु अन्धकारादिद्वारा उपहत हुआहै । उन सबका केश इन्द्रिय और नाडी इन सबका अभेदज्ञान होताहै उसीप्रकार अनादि उपप्लव (उत्पात) वासना सामर्थ्यादिकी उपपत्ति है दूसरे शास्त्रमें कहाहै जो, जिसप्रकार भ्रान्तव्यक्ति गण प्रकृत (असल) अर्थ न जानकर भी जानते हैं ऐसा ज्ञानकरते हैं एव ग्राह्य और ग्राहक विभाग नही कर सकते उसीप्रकार बुद्धिकी व्यवस्था जाननी । उपहत चक्षु व्यक्तिका केशादि ज्ञानभेदकी नाईं ग्राह्य ग्राहक लक्षण वक्तव्य नहीं है अतएव जाना जाता है जो बुद्धि अनादि वासना वशात अनेक रूपमें प्रकाश होतीहै । इसी कारण पूर्वोक्त भावना समूह वशसे वासनाका उच्छेद होकर बुद्धिकी विविध . . निवृत्ति होनेपर जो विशुद्ध ज्ञानोदय होता है । उसीको महोदय कहकर . .त है ॥ २० ॥

अन्येतु मन्यन्ते यथोक्तं बाह्यं वस्तुजातं नास्तीति तदयुक्तं प्रमाणाभावात् । न च सहोपलम्भ नियमः प्रमाणमिति वक्तव्यं वेद्यवेदकयोरभेदसाधकत्वेनाभिमतस्य तस्याप्रयोजकत्वेन सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वात । ननु भेदे सहोपलम्भनियमात्मकं साधनं न स्यादिति चेन्न । ज्ञानस्यान्तर्मुखतया च भेदेन प्रतिभासमानतया एकदेशत्वैककालत्वलक्षणसहत्वनियमासम्भवाच्च नीलाद्यर्थस्य ज्ञानाकारत्वे अहमिति प्रतिभासः स्यात् नत्विदमिति प्रतिपत्तिः प्रत्ययादव्यतिरेकात् । अथोच्यते ज्ञानस्वरूपोऽपि नीलाकारो भ्रान्त्या बहिर्वद्भेदेन प्रतिभासत

इति न च तत्राहमुल्लेख इति । तथोक्तम्--परिच्छेदान्तराद्योयं भागो बहिरिव स्थितः । ज्ञानस्याभेदिनो भेदप्रतिभासोऽप्युपप्लव इति । यदन्तर्ज्ञेयतत्वं तद्बहिर्वदवभासत इति च ॥ २१ ॥

अन्यान्य वादी लोग यही विवेचना करते हैं जो बाह्य वस्तुसमूह नहीं यह युक्तियुक्त मत नहीं है, जिसकारण बाह्य पदार्थ नहीं इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं दीखता । यहभी नहीं कहा जासकता, जो सहोपलब्धिही प्रमाणरूपसे विद्यमान है । कारण यह है जो वेद्य और वेदक इन्हीं दोनोंके अभेदकत्वमें अभिमत उपलब्धिका सन्देह होताहै जिसकरण विपक्षीगण उसकी निवृत्ति करते हैं । यदि कहो जो भेद विषयमें सहोपलब्धि नियममें प्रयोजन साधन नहीं होताहै । सो नहीं कारण यह है जो ज्ञानके आन्तरिकत्व प्रयुक्त भेदरूपसें प्रतिभासमान होताहै; सुतरां एकदेशकत्व और एककालत्व लक्षणमें सहोपलब्धिनियमका सम्भव नहीं । नीलादि अर्थका ज्ञानाकारकत्व होनेहीसे " अहं " इसप्रकार प्रतिभास होसकताहै किन्तु " इदं " यही ज्ञान प्रत्ययके अव्यतिरिक्त नहीं । इसविषयमें यही कहाजासकता जो ज्ञानस्वरूप और नीलाकार केवल भ्रान्तिक्रमसे बाह्यपदार्थकी नाईं भेदरूपसे प्रतीयमान होताहै किन्तु उसस्थलमें अहंशब्दका उल्लेख नहीं । शास्त्रान्तरमें कहाहै ,जो इसप्रकार विभाग परिच्छेदान्तरका आद्य यह बाह्यपदार्थकी नाईं अवस्थित है । अभेदज्ञानका जो भेद प्रतिभास वह निर्दुष्ट नहीं । और ज्ञानका जो अन्तरिकत्व वहभी बाह्यपदार्थकी नाईं प्रतीयमान होताहै ॥ २१ ॥

तदयुक्तं बाह्यार्थाभावे तदुत्पत्तिरहिततया बहिर्वदित्युपमानोक्तेरयुक्तेः।न हि वसुमित्रो वन्ध्यापुत्रवदभासत इति प्रेक्षावानाचक्षीत। भेदप्रतिभासस्य भ्रान्तत्वे अभेदप्रतिभासस्य प्रामाण्यम् । तत्प्रामाण्ये च भेदप्रतिभासस्य भ्रान्तत्वमिति परस्पराश्रयप्रसङ्गाच्च अविसंवादान्नीलतादिकमेव संविदाना बाह्यमेवोपाददते जगत्युपेक्षन्तेऽवान्तरमिति व्यवस्थादर्शनाच्च । एवञ्चायमभेदसाधको हेतुर्गोमयपायसीयन्यायवदाभासतां भजेत । अतो बहिर्वदिति वदता बाह्यं ग्राह्यमेवेति भावनीयमिति भवदीय एव बाणो भवन्तं प्रहरेत ॥ २२ ॥

और बाह्य पदार्थके न माननेसे उन सबकी उत्पत्तिरहित होनेसे " बाह्यपदार्थकी नाईं " इस उपमाका देना युक्तिहीन होता है । भेदज्ञान भ्रान्त होनेसे अभेद [illegible] होनेका प्रमाण्य होता है । और उसके प्रमाण्य होनेपर भेदप्रतिभासको [illegible] कहाजाता है । सुतरां अन्यो-

न्याश्रयदोषका प्रसङ्ग होताहै; परन्तु नीलत्वादिविषयमें कोई विवादही नहीं । ऐसा होनेसे अभेद साधक गोमयपायसीयन्यायकी नाईं अभासनाभागी होसकता है । इसलिये बाह्यरदार्थकी नाईं यह कारण कहकर बाह्यपदार्थ ग्राह्यहै यहभावना करनी चाहिये, इसलिये तुम लोगोंकी रूपवतीवाद तुमही लोगोंको मारतीहै ॥ २२ ॥

ननु ज्ञानाभिन्नकालस्यार्थस्य बाह्यत्वमनुपपन्नमिति चेत्तदनुपपन्नम् । इन्द्रियसन्निकृष्टस्य विषयस्योत्पाद्ये ज्ञाने स्वाकारसमर्पकतया समर्पितेन चाकारेण तस्यार्थस्यानुमेयतोपपत्तेः । अतएव पर्य्यनुयोगपरिहारौ समग्राहिषाताम्—

भिन्नकालं कथं ग्राह्यमिति चेत् ग्राह्यतां विदुः ।
हेतुत्वमेव च व्यक्तेर्ज्ञानाकारार्पणक्षममिति ॥

तथाच, यथा पुष्ट्या भोजनमनुमीयते यथा च भाषया देशः यथा वा सम्भ्रमेण स्नेहः, तथा ज्ञानाकारेण ज्ञेयमनुमेयं तदुक्तम्,

अर्द्धेन घटयत्येनां नहि मुक्त्वार्द्धरूपताम् ।
तस्मात् प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपतेति ॥ २३ ॥

यदि कहो कि ज्ञानसे अभिन्न कार्य्यकालार्थ—का बाह्यत्व अनुपपन्न हुआ इसकी भी उपपत्ति भी इन्द्रिय संनिकृष्टता विषयका ज्ञानहोनेसे स्वीय आकारकी समर्पकता वशतः समर्पित आकारके अनुसार उस अर्थका अनुमान होताहै अत एव पर्य्यनुयोग और परिहार ग्रहणकियाहै। इस विषयका प्राचीन उपदेशहै जो भिन्नकाल किसप्रकार ग्रहणकिया जासकता? इस आशङ्काम कहाहै जो व्यक्तिका हेतुत्वही ज्ञानाकार समर्पणमें सक्षमहोता है । इस समय यह जानाजाता है कि जिसप्रकार पुष्टिद्वारा भोजनका अनुमान कियाजाताहै । उसीप्रकार ज्ञानाकारमें ज्ञेयपदार्थका अनुमान होताहै । इस विषयमें शास्त्रान्तरका वचनहै जो कभीभी आधेका छोडकर आधेसे कार्य नहीं घटसकता अत एव प्रमेयरूपताही प्रमेयका अधिगमविषयमें कारणहै ॥ २३ ॥

न हि वित्तिसत्तैव तद्वेदना युक्ता तस्याः सर्वत्राविशेषात् । तान्तु सारूप्यमाविशत् सरूपयितुं घटयेदिति च । तथाच बाह्यार्थसद्भावे प्रयोगः ये यस्मिन् सत्यपि कादाचित्काः ते सर्वे तदतिरिक्तसापेक्षाः । यथा अविवक्षति अजिगमिषति मयि वचन गमनप्रतिभासा विवक्षुजिगमिषुपुरुषान्तरसन्तानसापेक्षाः ।

तथाच विवादाध्यासिताः प्रवृत्तिप्रत्ययाः सत्यप्यालयविज्ञाने कदाचिदेव नीलाद्युल्लेखना इति । तत्रालयविज्ञानं नामाहमास्पदं विज्ञानं, नीलाद्युल्लेखि च प्रवृत्तिविज्ञानम् । यथोक्तम्—

तत् स्यादालयविज्ञानं यद् भवेदहमास्पदम् ।
तत् स्यात् प्रवृत्तिविज्ञानं यन्नीलादिकमुल्लिखेदिति ॥२४॥

और ज्ञानसत्ताही जो ज्ञान है यहभी युक्त नहीं होता जिसकारण ज्ञानसत्ताका सर्वत्रही अविशेष देखाजाताहै । इस ज्ञानसत्ताकी समानरूपता प्रवेशहै उसमें भी समानरूपता संघटित करसकतीहै सुतरां जानपड़ताहै जो बाह्यसद्भवही प्रयोग होताहै । जो सबपदार्थ जिसकी सत्तामें कदाचित् उपपन्नहोताहै । वे ही पदार्थ उसके अतिरिक्तपदार्थकी अपेक्षा रहतीहै । जैसे अविविक्षति और अजिगमिषति इनदोनोंपदोंमें वचन और गमन प्रतिषेध प्रतीयमान होतेहैं । परन्तु वचनेच्छु और गमनेच्छु व्यक्ति पुरुषान्तरकी अपेक्षाकरताहै; सुतरां इस समय प्रवृत्ति प्रत्यय विवादास्पद ही हुआ । आलयपरिज्ञान सत्त्वही कदाचित् नीलादिका उल्लेख होताहै । इस समय आलयविज्ञानही " अहं " इत्याकारज्ञानका आस्पद एवं वह भी ज्ञानस्वरूप और प्रवृत्ति विज्ञानभी नीलादि उल्लेखकरना पडताहै । इस विषयमें कहाहै जो जिसको अहंज्ञानका आस्पद वही आलयविज्ञान और प्रवृत्तिविज्ञान जिसमें नीलादिका उल्लेख होताहै ॥ २४ ॥

तस्मादालयविज्ञानसन्तानातिरिक्तः कादाचित्कः प्रवृत्तिविज्ञानहेतुर्बाह्योऽर्थो ग्राह्य एव, न वासनापरिपाकप्रत्ययः कादाचित्कत्वात् कदाचिदुत्पाद इति वेदितव्यम् । विज्ञानवादिनये हि वासनानामेकसन्तानवर्त्तिनामालयविज्ञानानां तत्तत्प्रवृत्तिजननशक्तिः तस्याश्च स्वकार्य्योत्पादं प्रत्याभिमुखं परिपाकः तस्य च प्रत्ययः कारणं स्वसन्तानवर्त्तिपूर्वक्षणः कक्षीक्रियते सन्तानान्तरनिबन्धनत्वानङ्गीकारात् । ततश्च प्रवृत्तिज्ञानजननालयविज्ञानवर्त्तिवासनापरिपाकं प्रति सर्वेऽप्यालयविज्ञानवर्त्तिनः क्षणाः समर्था एवेति वक्तव्यम् । न चेदेकोऽपि न समर्थः स्यादालयविज्ञानसन्तानवर्त्तित्वाविशेषात् सर्वे समर्था इति पक्षे कार्य्याक्षेपानुपपत्तिः । ततश्च कादाचित्कत्वनिर्वाहाय शब्दस्पर्शरूपरसगन्धविषयाः सुखादिविषयाः षडपि प्रत्ययाश्चतुरः

प्रत्ययान् प्रतीत्योत्पद्यन्ते इति चतुरेणानिच्छताप्यच्छमतिना स्वानुभवमनाच्छाद्य परिच्छेत्तव्यम् । ते चत्वारः प्रत्ययाः प्रसिद्धाः, आलम्बनसमनन्तरसहकार्य्यधिपतिरूपाः । तत्र ज्ञानपदवेदनीयस्य नीलाद्यवभासस्य चित्तस्य नीलालम्बनप्रत्ययात् नीलाकारता भवति, समनन्तरप्रत्ययात् प्राचीनज्ञानाद् बोधरूपता, सहकारिप्रत्ययादालोकात् चक्षुषोऽधिपतिप्रत्ययाद्विषयग्रहणप्रतिनियमाः, विदितस्य ज्ञानस्य रसादिसाधारण्यप्राप्तेर्नियामकं चक्षुरधिपतिर्भवितुमर्हति लोके नियामकस्याधिपतित्वोपलम्भात् । एवं चित्तचैत्तात्मकानां सुखादीनां चत्वारि कारणानि द्रष्टव्यानि । एवं चित्तचैत्तात्मकस्कन्धः पञ्चविधः रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः तत्र रूप्यन्त एभिर्विषया इति व्युत्पत्त्या सविषयाणीन्द्रियाणि रूपस्कन्धः, आलयविज्ञानप्रवृत्तिविज्ञानप्रवाहो विज्ञानस्कन्धः, प्रागुक्तस्कन्धद्वयसम्बन्धजन्यः सुखदुःखादिप्रत्ययप्रवाहो वेदनास्कन्धः, गौरित्यादिशब्दोल्लेखिसंविज्ञानप्रवाहः संज्ञास्कन्धः, वेदनास्कन्धनिबन्धना रागद्वेषादयः क्लेशा उपक्लेशाश्च मदमानादयो धर्माधर्मौ च संस्कारस्कन्धः ॥ २९ ॥

पूर्व्वोक्त कारणोंसे बोध होताहै जो आलयविज्ञान समूहके विना जो कदाचित् प्रवृत्तिविज्ञानका कारणहै, वही बाह्यअर्थहै किन्तु वह ग्राह्य नही होता, परन्तु यह बाह्यार्थवासना परिपाकजन्यहै जिसकारण यह बाह्यार्थ कदाचित् उत्पन्न होताहै यही जानना चाहिये । विज्ञानवादीके मतमें एक सन्तानवर्त्ति वासनासमूहही आलयविज्ञानहै । उनसबकी बाह्यप्रवृत्ति जननशक्तिहै एवं उस शक्तिका जो स्वकार्य्य उत्पादन करनेमें अभिमुख्यहै, वही परिपाक, प्रत्ययही इस परिपाकका कारण है इसमें स्वीय प्रवाहवर्त्ती पूर्वक्षणकी रक्षा किसी जातीहै, जिस कारण अपने प्रवाहके पीछे निबन्धनत्वका स्वीकार नहीं । अत एव प्रवृत्तिज्ञानजननहेतु वह आलयविज्ञानवर्त्ती वासना परिपाकके प्रति सब आलयविज्ञानवर्त्ती क्षणही समर्थ है, यह कहना चाहिये । यदि कहो एकक्षणभी समर्थ नहीं, सो कहा नहीं जासकता, कारण यह है जो, आलयविज्ञान प्रवाहवर्त्तित्वमें कोई विशेष नहीं । सब ही क्षणसमर्थ इस पक्षमें भी कार्य्यजनकी अनुपपत्ति होतीहै

इस निमित्त ज्ञानका कदाचित्कत्व निर्वाहार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्धका विषय सब, सुखादिका विषय एवं छः प्रकारका प्रत्यक्ष यह समुदाय चारप्रकारके प्रत्ययके अन्तर्गत होकर उत्पन्न होता है । यह निर्मलबुद्धि पण्डित लोग कहते हैं । उक्त चार प्रकारके प्रत्यय ही प्रसिद्धहैं । ये अवलम्बन समनन्तर सहकारी और अधिपतिरूप, उक्त प्रत्यय चतुष्टयमें अवलम्बन प्रत्ययसे ज्ञानपद प्रतिपाद्य नीलादिका अवभास विशिष्ट चित्तका नीलावलम्बन प्रत्ययहेतु नीलाकारता होतीहै । समनन्तर प्रत्ययसे प्राचीनज्ञानहेतु बोधरूपता उत्पन्न होती है, सहकारी प्रत्ययसे आलोक हेतु चक्षुका कार्य्य होताहै एवं अधिपतिप्रत्ययसे विषय ग्रहणका नियम होता है । ज्ञानका रसादि साधारण्य प्राप्तिका नियामक चक्षुही अधिपति होसकता है, जिस कारण लोकमें नियामकहीका अधिपतित्व उपालम्भ है । इस प्रकार चित्तानुगत सुखादिका कारणचतुष्टय देखाजाताहै एवं चित्तसम्बन्धीय स्कन्ध पांच प्रकार के है । जैसे रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञान और संस्कार । जिनके द्वारा विषयग्रहण होताहै । यही व्युत्पत्ति करके सविषय इन्द्रिय सबको रूपस्कन्ध कहकर जानाजाताहै । और विज्ञान प्रवृत्ति प्रवाहही विज्ञानस्कन्ध उक्तदोनों स्कन्धोंके कारण सुखदुःख आदि प्रत्यय प्रवाहही वेदना स्कन्धहै और गो इत्यादि शब्दोल्लेखी सविज्ञान प्रवाहही संज्ञास्कन्ध एवं वेदनास्कन्ध निबन्धही रागद्वेषादिक्लेश उपक्लेश मदमानादि,एवं धर्म्माधर्म्मभी सब संस्कारस्कन्धहै॥२५॥

तदिदं सर्वं दुःखं दुःखायतनं दुःखसाधनञ्चेति भावयित्वा तन्निरोधोपायं तत्त्वज्ञानं सम्पादयेत् । अतएवोक्तं, दुःखसमुदायनिरोधमार्गाश्चत्वारः आर्य्यस्य बुद्धाभिमतानि तत्वानि । तत्र दुःखं प्रसिद्धं, समुदायो दुःखकारणं, तद् द्विविधं, प्रत्ययोपनिबन्धनो हेतूपनिबन्धनश्च । तत्र प्रत्ययोपानिबन्धनस्य संग्राहकं सूत्रम् "इदं कार्य्यं ये अन्ये हेतवः प्रत्ययन्ति" गच्छन्ति तेषामयमानानां हेतूनां भावः प्रत्ययत्वं कारणसमवायः तन्मात्रस्य फलं न चेतनस्य कस्यचिदिति सूत्रार्थः । यथा बीजहेतुरङ्कुरो धातूनां षण्णां समवायाज्जायते । तत्र पृथिवीधातुरङ्कुरस्य काठिन्यगन्धञ्च जनयति, अब्धातुः स्नेहं रसञ्च जनयति, तेजोधातू रूपमौष्ण्यञ्च, वायुधातुः स्पर्शनं चलनञ्च, आकाशधातुरवकाशं शब्दञ्च, ऋतुधातुर्यथायोगं पृथिव्यादिकम् । हेतूपनिबन्धनस्य च संग्राहकम् सूत्रम् उत्पादाद्वा तथागता-

नामनुत्पादाद्वा स्थितैवैषां धर्माणां धर्मता धर्मस्थितिता धर्मनियामकता च प्रतीत्य समुत्पादानुलोमतेति । तथागतानां बुद्धानां मते धर्माणां कार्य्यकारणरूपाणां या धर्मता कार्यकारणभावरूपा एषोत्पादादनुत्पादाद् वा स्थिता, यस्मिन् सति यदुत्पद्यते तत्तस्य कारणस्य कार्यमिति धर्मतेत्यस्य विवरणं, धर्मस्य कार्य्यस्य कारणानतिक्रमेण स्थितिः । स्वार्थिकस्तल्प्रत्ययः । धर्मस्य कारणं स्वकार्य्यं प्रति नियामकता ॥२६॥

यह संसारही दुःखमय, दुःखायतन एवं दुःखसाधन है, इस प्रकार चिन्ता करके संसारनिरोधका उपाय स्वरूप तत्त्वज्ञने सम्पादनमें यत्न करना चाहिये इस कारण दूसरे शास्त्रोंमें लिखाहै जो दुःखकी निवृत्तिके ४ मार्ग हैं। आर्य्यबुद्धके मतानुसार तत्त्व समुदायही दुःख निरोधका मार्ग है दुःख किसको कहतेहैं सो प्रसिद्ध है, परन्तु सम्पूर्ण संसारही दुःखका कारण है । जो उत्पन्न होता है, वही उसकारणका कार्य्य है । यही धर्म्मता यही शब्दका विवरणहै । कार्य्यरूपधर्म्मके कारणका अतिक्रम न करके जो स्थिति, वही कार्य्यके प्रति कारणकी नियामकता है ॥ २६ ॥

नन्वयं कार्य्यकारणभावश्चेतनमन्तरेण न सम्भवतीति अत उक्तं कारणे सति तत्प्रतीत्यप्राप्यसमुत्पादे अनुलोमता अनुसारिता या सैव धर्मता उत्पादादनुत्पादाद्वा धर्माणां स्थिता । न चात्र कश्चिच्चेतनोऽधिष्ठातोपलभ्यत इति सूत्रार्थः । यथा प्रतीत्यसमुत्पादस्य हेतूपनिबन्धः, बीजादङ्कुरोऽङ्कुरात् काण्डं काण्डान्नालो-नालाद्गर्भस्ततः शूकं ततः पुष्पं ततः फलम् । न चात्र बाह्ये समुदाये कारणं बीजादि कार्य्यमङ्कुरादि वा चेतीयते । अहमङ्कुरं निर्वर्त्तयामि अहं बीजेन निर्वर्त्तित इति । एवमाध्यात्मिकेष्वपि कारणद्वयमवगन्तव्यम् । पुरः स्थिते प्रमेयाब्धौ ग्रन्थविस्तरभीरुभिरुपरम्यते ॥ २७ ॥

इसपर कोई संदेह करते हैं कि, यह कार्य कारणभाव चेतनके विषयमें ही संभवता है अन्यथा नहीं इससे कहाहै कि, कारणके होनेपर उसके प्रतीतिके प्राप्त न होने योग्यकी उत्पत्तिमें जो अनुलोम अनुसरणहै वही धर्मता धर्मोंकी उत्पत्ति या अनुत्पत्तिमें रहती है ।

यह तो कोईभी चेतन अधिष्ठाता नहीं मिलता ऐसा सूत्रार्थ कहाहै । जैसे विना प्रतीतिसे उत्पन्न हुवाहै उसको हेतु संबंध सदैव रहताहै जैसे बीजसे अंकुर अंकुरसे कांड कांडसे नाल नालसे गर्भ उससे शूक शूकसे पुष्प और पुष्पसे फल उत्पन्न होताहै यहा बाह्य समुदायमे बीज कारण और अंकुरादिकार्यमें चैतन्य नहि है- मैं अंकुरको परास्त करूंगा या मुझको बीजने निवृत्त किया यहां ऐसा संभव कभी नहीं होता इसके समान अध्यात्ममें भी कार्यकारण भाव जानना चाहिये आगे प्रमेय समुद्रका कहांतक विचारकरै ग्रंथका विस्तार बहोत होगा इससे इतनाही कहा पूराहै ॥ २७ ॥

तदुभयनिरोधस्तदनन्तरं विमलज्ञानोदयो वा मुक्तिः, तन्निरोधोपायो मार्गः स च तत्त्वज्ञानं, तच्च प्राचीनभावनाबलाद्भवतीति परमं रहस्यम्। सूत्रस्यान्तं पृच्छतां कथितं भवन्तश्च सूत्रस्यान्तं पृष्टवन्तः सौत्रान्तिका भवन्त्विति भगवताभिहिततया सौत्रान्तिकसंज्ञा सञ्जातेति ॥ २८ ॥

उक्त उभय कारणके निरोध होनेपरही तदनन्तर विमल ज्ञानोदय या मोक्षलाभ होताहै । जो लोग उक्त दोनों कारणोंका निरोध करसकते वे ही लोग तत्त्वज्ञान लाभकर सकते हैं प्राचीनभावना बलहीसे उक्ततत्त्वज्ञान उत्पन्न होताहै यही परमरहस्यहै । जो सूत्रके अन्तको जिज्ञासा करतेहैं उनको कहाजाताहै तुम जो सन्धानजिज्ञासा करतेहो किम्वा सौत्रिक होताहै । इसी निमित्त भगवान्ने कहाहै एव सौत्रान्तिक संज्ञा उत्पन्न हुईहै ॥ २८ ॥

केचन बौद्धा बाह्येषु गन्धादिषु आन्तरेषु रूपादिस्कन्धेषु सत्स्वपि तत्रानास्थामुत्पादयितुं सर्वं शून्यमिति,प्राथमिकान् विनेयानचीकथत् भगवान्, द्वितीयांस्तु विज्ञानमात्रग्रहाविष्टान् विज्ञानमेवैकं सदिति,तृतीयानुभयं सत्यमित्यास्थितान् विज्ञेयमनुमेयमिति, सेयं विरुद्धा भाषेति वर्णयन्तो वैभाषिकाख्यया ख्याताः एषा हि तेषां परिभाषा समुन्मिषति । विज्ञेयानुमेयत्ववादे प्रात्यक्षिकस्य कस्यचिदप्यर्थस्याभावेन व्याप्तिसंवेदनस्थानाभावेनानुमानप्रवृत्त्यनुपपत्तेः सकललोकानुभवविरोधश्च । ततश्चार्थो द्विविधः, ग्राह्योऽध्यवसेयश्च । तत्र ग्रहणं निर्विकल्पकरूपं

प्रमाणं कल्पनापोढत्वात् । अध्यवसायः सविकल्पकरूपो ऽप्रमाणं कल्पनाज्ञानत्वात् । तदुक्तम्-

"कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम् ।
विकल्पो वस्तुनिर्भासादसंवादादुपप्लव" इति ॥
"ग्राह्यं वस्तुप्रमाणं हि ग्रहणं यदितोऽन्यथा ।
न तद्वस्तु न तन्मानं शब्दलिङ्गेन्द्रियादिजमिति च" ॥२९॥

कोई कोई बौद्धमतावलम्बी लोग वायुगन्धादिमें एवं आन्तरिक रूपादिस्कन्ध विद्यमानही उसमें अनास्थाउत्पादनार्थ सब शून्य कहते हैं । भगवान् बुद्धने माथामिक कल्पमेंही कहाहै एवं द्वितीयकल्पमें उभयसत्य यह आश्रयकरके विज्ञेयमात्र अनुमेय यह ही स्वीकारकरते हैं । वह मत अतिविरुद्ध है । यह कारण दो मकारके हैं—जैसेः—मत्ययोपनिबन्धन एवं हेतूपनिबन्धन इसमें मत्ययोपनिबन्धनकारणका संग्राहक सूत्र यह है, कार्यके मति जो सब अन्य हेतु गमन करता है, उन्हीं सब हेतुका भावही कारण समवायहै, यही तन्मात्रका फलहै, यह किसी चैतन्यपदार्थका सम्भव नही । जिस मकार बीजके हेतुभूत अंकुर मकार धातुके समवायमें उत्पन्न होते हैं । पृथिवी धातु अंकुरके काठिन्य और गन्ध जन्माता है, जलधातु स्नेह और रस उत्पादन करता है, तेजोधातु रूप और उष्णता, वायुधातु स्पर्श और चाञ्चल्य आकाशधातु अवकाश और शब्द उत्पादन करता है, एव ऋतुधातु पृथिवी आदिका यथा- [illegible]य साधन करजाता है और हेतूपनिबन्धन कारणका सूत्र यह बुद्ध आदिकमतमें कार्य्य- [illegible] धर्म्म सबका जो कार्य्य कारण भावरूप धर्म्मता है यह धर्म्मता उत्पादन व [illegible] स्थित है । जिसकी सत्तामें जो पदार्थ इसीके वर्णन करनेसे उन लोगोंका वैभाषिक मसिद्ध हुआ है वस्तुतः उनलोगोंकी यह भाषाही मकाशित होती है, विज्ञेयके अनुमेयत्व कथनमें मत्यक्ष सिद्धकीसी अर्थके अभाव हेतु व्याप्तिज्ञानका स्थानाभाव प्रयुक्त अनुमान मवृत्तिकी अनुपपत्ति होती है एवं सबलोगोंका अनुभवका विरोध होजाता है । अतएव जानाजाता है जो अर्थ दो मकारका है, जैसे—ग्राह्य और अध्यवसेय इसमें निर्विकल्पकरूप प्रमाणही कारण और सविकल्पकरूप प्रमाणही अध्यवसाय है दूसरे शास्त्रमें लिखाहै जो कल्पना कल्पित अभ्रान्त मत्यक्षही निर्विकल्पक एव वस्तु निर्भास हेतु असंवादयुक्त जो उत्पात है, वही विकल्प होता है । और वस्तुप्रमाण ही ग्राह्य एव जो उससे भिन्न है, वही ग्रहण है । केवल वही वस्तु और वही मान ग्राह्य नहीं वस्तुतः वह शब्द लिङ्ग और इन्द्रियजन्य हैं ॥ २९ ॥

ननु सविकल्पकस्याप्रामाण्ये कथं ततः प्रवृत्तस्यार्थप्राप्तिः संवादश्चोपपद्येयातामिति चेन्न तद्भद्रं मणिप्रभाविषयमणिविकल्प-

न्यायेन पारम्पर्य्येणार्थप्रतिलम्भसम्भवेन तदुपपत्तेः । अवशिष्टं सौत्रान्तिकप्रस्तावे प्रपञ्चितमिति नेह प्रतन्यते । न च विनेयाशयानुरोधेनोपदेशभेदः साम्प्रदायिको न भवतीति भणितव्यम् । यतो भणितं बोधचित्तविवरणे ॥ ३० ॥

इस समय यदि सविकल्पका अप्रामाण्य हुआ तो किसप्रकार उसमें प्रवृत्तिकी अर्थप्राप्ति होसकती ? यह आशङ्का नहीं होसकती, जिसकारण मणिमें प्रभाविषय विकल्पन्यायद्वारा परम्परासे अर्थलाभ सम्भव हेतु अर्थकी उपपत्ति है सौत्रान्तिक प्रस्ताव प्रपञ्चित है, इसलिये इस स्थानमें उसका विस्तार नहीं हुआ और विनेय और आशयानुरोधसे उपदेशभेद नहीं एवं यह मत सम्प्रदायिक नहीं, यहभी कहाजावेगा, जिसकारण बोधचित्त विवरणमेंही कहाहै ॥ ३० ॥

देशनालोकनाथानां सत्वाशयवशानुगाः ।
विद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल ॥ ३१ ॥

जो लोग लौकिक व्यवहारके प्रति तरहैं वे लोग अनेक प्रकारके मतोंके वशवर्ती होकर नानाप्रकारके सम्प्रदायमें बटे है यह लोकके व्यवहार में भी देखाजाता है जो सबही बहुत उपायोंसे अनेक मार्ग अवलम्बनकर विविधमतका आश्रय करते हैं । इसी प्रकार लोकमें बहुत २ मतोको स्वीकार कर २ नानासम्प्रदायमें विभक्त हुए हैं ॥ ३१ ॥

गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणाः ।
भिन्ना हि देशना भिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणेति ॥ ३२ ॥

गम्भीर और उत्तानभेदसे किसी २ स्थानमें दोनों लक्षणही स्वीकृत हैं. सम्प्रदायभेदसे सर्वही जगह मतभेद देखाजाता है, जो लोग अद्वयवादी और जो लोग शून्यवादी हैं उन लोगोंकी अनेक प्रकारकी लक्षणा पारिभाषित है ॥ ३२ ॥

द्वादशायतनपूजा श्रेयस्करीति बौद्धनये प्रसिद्धम्–
अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै ।
परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितैः ॥ ३३ ॥

बौद्ध सम्प्रदायमें १२ आयतन पूजाही परम कल्याणकारक है, यह प्रसिद्ध है । वे लोग कहते हैं कि, धन उपार्जन कर अनेक प्रकारसे द्वादश आयतनकी पूजा करनी चाहिये इन १२ आयतनोंकी पूजाही छोडकर अन्यान्य देवदेवीकी पूजामें कोई फल नहीं ॥ ३३ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैरिति ॥ ३४ ॥

चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, और त्वक् ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं, वाक्, पाणि, पाद, पायु, और उपस्थ ये ही पांच कर्म्मेन्द्रिय हैं एवं मन और बुद्धि, इन्ही १२ को द्वादश आयतन कहते हैं । उक्त इन्द्रियादिको साधनही मनुष्यका कर्त्तव्य कहकर पण्डितोंने स्थिर सिद्धान्त किया है ; अतएव द्वादश आयतन, अर्थात् इन्द्रियसेवा ही करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

विवेकविलासे बौद्धमतमित्थमभ्यधायि–
बौद्धानां सुगतो देवो विश्वञ्च क्षणभङ्गुरम् ।
आर्य्यसत्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥ ३५ ॥
दुःखमायतनञ्चैव ततः समुदयो मतः ।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥ ३६ ॥

विवेकविलासमें इसप्रकार बौद्धमत अवधारित हुआ है जो सुगतही बौद्धोंकी परम देवता है । और यह संसार क्षणभंगुर अर्थात् अनित्य है । और आर्य्यलोगोंने वक्ष्यमाण तत्त्व चतुष्टयकी सत्ता कियी है । इस समय क्रमशः इन चार तत्त्वोंका निरूपण करते हैं । दुःख, आयतन, समुदय, और मार्ग इन्हीको तत्त्वचतुष्टय कहते हैं। इसके अनन्तर क्रमतः उक्त [illegible] व्याख्या श्रवण करो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः ।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥ ३७ ॥

संसारी लोगोंका दुःखही स्कंध, यह स्कन्ध ५ प्रकारका कहा जाता है । जैसे–विज्ञान-स्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, संस्कारस्कन्ध और रूपस्कन्ध हैं । ये ही पांचस्कन्ध पहिलेभी कहे गये हैं, इसके पीछेभी उक्त पांचस्कन्धोंका विशेष विवरण कहा जावेगा ॥ ३७ ॥

पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम् ।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥ ३८ ॥

पञ्चज्ञानेन्द्रिय, शब्दादि पांच विषय, मन और धर्म्मायतन, येभी द्वादश आयतन कहकर प्रसिद्ध हैं । ये ही पूर्वोक्त आयतन शब्दके प्रतिपाद्य हैं । इसी प्रकार द्वादश आयतन मतान्तर प्रसिद्ध कहकर प्रसिद्ध कहा जाता है परन्तु यह सर्ववादि सिद्ध नहीं ॥ ३८ ॥

रागादीनां गणोऽयं स्यात् समुदेति नृणां हृदि ।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात् समुदयः पुनः ॥ ३९ ॥

मनुष्योंके हृदयमें रागादि उदय होतेहैं, परन्तु केवल आत्माही आत्मीय स्वभावस्थ, इसप्रकार ज्ञानको समुदयतत्त्व कहकर जाना जाता है। यह तत्त्व पर्यालोचना करना परमावश्यक है स्थानान्तरमें इसका विशेष विवरण होगा ॥ ३९ ॥

क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा ।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥ ४० ॥

सब प्रकारका संस्कारभी क्षणिक, इसीप्रकार जो स्थिर वासना है, उसीको मार्ग कहकर जाना जाता है, और यह मार्ग मोक्षनामसे कहा जाता है, अर्थात् जो लोग उक्तप्रकार ज्ञान को दृढीभूत करसकते हैं, वेही लोग मोक्ष प्राप्त करसकते है ॥ ४० ॥

प्रत्यक्षमनुमानञ्च प्रमाणद्वितयं तथा ।
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ ४१ ॥

प्रत्यक्ष और अनुमान, इन्ही दोको प्रमाण कह सकते हैं । और बौद्धलोग चतुःप्रस्थानिक, अर्थात् चार प्रकारके प्रमाणको स्वीकार करते है, येही वैभाषिक नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ४१ ॥

अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते ।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥ ४२ ॥

वैभाषिक लोग ज्ञानान्वित अर्थको बहुज्ञान कहते है, नास्तिक लोग केवल प्रत्यक्ष वस्तु हीको ग्रहण करते है, वे लोग जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता ऐसे किसी पदार्थको नही मानते । इन लोगोंके मतमे अनुमानादिप्रमाण नही मानाजाता ॥ ४२ ॥

आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य सम्मता ।
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥ ४३ ॥

जो लोग योगाचारमें रतहैं, वे लोग आकारसहित बुद्धि स्वीकार करते हैं, और जो लोग मध्यम वे केवल संवेदन सूक्ष्म पदार्थमात्र स्वीकार करते हैं ॥ ४३ ॥

रागादिज्ञानसन्तानवासनाच्छेदसम्भवा ।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्त्तिता ॥ ४४ ॥

रागादि ज्ञानप्रवाहरूप वासनाके उच्छेद होनेपर मुक्ति होती है, यह चार प्रकारके बौद्धोंका मत है, किन्तु चार प्रकारके बौद्धही लोग उक्त प्रकार वासनाके उच्छेदको मुक्ति कहते हैं एवं वासनाके उच्छेद होनेही पर मुक्ति होसकती है ॥ ४४ ॥

कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम् ।
सङ्घो रक्ताम्बरत्वञ्च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिरिति ॥ ४५ ॥

बौद्ध भिक्षुकलोग चर्म्म और कमण्डलु धारण करते हैं, वे लोग मस्तक मुण्डन करते हैं चीर, अर्थात् जीर्णवस्त्र खण्ड परिधानपूर्वक पूर्वाह्णमें भोजन करते हैं, और वे लोग अनेक लोग मिलकर रहते हैं, यही बौद्ध भिक्षुकोंका मत कहकर प्रसिद्ध है ॥ ४५ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे बौद्धदर्शनं समाप्तम् ॥

अथ आर्हतदर्शनम् ।

तदित्थं मुक्तकच्छानां मतमसहमाना विवसनाः कथञ्चित् स्थायित्वमास्थाय क्षणिकत्वपक्षं प्रतिक्षिपन्ति । यद्यात्मा कश्चिन्नास्थीयेत स्थायी तथापीह लौकिकफलसाधनसम्पादनं विफलं भवेत् । न ह्येतत् सम्भविष्यति, अन्यः करोत्यन्यो भुङ्क्ते इति । तस्माद्योऽहं प्राक् कर्माकरवं सोऽहं सम्प्रति तत्फलं भुञ्जे इति पूर्वापर कालानुयायिनः स्थायिनस्तस्य स्पष्टप्रमाणावसिततया पूर्वापर भागविकलकालकलावस्थितिलक्षणक्षणिकता परीक्षकैरर्हद्भिर्न परिग्रहार्हा । अथ मन्येथाः "प्रमाणवत्त्वादायातः प्रवाहः केन वार्य्येत" इति न्यायेन यत् सत् तत् क्षणिकमित्यादिना प्रमाणेन क्षणिकतायाः प्रमिततया तदनुसारेण समानवर्तिनामेव प्राचीनः प्रत्ययः कर्मकर्त्ता उत्तरः प्रत्ययः फलभोक्ता ॥ १ ॥

मुक्तकच्छ बौद्धोंके मतको नही सहकर और विवसही जैन शिष्यगण आत्माके स्थापनार्थ क्षणिक मतका खण्डन करते हैं । यदि आत्मा स्थायी न होगा, तो लौकिक फलसाधन विफल हो जावेगा । लोकव्यवहारमें भी ऐसी प्रतीति सदा होती है जो अन्य व्यक्ति कार्य्य करता है एवं उसका भोग अपर व्यक्ति करता है । और मैने तो पूर्व

कर्म्म किया था इससमय उसका फल भोग करता हूं । यदि आत्माका स्थायित्व स्वीकार नहीं करते हो तो उक्तप्रकार पूर्वापर काल व्यवहार नहीं होसकता । जब आत्माका पूर्व्वापरकालवर्त्तित्व देखाजाताहै, तब उसका स्थायित्व स्पष्ट प्रमाण ही देखा जाता है। सुतरां जैनशिष्यगण क्षणिकत्वमत ग्रहण नहीं करसकते, ये उन्होंने सविशेष परीक्षा कर क्षणिकत्वका खण्डन किया है । और यहभी अनायासही समझा जासकता है जो प्रमाण परिप्राप्त, उसको कौन वारण करसकता ? न्यायद्वारा जो सत्य प्रतीत होता है, उसको क्षणिक सिद्ध करना सम्भव नहीं, समानसन्तानवर्त्ति लोगोंके मतमें प्राचीन प्रत्यय कर्म्म करता एवं उत्तर काल प्रत्यय फलभोक्ता होता है ॥ १ ॥

न चातिप्रसङ्गः कार्य्यकारणभावस्य नियामकत्वात् । यथा मधुररसभावितानामाम्रबीजानां परिकर्षितायां भूमावुप्तानामङ्कुरकाण्डस्कन्धशाखापल्लवादिषु तद्द्वारा परम्परया फले माधुर्य्यनियमः, यथा वा लाक्षारसावसिक्तानां कार्पासबीजादीनामङ्कुरादिपारम्पर्य्येण कार्पासादौ रक्तिमनियमः । यथोक्तम्—

यस्मिन्नेव हि सन्ताने आहिता कर्मवासना ।
फलं तत्रैव बध्नाति कार्पासे रक्तता यथा ॥
कुसुमे बीजपूरादेर्यल्लाक्षाद्युपसिच्यते ।
शक्तिराधीयते तत्र काचित्तां किं न पश्यसीति ॥

तदपि काशकुशावलम्बनकल्पं विकल्पासहत्वात् ॥ २ ॥

और कार्य्य कारणभावकी सत्ता हेतु अति प्रसङ्ग निवारित होता है जिस प्रकार आम्रबीज सब मीठे रसमें वासकर उसको मिट्टीमें गाड रखनेसे उसमेंसे प्रथम अङ्कुर उसके अनन्तर काण्ड स्कन्ध शाखा पल्लवादि जन्मनेपर उसके द्वारा परम्परासे फलमें माधुर्य्य नियम होता है एवं जिस प्रकार कपास बीज लाक्षारसद्वारा अभिषिक्तकर उसको जोती हुई भूमिमें रोपनेसे उस बीजसे अंकुरादि जन्मकर परम्परासे कार्पासादिमें लालिमा नियम होता है. शास्त्रान्तरमें कहाहै जो जिससन्तानमें कर्म्मवासना स्थापित कियी जा सके, कार्पासकी रक्तताकी नाईं उसीहीमें फलबन्धन करते हैं। और बीजपूरादिके फूलमें लाक्षारसादि सिञ्चन करनेपर उसमें जो शक्तिका आधार होताहै, उसको क्या देखते नहीं ? जिसकारण इसमें भी काशकुशावलम्बनकी नाईं इसका विचार है ॥ २ ॥

जलधरादौ दृष्टान्ते क्षणिकत्वमनेन प्रमाणेन प्रमितं प्रमाणान्तरेण वा । नाद्यः भवदभिमतस्य क्षणिकत्वस्य क्वचिदप्यदृष्टचर-

त्वेन दृष्टान्तासिद्धावस्यानुमानस्यानुत्थानात् । न द्वितीयः तेनैव न्यायेन सर्वत्र क्षणिकत्वसिद्धौ सत्त्वानुमानवैफल्यापत्तेः अर्थक्रियाकारित्वं सत्त्वमित्यङ्गीकारे मिथ्यासर्पदंशादेरपि अर्थक्रियाकारित्वेन सत्त्वापाताच्च । अतएवोक्तम्—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति ॥ ३ ॥

पूर्व्वमें मेघादि दृष्टान्त प्रदर्शनकर जो क्षणिकत्व साधित हुआ है, वह क्या उक्तप्रकार प्रमाणद्वारा प्रतिपन्न है ? अथवा प्रमाणान्तरसाध्य है ? उक्त प्रमाणद्वारा प्रतिपन्न यह कहा नहीं जासकता, कारण यह है जो तुम लोगोंके अभिमत क्षणिकत्व कभी देखा नही जाता; सुतरां दृष्टान्तासिद्धिसे उक्तप्रकार अनुमान् नहीं होसकता, और प्रमाणान्तरसाध्यहै यह भी नहीं कहाजासकता, कारण यह है जो वैसा होनेपर उसीकी नाई सर्वत्र क्षणिकत्वके सिद्धिसत्त्वमें सत्वानुमानकी वैफल्यापत्ति होती है । अर्थक्रियाकारित्व सत्व, उसीप्रकार स्वीकार करनेपर मिथ्यासर्पदंशनादिका अर्थक्रियाकारित्वप्रयुक्तसत्वापात होसकताहै । अतएव कहा गया है, जो जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिरतायुक्त है, वह वह सत् है ॥ ३ ॥

अथोच्येत सामर्थ्यासामर्थ्यलक्षणविरुद्धधर्माध्यासात् तत्सिद्धिरिति तदसाधु, स्याद्वादिनामनैकान्ततावादस्येष्टतया विरोधासिद्धेः यदुक्तं कार्पासादिदृष्टान्त इति तदुक्तिमात्रं युक्तेरनुक्तेः तत्रापि निरन्वयनाशस्यानङ्गीकाराच्च । न च सन्तानिव्यतिरेकेण सन्तानः प्रमाणपदवीमुपारोढुमर्हति । तदुक्तम्—

सजातीयाः क्रमोत्पन्नाः प्रत्यासन्नाः परस्परम् ।
व्यक्तयस्तासु सन्तानः स चैक इति गीयत इति ॥ ४ ॥

अनन्तर कहते हैं जो सामर्थ्य और असामर्थ्यरूप विरुद्ध धर्म्माध्यासही उसकी सिद्धि है इसप्रकार जो कहा है, यह असाधुमत प्रतीत होता है, जिसकारण वादियोंके अनेकान्तवादकी इष्टता प्रयुक्त विरोधकी असिद्धि होती है । और जो कार्पासका दृष्टान्त कहागया है उसको भी कथनमात्र जानना । जिसकारण उसमें युक्तिका उल्लेख नहीं करते । विशेषतः उसमें निरन्वयनाशका अनङ्गीकार है । और सन्तानिके विना कभी सन्तानप्रमाण पदवीपर आरोहण नहीं करसकता यही युक्त है. शास्त्रान्तरमें कहाहै जो लोग समानजातीय हैं, वे लोग क्रमोत्क्रम एवं परस्पर प्रत्यासन्न हैं, उन सबके जो व्यक्ति सकल वेही उनका सन्तान है, किन्तु सन्तान एक कहकर गिनाजाता है ॥ ४ ॥

न च कार्य्यकारणभावानियमोऽतिप्रसङ्गं भङ्क्तुमर्हति । तथाहि उपाध्यायबुद्ध्यनुभूतस्य शिष्यबुद्धिः स्मरेत तदुपचितकर्मफलमनुभवेद्वा तथा च कृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गः । तदुक्तं सिद्धसेनवाक्यकारेण--

"कृतप्रणाशाकृतकर्मभाग-
भवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छ--
न्नहो महासाहसिकः परोऽसाविति"

किञ्च क्षणिकत्वपक्षे ज्ञानकाले ज्ञेयस्यासत्त्वेन ज्ञेयकाले ज्ञानस्यासत्त्वेन च ग्राह्यग्राहकभावानुपपत्तौ सकललोकयात्रास्तमियात् । न च समसमयवर्त्तिता शङ्कनीया सव्येतरविषाणवत् । कार्य्यकारणभावासम्भवेनाग्राह्यस्यालम्बनप्रत्ययानुपपत्तेः।अथ भिन्नकालस्यापि तस्याकारार्पकत्वेन ग्राह्यत्वं, तदप्यपेशलं क्षणिकस्य ज्ञानस्याकारार्पकताश्रयताया दुर्वचत्वेन साकारज्ञानवादे प्रत्यादेशेन निराकारज्ञानवादेऽपि योग्यतावशेन प्रतिकर्मव्यवस्थायाः स्थितत्वात् ॥ ९ ॥

पूर्व्वमें कार्य्य कारण भावनियम दिखलाकर अति प्रसङ्ग दोषका निवारण किया है, वह सुसङ्गत नहीं, कारण यह है, जो कार्य्य कारण भाव नियम कभी अतिप्रसङ्ग दोषको रोक नहीं सकता । इस समय देखा जाता है जो जो उपाध्यायके बुद्धि अनुभूत उसीको शिष्य बुद्धि स्मरण करती है अथवा उपाध्याय बुद्धि उपस्थित कर्म्मफल अनुभव करती है, सुतरां जो किया गया है, उसको विनाशकर अकृत पदार्थकी आशाकी नाई होता है । सिद्धसेन वाक्यकारने कहा है जो जो लोग कृतपदार्थका नाश कर अकृत कर्म्मके फलभोगकी आशा करते हैं एवं साक्षात् वर्त्तमान पदार्थको क्षणभङ्गुर जानते हैं, वे महासाहसिक हैं । और देखो क्षणिकत्व वादीके मतमें ज्ञानकालमें ज्ञेयपदार्थके असत्ता हेतु एवं ज्ञेय समयमें ज्ञानकी अवर्त्तमानता प्रयुक्त ग्राह्य ग्राहक भावकी अनुपपत्ति होती है, और ऐसा होनेसे सम्पूर्ण लोकयात्राकी असिद्धि हुई जाती है और उस ज्ञानका समान समय वर्त्तिता शङ्काभी नहीं हो सकती है। कारण यह है जो, कार्य्यकारण भावकी असत्ता हेतु अग्राह्य पदार्थका ग्रहण आलम्बनकी अनुपपत्ति

है यदि भिन्नकालके आकार आर्थकत्व हेतु उसका ग्राह्यत्व मानो वहभी युक्तियुक्त उसका नहीं होता जिस कारण क्षणिक ज्ञानकी आकारार्पकता कहीनहीं जाती सुतरां साकार ज्ञान वादका प्रत्यघ्यादेशवशतः निराकार वादमें भी योग्यता प्रयुक्त प्रतिकर्म्मव्यवस्थ ही स्थित होती है ॥ ५ ॥

तथाहि प्रत्यक्षेण विषयाकाररहितमेव ज्ञानं प्रतिपुरुषमहमिकया घटादिज्ञानमनुभूयते न तु दर्पणादिवत् प्रतिबिम्बाक्रान्तम् । विषयाकारधारितत्वे न च ज्ञानस्यार्थे दूरनिकटादिव्यवहाराय जलाञ्जलिर्वितीर्य्येत । न चेदमिष्टापादनमेष्टव्यं दवीयान् महीधरो नेदीयान् दीर्घो बहुरिति व्यवहारस्य निराबाधं जागरूकत्वात् । न चाकाराधायकस्य तस्य दवीयस्त्वादिशालितया तथा व्यवहार इति कथनीयं दर्पणादौ तथानुपलम्भात् । किञ्चार्थादुपजायमानं ज्ञानं यथा तस्य नीलाकारतामनुकरोति तथा यदि जडतामपि तर्ह्यर्थवत् तदपि जडं स्यात् । तथा च वृद्धिमिष्टवतो मूलमपि तवेष्टं स्यादिति महत्कष्टमापन्नम् ॥ ६ ॥

इस समय यही जाना जाता है जो प्रत्यक्षप्रमाणानुसार विषयाकार रहित ज्ञान होता है एवं प्रति पुरुषमें अहङ्कारद्वारा ही घनादि अनुभूत होते है । दर्पणादि गत प्रतिबिम्बकी नाई नहीं होता वस्तुतः उक्त ज्ञान विषयाकार धारण करता है उस ज्ञानके निमित्तभी दूर निकटादि व्यवहार नहीं होसकता । दूरत्ववर्त्ती पर्व्वत निकटस्थ इस प्रकार व्यवहार सर्व्वथा असिद्ध और यह भी नहीं कहा जाता जो आकारधारी पर्व्वतकी दूरवर्त्तिता प्रयुक्त उक्त व्यवहार होसके जिसकारण दर्पणादिमें उक्तरूप उपलब्धि नहीं होती । पक्षान्तरमें कहते है अर्थोपपत्तिहीमे ज्ञान उत्पन्न होता है । जिसप्रकार वही ज्ञान नीलाकारताका अनुकरण करता है उसी प्रकार यदि जड़ताका भी अनुकरण करसकते हैं ऐसा होनेपर अर्थवान् मात्रही जड़मे करसकते सुतरां महादोष उपस्थित हुआ ॥ ६ ॥

अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया ज्ञानं जडतां नानुकरोतीति ब्रूषे हन्त तर्हि तस्याग्रहणं न स्यादित्येकमनुसन्धित्सतोऽपरं प्रच्यवत इति न्यायापातः । ननु माभूत् जडताया ग्रहणं किं न च्छिन्नं तदग्रहणेऽपि नीलाकारग्रहणे तयोर्भेदो नैकान्तो वा भवेत् । नीलाकारग्रहणे चागृहीता जडता कथं तस्यानुरूपं स्यात्

अपरथा गृहीतस्य स्तम्भस्यागृहीतं त्रैलोक्यमपि रूपं भवेत् । तदेतत् प्रमेयजातं प्रतापचन्द्रप्रभृतिभिरर्हन्मतानुसारिभिः प्रमेयकमलमार्त्तण्डादौ प्रबन्धे प्रपञ्चितमिति ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नोपन्यस्तम्—तस्मात् पुरुषार्थाभिलाषुकैः पुरुषैः सौगती गतिर्नानुगन्तव्या अपित्वार्हत्येवार्हणीया । अर्हत्स्वरूपञ्च चन्द्रसूरिभिराप्तनिश्चयालङ्कारे निरटङ्कि—

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हत् परमेश्वर इति ॥ ७ ॥

यदि उक्तदोषके परिहार वासनामें ज्ञान जड़ नही, यह कहो तो उसका ग्रहण नही होसकता, सुतरां एकके अनुसन्धान करने गया अन्य उसीमे हुआ । तथापि यदि कहो जडताका ग्रहण नही हो तो तुम्हारा क्या छिन्न नहीं हुआ ? नीलाकारके ग्रहण होनेसे उनसबका भेद नही होता परन्तु नीलाकारके ग्रहण और अगृहीत जड़ता किस मकार उसका अनुरूप हो सकती है, अन्यथा त्रैलोक्यमेंही गृहीतस्तम्भका अगृहीतरूप होता है । अतएव आर्हत मतानुसारी मतापचन्द्र मभृति लोगोंने ममेय कमल मार्तण्डादि मबन्धमें उक्त मकार विस्तार किया है । इस स्थानमें ग्रन्थ बाहुल्य भयसे वह उपन्यस्त नही हुआ अत एव जो लोग धर्म्मार्थ काम मोक्ष इन्ही पुरुषार्थ चतुष्टयका अभिलाष करते है, वे लोग बुद्धमत स्वीकार नही करते, उन लोगोंका आर्हत मतका अनुसरण करना कर्त्तव्य है । चन्द्रसूरि मभृति आप्तव्यक्ति लोगोने निश्चयालङ्कारमें यह आर्हत मत निःशंक कहकर स्वीकारकर उन लोगोंने कहाहै । आर्हत देव सर्वज्ञएवं वे रागादि दोषसमूहको जीता है, त्रिभुवनमें उसकी अर्चना करता है वे यथार्थ स्थितार्थ वादी एव मोक्ष साक्षात् परमेश्वर ॥ ७ ॥

ननु न कश्चित् पुरुषविशेषः सर्वज्ञपदवेदनीयः प्रमाणपद्धतिमध्यास्ते सद्भावग्राहकस्य प्रमाणपञ्चकस्य तत्रानुपलम्भात । तथा चोक्तं तौतातितैः ।

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत् ॥ ८ ॥

इससमय कहते हैं जो कौन एक पुरुष जो सर्वज्ञपद प्रतिपाद्य ऐसा कोई प्रमाण नहीं
इसकारण जो प्रमाण पञ्चकका सद्भावमें ज्ञान होता है, उन्हीं पांच प्रमाणोंमेंभी किसी
पुरुष विशेषका सर्व्वज्ञपद प्रतिपाद्यत्व उपलाभ नहीं होता। इस विषयमें शास्त्रान्तरमें कहा
है जो हम लोग इससमय किसीको सर्व्वज्ञ नहीं देखते एवं कभी एक देशमात्र नहीं दीख-
पड़ता, परन्तु ऐसा कोई कारणभी नहीं है जो, उसकेद्वारा अनुमान किया जासके ॥ ८ ॥

न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः ।
न च तत्रार्थवादानां तात्पर्य्यमपि कल्पते ॥ ९ ॥

और सर्व्वज्ञ बोधक कोई आगमविधि भी नहीं है, अर्थात् कोई आगमद्वारा भी प्रमा-
णीकृत नहीं होता, किस पुरुष विशेषको सर्व्वज्ञ कहा जासके, परन्तु उसमें अर्थवादका भी
तात्पर्य्य परिकल्पना नहीं होसकता ॥ ९ ॥

न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते ।
न चानुवदितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥ १० ॥

जो लोग अन्वर्थ स्वीकार करते हैं, वे लोग भी सर्व्वज्ञका अस्तित्व विधान नहीं
करते एवं पहिले किसी व्यक्तिने प्रतिपादन नहीं किया है, ऐसी बात भी कोई नहीं
कहसकता ॥ १० ॥

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् ।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ११ ॥

अनादि आगमहीका अर्थ होजाता है एवं सर्व्वज्ञ आदिमान नहीं है, सुतरां किसीप्रकार
। कृत्रिम सत्यपारिमाणसे वह सर्व्वज्ञ प्रतिपादित नहीं होसकता ॥ ११ ॥

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ।
प्रकल्प्येत कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ॥ १२ ॥

यदि उसवाक्यमात्रहीसे अन्यान्य व्यक्तिगण सर्व्वज्ञ जानसकें, तो किसप्रकार वह पर-
स्पर दोनों आश्रयोंकी सिद्धिकल्पना कियीजासके ॥ १२ ॥

सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।
कथं तदुभयं सिध्येत्सिद्धमूलान्तराद्दते ॥ १३ ॥

सर्व्वज्ञका उक्तवाक्य ही सत्य इसीप्रमाणसे सर्व्वज्ञकी अस्तिता जानीजाती है, परन्तु
सिद्धमूलान्तर व्यतिरेक किसप्रकार दोनोंकी सिद्धि होजाती है ॥ १३ ॥

असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलतार्जितात् ।
सर्वज्ञमवगच्छन्तस्तद्वाक्योक्तं न जानते ॥ १४ ॥

और जो लोग सर्व्वज्ञ प्रणीतमूल वर्जितवचनमें सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं, वे भी उस वाक्यके कहनेका अभिप्राय नही जानते अर्थात् जिसवाक्यका कोई मूल नही, उसवाक्यमें सर्व्वज्ञ स्वीकृत नही होसक्ता ॥ १४ ॥

सर्वज्ञसदृशं किञ्चिद् यदि पश्येम सम्प्रति ।
उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो वयम् ॥ १५ ॥

यदि सम्प्रति कोई पदार्थभी सर्वज्ञके तुल्यदेखे तो हमलोग उपमान प्रमाणानुसार सर्व्वज्ञको जानसके, अर्थात् यदि इसवस्तुके सदृश, यह रूप देखते तो सर्वज्ञ हमलोगोको दृष्टवस्तुके सदृश इसप्रकार ज्ञानमें उसको जानसकते ॥ १५ ॥

उपदेशोऽपि बुद्धस्य धर्माधर्मादिगोचरः ।
अन्यथा नोपपद्येत सार्वज्ञ्यं यदि नाभवदित्यादि ॥ १६ ॥

यदि सर्व्वज्ञत्वही नही पायाजाता तो अन्य किसीप्रकार भी धर्म्माधर्म्मादि गोचर बुद्धको उपदेश उपपन्न नही होसकता सर्व्वज्ञ भिन्न अन्य व्यक्ति धर्म्माधर्म्मके उपदेश करनेमें समर्थ होसकता ? ॥ १६ ॥

अत्र प्रतिविधीयते यदभ्यधायि सद्भावग्राहकस्य प्रमाणपञ्चकस्य तत्रानुपसन्नादिति तदयुक्तं तत्सद्भवादेकस्यानुमानादेः सद्भावात्। तथाहि कश्चिदात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वाद् यद्यद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्ध्यप्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि । यथा अपगततिमिरादिप्रतिबन्धं लोचनविज्ञानं रूपसाक्षात्कारि । तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च कश्चिदात्मा तस्मात् सकलपदार्थसाक्षात्कारीति ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त प्रस्तावका प्रतिविधान होता है। पूर्वहि कहा गया है सद्भाव ग्राहक प्रमाण पञ्चकका अनुपलब्धिके कारण कोई विशेष पुरुष भी सर्व [illegible] नहीं हो सकता ? सो युक्त नहीं, कारण यह है जो एक अनुमान प्रमाणही वह [illegible] सकता है इस समय इस प्रकार अनुमान होता है जो कोई एक आत्माही सब प [illegible] साक्षात्कार कर सकता है. जिस कारण आत्माको समस्त पदार्थ ग्रहण करनेका सामर्थ्य है सब वस्तु

प्रतिबन्धक (रुकावटे) नाश पाये हैं, अर्थात् आत्माका किसी प्रकार प्रतिबन्धक नहीं और इसमें इस प्रकार व्याप्ति स्थिर है जो जो पदार्थ ग्रहण स्वभावशाली होकर क्षीण प्रतिबंध होता है उसी उसी पदार्थको साक्षात्कार करसकते हैं । जिसप्रकार अकारादि प्रतिबन्ध हट जानेसे चक्षुरूपका साक्षात्कार करता है । कोई आत्माभी वस्तु साक्षात्कार स्वभावशाली होकर प्रतिबन्ध विहीन होसकता है, अतएव वही आत्मा सकलपदार्थका साक्षात्कारी है ॥ १७ ॥

तावदशेषार्थग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धं चोदनाबलान्निखिलार्थज्ञानात् नान्यथानुपपत्त्या सर्वमनैकान्तात्मकं, सत्त्वादिति व्याप्तिज्ञानोत्पत्तेश्च । चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्म व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयतीत्येवंजातीयकैरध्वरमीमांसागुरुभिर्विधिप्रतिषेधविचारणानिबन्धनं सकलार्थविषयज्ञानं प्रतिपद्यमानैः सकलार्थग्रहणस्वभावकत्वमात्मनाऽभ्युपगतम् । न चाखिलार्थप्रतिबन्धकावरणप्रक्षयानुपपत्तिः सम्यग्दर्शनादित्रयलक्षणस्यावरणप्रक्षयहेतुभूतस्य सामग्रीविशेषस्य प्रतीतत्वात् अनया मुद्रयापि क्षुद्रोपद्रया विद्राव्याः ॥१८॥

वास्तविक आत्माका अशेषार्थ ग्रहणका स्वभाव असिद्ध नही है, जिसकारण चोदनाके बलसे निखिलार्थ ज्ञान प्रयुक्त अन्य किसीप्रकार भी उपपत्ति नहीं । आत्माकी चोदना ही अतीत व वर्त्तमान भविष्यत् विषय सब एवं सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट प्रभृति पदार्थका, ज्ञान उत्पन्नकरता है । अत एव जो लोग अध्वर मीमांसाके गुरु एवं विधि और प्रतिषेध विचार निबन्धन सकलार्थ ज्ञान निबन्धन करते हैं, वे ही लोग आत्माके सकलार्थ ग्रहण स्वीकार करते हैं । आत्मा जो सकलार्थ ग्रहण कर सकता है, उसमें प्रतिबन्धकस्वरूप आवरण क्षयकीभी अनुपपत्ति नहीं, जिसकारण सम्यक् दर्शनादि लक्षण एवं आवरण क्षयको हेतुभूत सामग्री विशेषकी प्रतीति है ॥ १८ ॥

नन्वावरणप्रक्षयवशादशेषविषयं विज्ञानं विशदं मुख्यप्रत्यक्ष प्रभवतीत्युक्तं तदयुक्तं तस्य सर्वज्ञस्यानादिमुक्तत्वेनावरणस्यैवासम्भवादिति चेत्तन्न अनादिमुक्तत्वस्यैवासिद्धेर्न सर्वज्ञोऽनादिमुक्तः मुक्तत्वादितरमुक्तवत् बद्धापेक्षया च मुक्तव्यपदेशः तद्रहिते चास्याप्यभावः स्यादाकाशवत् । नन्वनादेः क्षित्यादिकार्य

परम्परायाः कर्तृत्वेन तत्सिद्धिः । तथाहि क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्य्यत्वाद् घटवदिति तदप्यसमीचीनं कार्य्यत्वस्यैवासिद्धेः । न च सावयवत्वेन तत्साधनमित्यभिधातव्यं यस्मादिदं विकल्पजालमवतरति ॥ १९ ॥

और आवरण क्षयवशतः सब विषयही प्रत्यक्षीभूत होजाता है, यह कहातो गया है. किन्तु वह युक्तियुक्त नहीं. कारण यह है जो सर्व्वज्ञ आत्मा अनादि और अनन्त, उसका किसीप्रकार आवरण सम्भव नही । यहभी नही कहा जासकता, जिसकारण अनादिका भी मुक्तत्व असिद्ध है । इतर मुक्तकी नाई सर्व्वज्ञअनादिभी मुक्त नही है, जिस बद्धापेक्षामेंही मुक्तका व्यपदेश होता है जिसका बन्धन नही उसको मुक्त नही कहा जाता, इससमय यदि कहो जो. सर्व्वज्ञ अनादि होनेपरभी क्षित्यादि कार्य्य पदार्थसमूहका कर्तृत्वप्रयुक्त उसकी मुक्तत्वसिद्धि है, क्षित्यादिपदार्थ सब सकर्तृक हैं जिसकारण वे सब घटादिकी नाई कार्य्य हैं, यहभी समीचीन मत नही है. जिसकारण कार्यत्वकी असिद्धि है, यहभी नहि कहा जता, जिसकारण वे इस विकल्पज्ञानसे उत्तीर्ण है ॥ १९ ॥

सावयवत्वे किमवयवसंयोगित्वम्, अवयवसमवायित्वम्, अवयवजन्यत्वम्, समवेतद्रव्यत्वं, सावयवबुद्धिविषयत्वं वा । न प्रथमः आकाशादावनैकान्त्यात् । न द्वितीयः सामान्यादौ व्यभिचारात् । न तृतीयः साध्याविशिष्टत्वात् । न चतुर्थः विकल्पयुगलार्गलग्रहगलत्वात् समवायसम्बन्धमात्रवद्द्रव्यत्वं समवेतद्रव्यत्वम् अन्यत्र समवेतद्रव्यत्वं वा विवक्षितं हेतुक्रियते । आद्ये गगनादौ व्यभिचारः, तस्यापि गुणादिसमवाय त्व द्रव्यत्वयोः संभवात् । द्वितीये साध्याविशिष्टता अन्यशब्दार्थेषु समवायकारणभूतेष्ववयवेषु समवायस्य साधनीयत्वात् । अभ्युपगम्यैतदभाणि वस्तुतस्तु समवाय एव न समस्ति प्रमाणाभावात् । नापि पञ्चमः आत्मादिनानैकान्त्यात् तस्य सावयवबुद्धिविषयत्वेऽपि कार्य्यत्वाभावात् । नच निरवयवत्वेऽप्यस्य सावयवार्थसम्बन्धेन, सावयवबुद्धिविषयत्वमौपचारिकमित्येष्टव्यं निरवयवत्वे व्यापित्वविरोधात् परमाणुवत् । किञ्च

किमेकः कर्त्ता साध्यते किं वा स्वतन्त्रः ॥ प्रथमे प्रासादादौ व्यभिचारः स्थपत्यादीनां बहूनां पुरुषाणां तत्र कर्तृत्वोपलम्भा-दनेनैव सकलजगज्जननोत्पत्तावितरवैयर्थ्यञ्च ॥ २० ॥ २१ ॥

इस समय आशङ्का होती है जो सावयवत्व क्या है ? यह क्या अवयवसंयोगत्व, अव-यवसमवायित्व अवयवजन्यत्व अथवा सावयव बुद्धिविषयत्व ? प्रथम अर्थात अवयवसंयो-गित्व हो नहीं सकता । क्योंकि, अवयवसंयोगित्व होनेसे आकाशादिमें अनैकान्तत्व घटता है । अर्थात् आकाश नित्यपदार्थ है वह किसप्रकार कार्य्य होसकता है ? द्वितीय अर्थात अवयवसमवायित्व भी हो नहीं सकता । क्योंकि, ऐसा होनेसे जाति प्रभृतिमें व्यभि-चार घटता है अर्थात् जातिप्रभृति भी नित्य पदार्थहै सुतरां वह भी किस प्रकार कार्य्य होसकता है ? तृतीय अर्थात् जन्यत्व भी नहीं होसकता अर्थात् ईश्वर निरवयव है । उसे और अवयवी पदार्थका किस प्रकार आविर्भाव होसकता ? चतुर्थ अर्थात् समवेतद्रव्यत्व भी नहीं होसकता । क्योंकि,समवेत द्रव्यत्व कहनेसे दो सन्देह रूप अर्गल ग्रह होजाताहै, प्रथम समवाय सम्बन्ध मात्रवत् द्रव्यत्व ही क्या समवेत द्रव्यत्व, न अन्यत्र समवेत द्रव्यत्व कोही समवेत द्रव्यत्व कहा है, इस प्रकार हेतु उपन्यस्त होसकता है आद्य अर्थात् समवाय सम्बन्ध मात्रवत् द्रव्यत्व कहनेसे आकाशादिमें व्यभिचार घटता है । क्योंकि आकाशका गुणादि समवायत्व और द्रव्यत्व दोनोंही हैं । द्वितीय कहनेसे साध्यकी अविशिष्टता होतीहै । क्योंकि, समवायका कारणभूत अवयव समूहमें समवायका साधनीयत्व होजाताहै ये सब मान कर कहा है,वस्तुतः समवाय ही नहीं है । क्योंकि,इसके अस्तित्व सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं है, पञ्चम अर्थात् सावयव बुद्धि विषयत्व भी नहीं होसकता । क्योंकि ऐसा होनेसे आत्मादिके साथ अनैकान्तत्व दोष घटता है । पक्षान्तरमें, आत्माको सावयव बुद्धि विषय कहकर स्वी-कार करनेपरभी वे कभी कार्य्य नहीं होसकते ॥ २० ॥ २१ ॥

तदुक्तं वीतरागस्तुतौ--

कर्त्तास्ति नित्यो जगतः स चैकः
न सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः ।
इमाः कुहेयाः कुविडम्बनाः स्यु-
स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वामिति ॥ २२ ॥

वीतराग स्तुतिमे वह कहा गया है । जैसे—जगत्का जो कर्त्ता है वह नित्य और एक है एवं वह सर्वज्ञ है, स्ववशहै, और सत्य स्वरूप है इसप्रकार यदि माना जावे तो अन्यान्य जो सब कर्त्ताका अनुशासकत्व नहीं, उन सबकी कुविडम्बना होजाती है ॥ २२ ॥

अन्यत्रापि–

कर्त्ता न तावदिह कोऽपि यथेच्छया वा
दृष्टोऽन्यथा कटकृतावपि तत्प्रसङ्गः ।
कार्य्यं किमत्र भवतापि च तक्षकाद्यै-
राहत्य च त्रिभुवनं पुरुषः करोतीति ॥ २३ ॥

अन्यत्रभी कहा है जो, इस संसारका कोई यथेच्छासे कर्त्ता नहीं है, क्योंकि, कुम्भकारके कार्य्यमें उसप्रसंगका अन्यथाभाव दीखपडता है । और पुरुषने क्या तुमको और सूत्रधरादिको एकत्र समवेत करके इस त्रिभुवनकी सृष्टिकरलियी है ? ॥ २३ ॥

तस्मात् प्रागुक्तकारणत्रितयबलादावरणक्षये सार्वज्ञ्यं युक्तम् । न चास्योपदेष्ट्रन्तराभावात् सम्यग्दर्शनादित्रितयानुपपत्तिरिति भणनीयं पूर्वसर्वज्ञप्रणीतागमप्रभवत्वादमुष्यशेषार्थज्ञानस्य । न चान्योन्याश्रयतादिदोषः आगमसर्वज्ञपरम्पराया बीजाङ्कुरवदनादित्वाङ्गीकारादित्यलम् ॥ २४ ॥

इसकारण पूर्व्वकथित कारणत्रये प्रभावसे आवरण एक कालीनक्षय होनेपर जीवकी सर्वज्ञता युक्तहोजाती है । इस जीवका दूसरा कोई उपदेष्टा नहीं । सुतरां, उसका सम्यग्दर्शनादि त्रितयकी अनुपपत्ति होसकती है, ऐसाभी नही कहा जा सकता । क्योंकि, जो जीव प्रथम सर्वज्ञ हुआ था । उसका प्रणीतआगम होनेसे इसका इसप्रकार सर्व्वज्ञत्व समुद्भूत हुआ है । इसविषयमें अन्योन्याश्रयता आदिदोष नहीं हो सकता । क्योंकि, बीज और अंकुरकी नाई आगम सर्वज्ञ परम्परा अनादि कहकर परिगृहीत होता है ॥ २४ ॥

रत्नत्रयपदवेदनीयतया प्रसिद्धं सम्यग्दर्शनादित्रितयमर्हत्प्रवचनसंग्रहपरे परमागमसारे प्ररूपितं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति । विवृत च योगदेवेन येन रूपेण जीवाद्यर्थो व्यवस्थितस्तेन रूपेणार्हता प्रतिपादिते तत्त्वार्थे विपरीताभिनिवेशरहितत्वाद्यपरपर्य्यायं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं तथा च तत्त्वार्थसूत्रं तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनमिति ॥ २५ ॥

जो सम्यक् दर्शनादि त्रितय रत्नत्रयपदवेदनीय रूपसे प्रसिद्ध है । वह अर्हत प्रवचन संग्रहविषयक परमागमसारनामक ग्रंथमें विशेषरूपसे विवृत हुआ है । उसमें

लिखा है जो सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चरित्र येही तीन साक्षात् मोक्षमार्ग हैं । योगदेव कर्तृक यह भी कहा गया है, जिसप्रकार जीवादि विषयोंकी व्यवस्थापना कियी है, अर्हत कर्तृक उसीप्रकार तत्त्वार्थ प्रतिपादित हुआ है । इसी तत्त्वार्थमें विपरीत अभिनिवेश त्यागादि पूर्व्वक श्रद्धानको सम्यग् दर्शन कहते हैं । तथा हि तत्त्वार्थसूत्र, तत्त्वार्थमें श्रद्धा नही संम्यग् दर्शन है ॥ २५ ॥

अन्यदपि—

रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते ।
जायते तन्निसर्गेण गुरोरधिगमेन वेति ॥ २६ ॥

अन्य प्रकारभी कहा है । जैसः—जिनने जो तत्त्वनिर्देश किया है, उसमें जो सम्यक् प्रकार रुचि है, उसीका नाम श्रद्धान है । निसर्ग एवं गुरुका अधिगम, इन्हीं दो उपायोंसे उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥

परोपदेशनिरपेक्षमात्मस्वरूपं निसर्गः । व्याख्यानादिरूपपरोपदेशजनितं ज्ञानमधिगमः । येन स्वभावेन जीवादयः पदार्थाः व्यवस्थिताः तेन स्वभावेन मोहसंशयरहितत्त्वेनावगमः सम्यग्ज्ञानम् ॥ २७ ॥

उसमें, परका उपदेश निरपेक्ष आत्मस्वरूपको निसर्ग कहते हैं । और व्याख्यानादि रूप, [illegible] ज्ञानका नाम अधिगम है । एवं जिस स्वभावसे जीवादि पदार्थ सब व्यवस्थित, उसी स्वभावके बल मोह और संशय रहित होनेपर, जो अवगम लाभ होता है, उसका नाम सम्यग् ज्ञान है ॥ २७ ॥

यथोक्तम्—

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा ।
योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीपिण इति ॥ २८ ॥

उसी प्रकार कहा है जैसे—यथावस्थित तत्त्व सबका संक्षेप वा विस्तार क्रमसे अवबोध, अर्थात् परिज्ञात होनेहीको मनीपिगण सम्यग्ज्ञान नामसे निर्देश करते है ॥ २८ ॥

तज्ज्ञानं पञ्चविधं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायकेवलभेदेन । तदुक्तम्, मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायकेवलानि ज्ञानमिति । अस्यार्थः ज्ञानावरणक्षयोपशमे सति इन्द्रियमनसी पुरस्कृत्य व्यापृतः सन् यथार्थं मनुते मतिः । ज्ञानावरणक्षयोपशमे सति

मतिजनितं स्पष्टं ज्ञानं श्रुतम् । असम्यग्दर्शनादिगणजनितक्षयोपशमनिमित्तम् अवच्छिन्नविषयं ज्ञानमवधिः । ईर्ष्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमे सति परमनोगतस्यार्थस्य स्फुटं परिच्छेदकं ज्ञानं मनःपर्य्यायः । तपःक्रियाविशेषान् यदर्थं सेवन्ते तपस्विनस्तज्ज्ञानासंस्पृष्टं केवलम् । तत्राद्यं परोक्षं प्रत्यक्षमन्यत् ।

तदुक्तम्—

विज्ञानं स्वपराभासि प्रमाणं बाधवर्जितम् ।
प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च द्विधा मेयविनिश्चयादिति ॥ २९ ॥

यह ज्ञान पाँच प्रकारका है यथा मति श्रुति अवधि मनः पर्य्याय और केवल उसमें ज्ञानावरणका अधिक क्षय होनेपर मन जिसको यथार्थ मनन करता है उसका नाम मति है। ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेपर मतिजनित स्पष्ट ज्ञानका नाम श्रुति है । असम्यग् दर्शनादि गणजनित क्षयोपशम निमित्त जो अवच्छिन्न विषयके ज्ञान उसका नाम अवधि है। ईर्ष्यान्तरमें ज्ञानावरणका चूडान्तक्षय होनेपर, परका मनोगत विषयका जो सुस्पष्ट परिच्छेदक ज्ञान उत्पन्न होता है. उसका नाम मनका पर्य्यय है । और, तपस्विलोग जिस लिये तपःक्रिया विशेषकी सेवा करते हैं, एवं जिसमे अन्य विधज्ञानका संस्पर्शमात्र नही, तादृश ज्ञानका नाम केवलहै । उसमें प्रथमको परोक्ष और अपरको प्रत्यक्ष कहते है वह कहा गया है जैसे—जो अपनेको एव अन्यको विशेषरूपसे प्रतिपादित करता, वही बाधावर्जितज्ञानही प्रमाण है । वह दो प्रकारका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष ॥ २९ ॥

अन्तर्गणिकभेदस्तु सविस्तरस्तत्रैवागमेऽवगन्तव्यः । संसरणकर्मोच्छित्तावुद्यतस्य श्रद्धधानस्य ज्ञानवतः पापगमनकारणक्रियानिवृत्तिः सम्यक्चारित्रम् । तदेतत् सप्रपञ्चमुक्तमर्हता ॥३०॥

इसमे जो अवान्तरभेद है. उसे उसीशास्त्रमें सविस्तर जानना चाहिये जिसके द्वारा बारा-बारबा जाना आना होता है. वैसे कर्मको उच्छेदनमें समुद्यत, श्रद्धाशील ज्ञानवान् पुरुषके पापतत्पके हेतुभूत क्रियाकी निवृत्तिको सम्यक्चारित्र कहते हैं । अर्हन्ने उसको सविस्तर निर्देश किया है ॥ ३० ॥

सर्वथावद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते ।
कीर्त्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा ।
अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः ॥ ३१ ॥

जैसे—विगर्हित विषय संसर्गका सर्वतो भावसे परिहारको चारित्र कहते हैं । यह चारित्र अहिंसादि व्रत भेदसे ५ प्रकारका है । जैसे, अहिंसा, सूनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, और अपरिग्रह ॥ ३१ ॥

न यत् प्रमादयोगेन जीवितव्यपरोपणम् ।
चराणां स्थावराणाञ्च तदहिंसाव्रतं मतम् ॥ ३२ ॥

उनमें प्रमादवशात्भी स्थावर जङ्गम पदार्थोंके हानि न करनेको अहिंसा व्रत कहतेहैं ॥ ३२ ॥

प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं सूनृतं व्रतमुच्यते ।
तत्तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियञ्चाहितञ्च यत् ॥ ३३ ॥

प्रिय, हित और सत्य वाक्यका नाम सूनृत व्रत है । जिसमें लोककी अप्रतीति, और अहित उत्पन्नहो, वैसा वाक्य उसप्रकार होनेपरभी तथ्य नही ॥ ३३ ॥

अनादानमदत्तस्यास्तेयव्रतमुदीरितम् ।
बाह्याः प्राणा नृणामर्थो हरता तं हता हि ते ॥ ३४ ॥

विना आज्ञा किसीके द्रव्य न लेनेका नाम स्तेय व्रत कहते हैं ॥ ३४ ॥

दिव्योदरिकक्कामानां कृतानुमतकारितैः ।
मनोवाक्कायतस्त्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम् ॥ ३५ ॥

मनद्वारा, वाक्यद्वारा, और शरीरद्वारा दिव्य और औदयिक कर्म्मोंके त्याग करनेका नाम है । वह १८ प्रकारका है ॥ ३५ ॥

सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः ।
यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लवः ॥ ३६ ॥

सब विषयोंके प्रभाव घटनेपरभी उसके लिये मूर्च्छा अर्थात् मोह किसीप्रकार आविष्कार न होनेको अपरिग्रह व्रत कहते हैं । इसप्रकार अभाव होनेपर मूर्च्छा उपस्थित होनेसे चित्त विप्लव संघटित होजाता है ॥ ३६ ॥

भावनाभिर्भावितानि पञ्चभिः पञ्चधा क्रमात ।
महाव्रतानि लोकस्य साधयन्त्यव्ययं पदमिति ॥ ३७ ॥

उल्लिखित महाव्रत सब यथा क्रमसे पांचप्रकारके भावनाद्वारा भावित होनेपर लोगोंको अव्ययपद संसाधित करते हैं ॥ ३७ ॥

भावनापञ्चकप्रपञ्चनञ्च प्ररूपितम्--
हास्यलोभभयक्रोधप्रत्याख्यानैर्निरन्तरम् ।
आलोच्य भाषणेनापि भावयेत् सूनृतं व्रतमित्यादिना॥३८॥

पांचप्रकारकी भावनाओंका सविस्तर वर्णन किया है । जैसे, हास्य, लोभ, भय, और क्रोध इनका प्रत्याख्यान और भाषण, इत्यादि सहायमें आलोचना करके निरन्तर सूनृत व्रतमें भावना करे ॥ ३८ ॥

एतानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मिलितानि । मोक्षकारणं न प्रत्येकं यथा रसायनज्ञानं श्रद्धानावरणानि सम्भूय रसायन-फलं साधयन्ति न प्रत्येकम् ॥ ३९ ॥

उल्लिखित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चरित्र परस्पर मिलकर मोक्ष समुद्भावन करता है । नहीं मिलनेसे एकाकी मोक्षसाधनमें असमर्थ होता है । जिसप्रकार रसायनज्ञान, श्रद्धान और आवरण ये सब मिलकर, रसायन फल साधन करते हैं, परन्तु--एक २ नहीं करसकता ॥ ३९ ॥

अत्र संक्षेपतस्तावज्जीवाजीवाख्ये द्वे तत्त्वे स्तः । तत्र बोधात्मको जीवः, अबोधात्मकस्त्वजीवः । तदुक्तं पद्मनन्दिना ।
चिदचिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्--
उपादेयमुपादेयं हेयं हेयञ्च कुर्वतः ॥ ४० ॥

इसमें सक्षेप विधानमें जीव और अजीव नामक दोप्रकारका तत्त्व सन्निविष्ट हुआ है । उसमें बोधात्मक जीव, और अबोधात्मक अजीव है । सो पद्मनन्दीने कहा है:--जैसे चिन्त और अचिन्त भेदसे परमतत्त्व दो प्रकारका है । जो उपादेय है उसका ग्रहण एवं जो हेय है उसका परिहार पूर्वक उल्लिखित दो प्रकारके तत्त्वोंकी विवेचना अर्थात् सविशेष विचार करनेहीका नाम विवेक है ॥ ४० ॥

हेयं हि कर्तृरागादि तत कार्य्यमविवेकिनः ।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणमिति ॥ ४१ ॥

हेय शब्दसे कर्त्ताका रागादि समझना चाहिये । यह रागादि अविवेकी कार्य्य है । जो उपादेय है, वही परंज्योतिका एकमात्र लक्षन है ॥ ४१ ॥

सहजचिद्रूपपरिणतिं स्वीकुर्वाणज्ञानदर्शने उपयोगः । सपरस्प-रप्रदेशात्तु प्रदेशबन्धात् कर्मणैकीभूतस्यात्मनोऽन्यत्वप्रतिपत्ति-

कारणं भवति। सकलजीवसाधारणं चैतन्यमुपशमक्षयक्षयो-पशमवशादौपशमिकक्षयात्मकक्षयौपशामिकभावेन कर्मोदयव-शात् कलुषान्याकारेण च परिणतजीवपर्य्यायजीवाविवक्षायां स्वरूपं भवति॥ ४२॥

उनमें सहज चिद्रूप परिणति स्वीकार करनेपर, ज्ञानदर्शनमें जो उपयोग अर्थात् अधिकार उत्पन्न होता है, उसीको कर्म्मके साथ एक होकर आत्माकी अन्यत्व प्रतिपत्तिका हेतुभूत लक्षण कहते हैं। और सब जीव साधारण चैतन्य ही उपशमक्षय और क्षयोपशमन वशसे उपशमक क्षयात्मक और क्षयोपशमिक इन दो प्रकारके भाव सहायसे कर्म्मोदय प्रयुक्त कलुषरूप अन्य आकारस्वरूपमें परिणत होता है॥ ४२॥

यदवोचद्वाचकाचार्य्यः--औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य सत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ चेति। अनुदयप्राप्तिरूपे कर्मण उपशमे सति जीवस्योत्पद्यमानो भावः औपशमिकः। यथा पङ्के कलुषतां कुर्वन्ति कतकादिद्रव्यसम्बन्धादधः पतिते जलस्य स्वच्छता। कर्मणः क्षयोपशमे सति जायमानो भावः क्षयिकः। यथा मोक्षः। उभयात्मा भावो मिश्रः। यथा जलस्यार्द्धस्वच्छता। कर्मोदये सति भवन् भाव औदयिकः। कर्मोपशाद्यनपेक्षः सहजो भावश्चे तनत्वादिः पारिणामिकः। तदेतत् सत्त्वं यथासम्भवं भव्यस्याभव्यस्य वा जीवस्य तत्त्वं स्वरूपमिति सूत्रार्थः॥ ४३॥

वाचकाचार्य्यने कहा है, जीवका औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक, और पारिणामिक इन पांचप्रकारके भावका नाम सत्त्व है। उनमें कर्म्मका अनुदय प्राप्तिरूप उपशम घटनेपर; जीवके उत्पद्यमान भावको औपशमिक कहते हैं। जिसप्रकार पङ्क कलुषत्व सम्पादन पूर्वक निर्म्मल्यादि द्रव्यसम्बन्ध वशतः अधःपतित होनेपर जलकी स्वच्छता संघटित होती है। कर्म्मके क्षयोपशम होनेपर, जीवके जायमान भावको क्षायिक कहते हैं। जिसप्रकार मोक्ष। इसप्रकार उभयात्मक भावको मिश्र कहते हैं। जिसप्रकार जलकी अर्द्धस्वच्छता। कर्म्मके उदय होनेपर जिसभावका आविर्भाव होता है उसका नाम औदयिक है। और कर्म्मकी उपशमादिकी अपेक्षा परिहार कर, जो सहज भावका आविष्कार होता है उसका नाम पारिणामिक है। चेतनत्वादि इसभावमें अन्तर्निविष्ट है। इसीका नाम सत्त्व

है। अर्थात् यथासम्भव भव्य और अभव्य जीवका तत्त्व या स्वरूप है । यही सूत्रका अर्थ है ॥ ४३ ॥

तदुक्तम् स्वरूपसम्बोधने-

ज्ञानाद् भिन्नो न चाभिन्नो भिन्नाभिन्नः कथञ्चन ।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तित इति ॥ ४४ ॥

रूप सम्बोधनमें कहा है कि जैसे:—जो ज्ञानसे भिन्न नही. अभिन्न और जो किसीप्रकार भिन्न वा अभिन्न भी है तो उसको आत्मा कहते हैं । यही आत्मा पूर्व्वापरिभूत ज्ञान स्वरूप है ॥ ४४ ॥

ननु भेदाभेदयोः परस्परपरिहारेणावस्थानादन्यतरस्यैव वास्तवत्वादुभयात्मकमयुक्तमिति चेत्तदयुक्तं बाधे प्रमाणाभावात् । अनुपलम्भो हि बाधकं प्रमाणं न सोऽस्ति समस्तेषु वस्तुष्वनेकरसात्मकत्वस्य स्याद्वादिनो मते सुप्रसिद्धत्वादित्यलम् ॥ ४५ ॥

यदि कहो, भेद और अभेद ये परस्पर परिहार कर अवस्थान करते हैं । इसलिये इनमें अन्यतरका वास्तवत्त्व कहनेसे उभयात्मकत्व कहना सङ्गत नही होसकता, यह सत्य तो है । किन्तु बाध विषयमें प्रमाण कह अभाववशतः यह सर्वथा अयुक्त है । अनुपलम्भ ही बाधक प्रमाण है । यहां वह नहीं है । सब ही वस्तुमें अनेक रसात्मकताका अनुपलम्भ होता है । अर्थात् किसी वस्तुमें अनेक रस रहनेपर भी एक समयमे इन अनेक रसोंकी प्रतीति नही होती । अतएव ये अनेक रस-आत्मामें ज्ञानका भेदाभेद वादीके मतमें भी प्रसिद्ध ही है ॥ ४५ ॥

अपरे पुनर्जीवाजीवयोरपरं पञ्चमाचक्षते जीवाकाशधर्माधर्मपुद्गलास्तिकायभेदात् । एतेषु पञ्चसु तत्त्वेषु कालत्रयसम्बन्धितया स्थितिव्यपदेशः, अनेकप्रदेशत्वेन शरीरवत् कायव्यपदेशः । तत्र जीवा द्विविधाः, संसारिणो मुक्ताश्च । भवाद्भवान्तरप्राप्तिमन्तः संसारिणः । ते च द्विविधाः, समनस्का अमनस्काश्च । तत्र संज्ञिनः समनस्काः, शिक्षाक्रियालापग्रहणरूपा संज्ञा तद्विधुरास्त्वमनस्काः । ते चामनस्का द्विविधाः, त्रसस्थावरभेदात् । तत्र द्वीन्द्रियादयः शङ्खगण्डोलकप्रभृतयश्चतुर्विधा-

स्त्रयाः, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः तत्र मार्गगतधूलिः पृथिवी, इष्टकादिः पृथिवीकायः, पृथिवी कायत्वेन येन गृहीता स पृथिवीकायकः, पृथिवीं कायत्वेन यो ग्रहीष्यति स पृथिवीजीवः । एवमबादिष्वपि भेदचतुष्टयं योज्यम् । तत्र पृथिव्यादि कायत्वेन गृहीतवन्तो ग्रहीष्यन्तश्च स्थावरा गृह्यन्ते न पृथिव्यादिपृथिवीकायादयः तेषां जीवत्वात् । ते च स्थावराः स्पर्शनैकेन्द्रियाश्च भवान्तरप्राप्तिविधुरा मुक्ताः धर्माः धर्माधर्माकाशास्तिकायास्ते एकत्वशालिनो निष्क्रियाश्च द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः ॥ ४६ ॥

कोई २ जीव और अजीव दोनोंका अन्यविध प्रपञ्च वर्णन करते हैं, जैसे जीव, आकाश, धर्म्म, अधर्म्म, पुद्गल, और अस्तिकाय येही पांच तत्त्व कालत्रय सम्बन्धी हैं । सुतरां इनकी जिस प्रकार स्थिति है, कहा जाता है, उसीप्रकार अनेक प्रदेशविशिष्ट कहकर, जीव की नाई इनका कार्यभी है, कहा जासकता है । उनमें जीव दोप्रकारका है, संसारी और मुक्त । जो लोग जन्मके बाद जन्म लेते हैं, उन लोगोंको संसारी कहते हैं । ससारी [illegible] के हैं समनस्क और अमनस्क । उनमें जो लोग संज्ञाविशिष्ट हैं, उनको समनस्क [illegible] हैं । यहां संज्ञा शब्दसे शिक्षा, क्रिया, आलाप. और ग्रहण होता है । जिनकी सञ्ज्ञा [illegible] उनको अमनस्क कहते हैं । अमनस्क और भी दोप्रकारका है । जैसेः— त्रय और [illegible]थावर । उनमें, उनको दो तो इन्द्रिय हैं, तादृश शङ्ख और गण्डोलक प्रभृति चारप्रकारके प्राणीको " त्रय " कहते हैं । और पृथिवी, जल, तेज, वायु और वनस्पति ये सब स्थावर नामसे परिगणित हैं । उनमें मार्गके धूलिका नाम पृथिवी है, और इष्टकादि पृथिवीका शरीर है । जिनने पृथिवीको कायरूपमें ग्रहण किया है, उसका नाम पृथिवीकायक है । और जो पृथिवीको कायत्वसे ग्रहण करेगा, उसको पृथिवीजीव कहते हैं । इन्हीं जल प्रभृति अवशिष्ट पदार्थोंमे भी चार भेदोंकी योजना होसकती है । जैसेः—जल, जलकाय, जलकायक और जलजीव इत्यादि । उनमें, जिन लोगोंने पृथिव्यादिको कायरूपसे ग्रहण किया है, और जो करेंगे, वे लोग स्थावर रूपसे परिगृहीत होते हैं । पृथिव्यादि और पृथिवीके कायादि जीव कहकर स्थावर सब स्पर्शनरूप एकमात्र इन्द्रियविशिष्ट उनकी जन्मान्तर प्राप्ति नहीं होती । इस कारण वे लोग मुक्त हैं । उनका धर्म्माधर्म्म आकाश और अस्तिकाय है, वे लोग एकत्व सम्पन्न और क्रियाहीन एवं द्रव्यकी देशान्तर प्राप्तिका कारण है ॥ ४६ ॥

तत्र धर्माधर्मौ प्रसिद्धौ आलोकेनाविच्छिन्ने नभसि लोकाकाशपदवेदनीये सर्वत्रावस्थितिगतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः, अत एव धर्मास्तिकायः प्रवृत्त्यनुमेयः अधर्मास्तिकायः स्थित्यनुमेयः । अन्यवस्तुप्रदेशमध्येऽन्यस्य वस्तुनः प्रवेशोऽवगाहः तदाकाशकृत्यम् । स्पर्शरसवर्णवन्तः पुद्गलाः । ते च द्विविधाः,अणवः स्कन्धाश्च।भोक्तुमशक्त्या अणवः।द्व्यणुकादयः स्कन्धाः । तत्र द्व्यणुकादिस्कन्धभेदादण्वादिरुत्पद्यते, अण्वादिसङ्घातात् द्व्यणुकादिरुत्पद्यते। क्वचिद्भेदसंघाताभ्यां स्कन्धोत्पत्तिः, अतएव पूरयन्ति गलतीति पुद्गलाः । कालस्यानेकप्रदेशत्वाभावेनाऽस्तिकायत्वाभावेऽपि द्रव्यत्वमस्ति तल्लक्षणयोगात् ॥ ४७ ॥

उनमें धर्माधर्म्मके करनेकी आवश्यकता नहीं । वह प्रसिद्ध ही है । जो लौकिक आकाश शब्दसे परिज्ञात है, एवं जो आलोकद्वारा विच्छिन्न नही होता । उसी नभोमण्डलमें सर्व्वत्र अवस्थिति है इन तीन व्यापारोंका समाधान धर्म्माधर्म्मका उपकार । अर्थात् धर्म्माधर्म्मद्वारा यही उपकार लाभ होता है, जो, इसप्रकार सर्व्वत्र अवस्थानादि किया जासकता है । अतएव धर्म्मास्तिकाय प्रवृत्तिद्वारा अनुमेय । अर्थात् जिसस्थानमे प्रवृत्ति है, उसी स्थान मे धर्म्म है । अनुमान करना चाहिये । और जिसस्थानमे स्थिति है, अर्थात् प्रवृत्तिका अभाव है. उसी स्थानमें अधर्म्मास्तिकाय अर्थात् अधर्म्म है ~ नही धर्म्मका अभाव समझना होगा । अन्य वस्तुके प्रदेशमें अन्य वस्तुके प्रवेशको अवगाह कहते हैं । इसका नाम आकाशकृत्य अर्थात् आकाशका कार्य्य है । जिसमें स्पर्श. रस और वर्ण है. उनको पुद्गल कहते है । वे दोप्रकारके हैं. अणु और. स्कन्ध । उनमें जिनको भोग न किया जासके उनको अणु कहते है । और द्व्यणुकादिको स्कन्ध कहते हैं । उनमें. द्व्यणुकादि स्कन्ध भेद से अण्वादिकी उत्पत्ति होती है और अण्वादिकी संघातसे द्व्यणुकादि उत्पन्न होता है । या कहीं भेद और संघात दोनोंहीके योगसे स्कन्धकी उत्पत्ति होती है । इसी कारण, जो पूरण करना एवं गलितहो उसको पुद्गल कहते हैं कालके वह प्रदेशविशिष्टत्व न रहनेपर प्रयुक्त उसका अस्तिकायत्व न रहनेपरभी उसको द्रव्य नामसे निर्देश किया जासकता है । क्योंकि, उसमें द्रव्यका लक्षण है ॥ ४७ ॥

तदुक्तं गुणपर्य्यायवद्द्रव्यमिति । द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः । यथा जीवस्य ज्ञानत्वादिसामान्यरूपाः पुद्गलस्य रूपत्वादि-

सामान्यस्वभावा धर्माधर्माकाशकायानां यथासम्भवं गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वादिसामान्यानि गुणाः । तस्य द्रव्यस्योक्तरूपेण भवनमुत्पादः तद्भावः परिणामः पर्य्याय इति पर्य्यायाः । यथा जीवस्य घटादिज्ञानसुखक्लेशादयः पुद्गलस्य मृत्पिण्डघटादयः धर्मादीनां गत्यादिविशेषाः, अतएव षट् द्रव्याणीति प्रसिद्धिः ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार—कहा है, जो गुण पर्याण विशिष्ट है, उसका नाम द्रव्य है । उसमें, जो द्रव्यके आश्रित और निर्गुण है; उसका नाम गुण है । जिसप्रकार, जीवका ज्ञानत्वादि सामान्यरूप गुण पुद्गलके रूपत्वादि सामान्य स्वभाव गुण है, और धर्म्माधर्म्म और आकाश और कायकी यथा सम्भव गति, स्थिति और अवगाहहेतुत्वादि सामान्यगुण उसी द्रव्यके उत्तररूपसे उत्पादन, परिणाम और पर्य्यायको पर्य्याय कहते हैं । इस कारण द्रव्य छः प्रकार कहकर प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥

केचन सप्त तत्त्वानीति वर्णयन्ति । तदाह जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वानीति । तत्र जीवाजीवौ निरूपितौ । आस्रवो निरूप्यते । औदारिकादिकायादिचलनद्वारेणात्मनश्चलनं योगपदवेदनीयमास्रवः । यथा सलिलावगाहिद्वारं नद्यास्रवणं कारणत्वादास्रव इति निगद्यते तथा योगप्रणाडिकया कर्मास्रवतीति स योग आस्रवः । यथा आर्द्रं वस्त्रं समन्ताद्वातानीतं रेणुजातमुपादत्ते तथा कषायजलार्द्र आत्मा योगानीतं कर्म सर्वप्रदेशैर्गृह्णाति । यथा वा निष्टप्तायःपिण्डे जले क्षिप्ते अम्भः समन्ताद्गृह्णाति तथा कषायोष्णो जीवो योगानीतं कर्म समन्तादादत्ते । कषति हिनस्त्यात्मानं कुगतिप्रापणादिति कषायः क्रोधो मानो माया लोभश्च । स द्विविधः शुभाशुभभेदात् । तत्राहिंसादिः शुभः काययोगः सत्यमितहितभाषणादिः शुभो वाग्योगः तदेतदास्रवभेदप्रभेदजातं कायवाङ्मनःकर्मयोगः स आस्रवः शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्येत्यादिना सूत्रसन्दर्भेण

ससंरम्भमभाणि । अपरे त्वेवं मेनिरे आस्रवयति पुरुषं विषये-ष्विन्द्रियप्रवृत्तिरास्रवः । इन्द्रियद्वारा हि पौरुषं ज्योतिर्विषयान स्पृशद्रूपादिज्ञानरूपेण परिणामित इति ॥ ४९ ॥

कोई २ सातप्रकारके तत्त्व कहते हैं । जैसे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जर और मोक्ष उनमें जीव और अजीवका स्वरूप पूर्वही निरूपित हुआ है इस समय आस्रव स्वरूपका व्याख्यान किया जाता है । औदयिकादि कायादिका चलनद्वारा आत्माका जो चलन होता है. जो योगशब्दसे प्रचलित होता है, उसका नाम आस्रव है । जिसप्रकार जलके चलनद्वारा नदीका चलन होता है । उसी चलनको कारणत्व वशात् आस्रव कहते है । उसीप्रकार योग प्रणाडीद्वारा कर्म्म सबका आस्रव अर्थात् स्वल न होता है । उसी योगको आस्रव कहते हैं । जिसप्रकार, भीगावस्त्र चारोंओरसे वायुवशात् आनीत रेणु समूहको ग्रहण करता है, उसीप्रकार कषाय जलसे आर्द्र होकर आत्मा योगबलसे मानीत कर्म्मको सर्व्व प्रदेशसे ग्रहण करता है । या जिसप्रकार अतिशय उत्तप्त लोहपिण्ड जलमे क्षिप्तहोनेपर सब ओरसे शीकर समस्त ग्रहण करते है, उसी प्रकार कषायोष्ण जीव योगानीत कर्म्म सब ओरसे ग्रहण किया जाता है । अर्थात् कुगति प्राप्तकर आत्माको हीनभावापन्न करते है, इसलिये इसका नाम कषाय है । क्रोध, लोभ, माया और मान इन सबको कषाय कहते हैं । कषाय दोप्रकारका है । जैसे:—शुभ और अशुभ । उनमे अहिंसादि शुभका योग एवं सत्य. मित और हित भाषणादि शुभ वाग्योग । दूसरे २ लोग यों कहते है जो. आस्रव शब्दसे इन्द्रिय प्रवृत्ति ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि, इस पुरुषको आस्रवमें अर्थात् विषयमें गूढ आसक्त किया है । इसलिये इसका नाम आस्रव है । उसी प्रकार—पौरुष ज्योति इन्द्रियद्वारा ही विषय सब स्पर्शकर रूपादि ज्ञानरूपसे परि-णामित होता है ॥ ४९ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषायवशाद्योगवशाच्चात्मा सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाहिनामनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां कर्मबन्धयोग्याना-मादानमुपश्लेषणं यत् करोति स बन्धः । तदुक्तं, सकषायत्वा-ज्जीवः कर्मभावयोग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध इति तत्र कषाय-ग्रहणं सर्वबन्धहेतूपलक्षणार्थम् । बन्धहेतून् पपाठ वाचकाचार्य्यः मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाया बन्धहेतव इति मिथ्यादर्शनं द्विविधं मिथ्याकर्मोदयात् परोपदेशानपेक्षं तत्त्वाश्रद्धानं नैसर्गि-कमेकम् अपरं परोपदेशजम् । पृथिव्यादिषट्कापादानकं षाडि-

न्द्रियासंयमनञ्च अविरतिः । पञ्चसमिति गुप्तिष्वनुत्साहः प्रमादः । कषायः क्रोधादिः । तत्र कषायान्ताः स्थित्यनुभावबन्धहेतवः प्रकृतिप्रदेशबन्धहेतुर्योग इति विभागः ॥ ५० ॥

आत्मा मिथ्या दर्शन अविरति प्रमाद और कषायवशात एवं योगवशात् अनन्तानन्त प्रदेशविशिष्ट और कर्म्मबन्धके उपयोगी पुद्गल सबका जो परिग्रह और परिहार करते हैं। उसका नाम बन्ध है। सो कहा है, जैसेः—जीव कषायवशात् कर्म्मभाव योग्य पुद्गल सबको जो परिग्रह करते हैं, उसको बन्ध कहते हैं। यहां कषायशब्दसे जितने बन्धके हेतु हैं, जानना चाहिये वाचकाचार्य्यने इस प्रकार बन्ध हेतु सब निर्दिष्ट किया है । जैसेः—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय ये सब बन्धके हेतु हैं। मिथ्यादर्शन दोप्रकारका है। प्रथम मिथ्याकर्म्मके उदर वशसे परायेके उपदेशके व्यतिरेकसे समुद्र भूत तत्त्वाश्रद्धान है । यह नैसर्गिक है । द्वितीय परोपदेश जनिता पृथिवी प्रभृति छः उपदेशात्मक छः इन्द्रियका संयमन नहीं करनेका नाम अविरति है। पांच प्रकारकी समिति गुप्तिमें जो उत्साह विरह है, उसको प्रमाद कहते हैं। कषाय शब्दसे क्रोधादि उनमें मिथ्या दर्शनसे कषाय पर्य्यन्त ४ स्थिति और अनुभवसे बन्धका कारण है। और योग प्रकृति और प्रदेशके बन्धका हेतु है । यह विभाग है ॥ ५० ॥

बन्धश्चतुर्विध इत्युक्तं, प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तु तद्विधय इति यथा निम्बगुडादेस्तिक्तत्वमधुरत्वादिस्वभावः एवमावरणीयस्य ज्ञानदर्शनावरणत्वमादित्यप्रभोच्छेदकाम्भोधरवत् प्रदीपप्रभातिरोधायककुम्भवच्च सदसद्वेदनीयस्य सुखदुःखोत्पादकत्वमसिधारामधुलेहनवद्दर्शनमोहनीयस्य तत्त्वार्थाश्रद्धानकारित्वं दुर्जनसङ्गवच्चारित्रे मोहनीयस्यासंयमहेतुत्वं मद्यमदवदायुषो देहबन्धकर्तृत्वं जलवत् नाम्नो विचित्रनामकारित्वं चित्रकवद्गोत्रस्योच्चनीचकारित्वं कुम्भकारवद्दानादीनां विघ्ननिदानत्वमन्तरायस्य स्वभावः कोशाध्यक्षवत । सोऽयं प्रकृतिबन्धोऽष्टविधः द्रव्यकर्मावान्तरभेदमूलप्रकृतिवेदनीयः । तथावोचदुमास्वातिवाचकाचार्य्यः आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तराया इति तद्भेदञ्च समगृह्णात पञ्चनवाष्टाविंश-

तिचतुर्द्विचत्वारिंशद्विपञ्चदशभेदा यथाक्रममिति । एतच्च सर्वं विद्यानन्दादिभिर्विवृतमिति विस्तरभयान्न प्रस्तूयते ॥ ५१ ॥

बन्ध चारप्रकारका है । प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश । निम्ब और गुड़ादिका तीताधन और मधुरता आदि स्वभावहै इसीप्रकार आवरणीय वस्तुका ज्ञान दर्शनका आवरण करनाही स्वभावहै । जिसप्रकार, मेघ सूर्य्यका प्रभावका आवरक एवं कुम्भ प्रदीप के प्रभाका उच्छेदक है पुनः सदसद्वेदनीयवस्तुका स्वभाव सुख और दुःखका उत्पादन करना । जैसेः—असिधारामें मधु अर्पण कर लेहन करनेपर सुख और दुःख दोनोंही उत्पन्न होते है । दर्शन मोहनीय अर्थात् जिसके देखनेहीसे मोह उत्पन्न हो, जैसे वस्तुका स्वभाव, तत्त्वार्थसे अश्रद्धानकारित्व, जिस प्रकार दुर्जनसंगसे तत्त्वार्थमें अश्रद्धान उत्पन्न होता है चरित्र मोहनीय वस्तुका स्वभाव असंयम समुत्पादन करना जिस प्रकार मद्यमद असंयमका [illegible] है । देहसे बन्धनका संधान करना आयुका स्वभाव है कुम्भकारकी नाईं उच्च नीच [illegible]त्व । असंशयका स्वभाव, को साध्यक्षकी नाईं ज्ञानादि व्यापारपरम्पराका विघ्न उत्पा[illegible] है । यह प्रकृतिबन्ध आठप्रकारका है । यह द्रव्य कर्म्म अवान्तरभेद और [illegible] द्वारा वेदनीय है अर्थात् परिज्ञात होजाता है उसी प्रकार उमास्वामी वाचक मूलप्रश्ने कहा है, ज्ञानदर्शन, आवरण, वेदनीय, मोहनीय आयु, नाम, गोत्र और [illegible], ये ही आठ प्रकारका प्रकृतिबन्ध है इससे भिन्न पांच, नौ, अठाईस, बेआलीस, अन्तराय प्रकार भेदभी परिदर्शित हुआ है विद्यानन्द प्रभृतिनेभी ये सब भेद कहे हैं, [illegible] वे सब प्रस्तावित नहीं किये गये ॥ ५१ ॥

[illegible] जागोसहिष्यादिक्षीराणामेतावन्तमनेहसं माधुर्य्यस्वभा-
यथा [illegible] स्थितिः तथा ज्ञानावरणादीनां मूलप्रकृतीनामादित-
[illegible]स्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोट्यः परा
स्थितिरित्याद्युक्तं कालनुद्धानवत् स्वीयस्वभावादप्रच्युति-
स्थितिः ॥ ८२ ।

यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेन स्वकार्य्य-कारणे सामर्थ्यविशेषोऽनुभावः तथा कर्मपुद्गलानां स्वकार्य्य-कारणे सामर्थ्यविशेषोऽनुभावः ॥ ५३ ॥

जैसे—अजा, गो और महिषी प्रभृतिकी क्षीर राशिका तीव्र मन्दादि भावसे स्वकार्य करनेमें सामर्थ्यविशेषको अनुभाव कहते हैं, उसीप्रकार कर्म्म पुद्गल सबका स्वकार्य्य कर-नेमें सामर्थ्यविशेषका नाम अनुभाव है ॥ ५३ ॥

कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानामनन्तान्तप्रदेशानाम् आत्मप्र-देशानुप्रवेशः प्रदेशबन्धः ॥ ५४ ॥

कर्म्मभाव प्राप्त अनन्तानन्त प्रदेशविशिष्ट पुद्गलस्कन्ध सबका आत्मप्रदेशमें अनुप्रवे-शको प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥ ५४ ॥

आस्रवनिरोधः संवरः, येनात्मनि प्रविशत् कर्म प्रतिषिध्यते स गुप्तिसमित्यादिः संवरः । संसारकारणाद्योगादात्मनो गो[पनं] गुप्तिः । सा त्रिविधा कायवाङ्मनोनिग्रहभेदात् । प्राणिपीडा[परि]हारेण सम्यगयनं समितिः सा ईर्ष्याभाषादिभेदात् पञ्चधा ॥

आस्रवनिरोधका नाम संवन्धहै । जिसके द्वारा आत्मामें प्रवेशोद्यत कर्म्म प्रतिषि[द्ध होता] है, उसका नाम गुप्तिसमित्यादि संवरहै । संचारके हेतुभूत योगसे आत्माके गो[पनको] गुप्ति कहते हैं गुप्ति तीन प्रकारकी है, जैसे—कायनिग्रह, मनोनिग्रह और वाक्य[निग्रह । प्राणि]योंकी जिसमें पीड़ा अर्थात् क्लेश उपस्थित न होसके, अनुरूप अयन अर्थात् [गमनका] नाम समिति है । यह समिति ईर्ष्या, और भाषा भेदसे पांच प्रकारकी [है । ईर्ष्या]समिति, भाषासमिति, रोषणासमिति, सादानसमिति और सोत्सर्गसमि[ति ॥ ५५ ॥]

प्रपञ्चितञ्च हेमचन्द्राचार्य्यैः—

लोकातिवाहिते मार्गे चुम्बिते भास्वदंशुभिः ।
जन्तुरक्षार्थमालोक्य गतिरीर्ष्या मता [सताम् ॥]

हेमचन्द्राचार्य्यने इसका यथाक्रमसे सविस्तर वर्णन किया [है । सूर्य्यकिरणोंसे] प्रकाशित लोगोंके अतिवाहित मार्गमें प्राणियोंकी रक्षणार्थ विशे[ष रूपसे देखकर चल]नेका नाम ईर्ष्यासमिति है ॥ ५६ ॥

का-
वदा-
चित्र-
निदान-
तिबन्धोऽ-
यावोचदुमा-
प्रमोदनीया-
पद्यावेश-

आपद्यनागतः सर्वजनीनं मितभाषणम्।
प्रिया वाचंयमानां सा भाषासमितिरुच्यते॥ ५७॥

जिसमें सबलोगोंके मनकी प्रीति उत्पन्न होसके इसप्रकार मितवाक्य प्रयोग करनेका नाम भाषासमिति है। जिन लोगोंने संयम किया है, यह भाषासमिति उन सबको प्रिय है॥ ५७॥

द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्नित्यमदूषितम्।
मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणासमितिर्मता॥ ५८॥

ये जो ४२ प्रकारके भिक्षादोष कहे गये हैं जिसमें उन सबका किसीप्रकार संस्पर्श नहीं तादृश अन्नग्रहणकरनेका नाम ऐषणासमिति है॥ ५८॥

आसनादीनि संवीक्ष्य प्रतिलङ्घ्य च यत्नतः।
गृह्णीयान्निक्षिपेद् ध्यायेत् सादानसमितिः स्मृता॥ ५९॥

हे! आसनादि समुदाय सम्यक् रूपसे दर्शन और यत्नपूर्वक प्रतिलङ्घन कर ग्रहण, निक्षेप और ध्यान करना चाहिये इसका नाम सादान समिति है॥ ५९॥

कफमूत्रमलप्रायैर्निर्जन्तु जगतीतले।
यत्नाद्यदुत्सृजेत् साधुः सोत्सर्गसमितिर्भवेत्॥ ६०॥

कफ, मूत्र और मलकी अधिकतासे संसार जन्तुरहित होसकताहै। इस कारण साधु अन्तरायपूर्वक सो सब छोडेंगे। इसका नाम सोत्सर्गसमिति है॥ ६०॥

एवं ... स्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवर इति निराहुः।
... भियुक्तैः—

यथा ... भवहेतुः स्यात् संवरो मोहकारणम्।
... मुक्तिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम्॥ ६१॥
... स्थितिरित्याद्यु...
स्थितिः॥ ६२॥

...तसे अर्थात् उत्पत्ति संसरण करनेसे उसका नाम संवर हुआ है। ... ने सो ही कहा है। जैसे आस्रव उत्पत्ति का हेतु, एवं ... ने इसप्रकार भी भाषा किया है। अन्य प्रकारभी इसका ॥

तपःप्रभृतिभिर्निर्जरणं निर्जराख्यं तत्त्वं
...कलापं पुण्यं सुखदुःखे च देहेन जन्यनि
...नादिकं तप उच्यते॥ ६२॥

अर्जित अर्थात् सञ्चित कर्म्मका तप प्रभृतिद्वारा निर्जरण अर्थात् क्षय करनेका नाम निर्जरा नामका तत्त्व है । जिसके द्वारा बहुत दिनोंका सञ्चित कषाय, कलाप, पुण्य, सुख और दुःख देहके साथ जरित अर्थात् विनाशित होता है, उसको तप कहते हैं । केशलुञ्चनादि इस तपका स्वरूप है ॥ ६२ ॥

सा निर्जरा द्विविधा यथा कालोपक्रमिकभेदात् । तत्र प्रथमा यस्मिन् काले यत् कर्म फलप्रदत्वेनाभिमतं तस्मिन्नेव काले फलदानाद्भवन्ती निर्जरा कामादिपाकजेति च जेगीयते । यत् कर्म तपोबलात् स्वकामनयोदयावलिं प्रवेश्य प्रपद्यते तत् कर्म निर्जरा ॥ ६३ ॥

यह निर्जराके दो प्रकार हैं । काल निर्जरा और औपक्रमिक निर्जरा । उनमे जिस कालमें जो कर्म्म फलप्रद करके अभिमत है, उसी कालमें फलदान करता है, इस हेतु काल निर्जरा हो जाता है । इस काल निर्जराको कामादि पाकजा भी कहते है । जो कर्म्म तपोबलसे कर्त्ताके स्वीय कामनासे उदय परम्परा लाभकर प्रतिपन्न होता है, उसका नाम कर्म्म निर्ज्जरा है ॥ ६२ ॥

यदाह--

संसारबीजभूतानां कर्मणां जरणादिह ।
निर्जरा संस्मृता द्वेधा सकामा कामनिर्जरा ।
स्मृता सकामा यमिनामकामा त्वन्यदेहिनामिति ॥ ६४ ॥

उसी प्रकारकी कहा है जो, संसारके बीजभूत कर्म्म सबका जरण अर्थात् क्षय करते है इससे निर्ज्जरा नाम हुआ है । यह दो प्रकारका है, सकामा और निर्ज्जरा है । उनमें यमी आदि पक्षमें सकामा और अन्य देही आदिके पक्षमें अकामा प्रशस्त है ॥ ६४ ॥

मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतूनां निरोधः अभिनवकर्माभावात्, निर्जराहेतुसन्निधानेनार्जितस्य कर्मणो निरसनादात्यन्तिककर्म्ममोक्षणं मोक्षः, बन्धहेतुभवहेतुनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षणं मोक्ष इति तदनन्तरमूर्द्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् यथा हस्तदण्डादिभ्रमिप्रेरितं कुलालचक्रमुपरतेऽपि तस्मिन् तद्बलादेवासंस्कारक्षयं भ्रमति तथा भवस्थेनात्मना अपवर्गप्राप्तये बहुशो

यत् कृतं प्रणिधानं मुक्तस्य तदभावेऽपि पूर्वसंस्कारादालोकान्तं गमनमुपपद्यते यथा वा मृत्तिकालेपकृतमलाबुद्रव्यं जलेऽधः पतति पुनरपेतमृत्तिकाबन्धमूर्ध्वं गच्छति तथा कर्मरहित आत्मा असङ्गत्वादूर्ध्वं गच्छति । बन्धच्छेदादेरण्डबीजवच्चोर्ध्वगतिस्वभावाच्चाग्निशिखावत् ॥ ६५ ॥

उल्लिखित मिथ्या दर्शनादि जो सब बन्धके कारण कहकर परिगणित हैं, उनके निरोधका नाम मोक्ष है, अथवा अभिनव कर्म्मके अभाव एवं निर्ज्जरा हेतुके सन्निधान द्वारा अर्जित कर्म्मका निरसन इसी दोनों प्रकारके उपायोंसे आत्यन्तिक अर्थात् एकही वारमें जिस कर्म्मका मोक्षण अर्थात् परिहार संघटित होता है, उसको मोक्ष कहते हैं, अथवा बन्धका कारण एवं उत्पत्तिका हेतु-यही दो प्रकारका निर्ज्जरा सहायसे कर्म्मका निःशेष वर्ज्जनका नाम मोक्ष है । जैसेः—इस मोक्षके पीछे आलोकनामे ऊपर गमन होता है जैसेः—हाथ दण्डादि द्वारा भ्रमण कराकर चला देनेसे कुम्भकारके चक्र उसकी निवृत्तिमें भी उसके प्रभावसे जबतक वेगका क्षय नहीं होता, तबतक भ्रमण रखता है, इसी प्रकार भवस्थ आत्मा द्वारा अपवर्गप्राप्तिके लिये वारम्वार जो प्रणिधान समाहित होता है, मुक्तावस्थामें उसके अभाव होनेपरभी पूर्वसंस्कारबलसे आलोकान्त गमन उपपन्न होता है । अथवा जैसे, मिट्टीसे लिपा हुआ अलाबू (तुम्बी) जलमें डूबता है मृत्तिका लेप छुड़ा देनेसे, फिर तुम्बी जलपर उपर होजाती है, इसी प्रकार कर्म्मरहित असङ्गत्वतः उपर होजाता है एरण्ड बीज और अग्निकी शिखा इनका जिस प्रकार ऊर्ध्व गमन करना स्वभाव है, आत्मा भी उसी प्रकार स्वभावतः ऊर्ध्वगमन शील है, इसी कारण बन्धके उच्छेदहोनेसे, जो अविभाग रूपसे अवस्थान घटता है, उसकी इस प्रकार ऊर्ध्वगति होती है ॥ ६५ ॥

अन्योन्यं प्रदेशानुप्रवेशे सत्यविभागेनावस्थानं बन्धः परस्परप्राप्तिमात्रं सङ्गः । तदुक्तं पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामाच्चाविरुद्धं कुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति ॥ ६६ ॥

अतएव पठन्ति--

गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्य्यादयो ग्रहाः ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते त्वालोकाकाशमागता इति ॥ ६७ ॥

इसी कारण निर्देश किया है कि, चन्द्र सूर्य्यादि ग्रहगण बारम्बार गमनकर निवृत्त होते हैं किन्तु जिनने आलोकाकाशसे गमन किया है, वे अबतक नही वापस आए हैं ॥ ६७॥

अन्ये तु गतसमस्तक्लेशतद्वासनस्यानावरणज्ञानस्य सुखैकतानस्यात्मन उपरिदेशावस्थानं मुक्तिरित्यास्थिषत । एवमुक्तानि सुखदुःखसाधनाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितानि नवपदार्थान् केचनाङ्गीचक्रुः । तदुक्तं सिद्धान्ते, जीवाजीवौ पुण्यपापयुतावास्रवः संवरो निर्जरणं बन्धो मोक्षश्च नव तत्त्वानीति । सङ्ग्रहे प्रवृत्ता वयमुपरताः स्म ॥ ६८ ॥

अन्यान्य लोगोने कहा है, समस्त क्लेशहीन, सम्पूर्ण वासना विहीन और अनावरण ज्ञान सम्पन्न होनेपर आत्मा सुखमात्रकी प्राप्तिमें मुक्ति भावापन्न हुआ है । जो ऊपरको रहता है । उसका नाम मुक्ति है । इस प्रकार कोई २ सुख और दुःखका साधनस्वरूप पुण्य पाप सहित नव ९ पदार्थोंको मानते हैं । सिद्धान्तमें उसको कहा है । जैसे जीव और अजीव पुण्य, पाप, आस्रव, सम्वर, निर्जरण, बन्ध, मोक्ष, येही नव ९ तत्त्व हैं । हम लोग संग्रहमें प्रवृत्त हैं, सुतरां इसी स्थानमें निवृत्त हुए ॥ ६८ ॥

अत्र सर्वत्र सप्तभङ्गिनयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैनाः स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्ति च नास्ति च स्यादवक्तव्यः स्यादस्ति चावक्तव्यः स्यान्नास्ति चावक्तव्यः स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति ॥ ६९ ॥

जैन लोग सर्वत्र सप्तभङ्गि नय नामक न्यायकी अवतारणा करते हैं । जैसे, स्यादस्ति, किसप्रकार है; स्यान्नास्ति, अर्थात् किसप्रकार नही है । स्यादस्ति नास्ति च, अर्थात् किस प्रकार है और नहीं । स्यादस्ति चावक्तव्य, अर्थात् किस प्रकार है, सो नही कहा जाता स्यान्नास्तिचावक्तव्य, अर्थात् किसप्रकार नही सोभी नही कहा जाता । स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य अर्थात् किस प्रकार है और नहीं कहा नही जाता येही सप्त भङ्गिनय नामक न्याय है ॥ ६९ ॥

तत्सर्वमनन्तवीर्य्यः प्रत्यपीपदत् । तद्विधानविवक्षायां स्यादस्तीति गतिर्भवेत् । स्यान्नास्तीति प्रयोगः स्यात्तन्निषेधे विवक्षिते ॥ ७० ॥

अनन्तवीर्य्यने इन सबको इस प्रकार प्रतिपादन किया है. जो जहां विधान विवक्षित होता है, वही प्रथम न्यायकी अवतारणा होती है; जिस स्थानमें इस प्रथम न्यायका निषेध विवक्षित हो. उस स्थानमे द्वितीय न्यायका प्रयोग होता है ॥ ७० ॥

क्रमेणोभयवाञ्छायां प्रयोगः समुदायभाक् । युगपत्तद्विवक्षायां स्यादवाच्यमशक्तितः ॥ ७१ ॥

यथाक्रमसे दोनों वासनाओंकी एक साथ विवक्षा होनेपर समुदायका प्रयोग किया जाता है । जिस स्थानमे अशक्ति अर्थात् इस प्रकार प्रयोग नहीं किया जासके, उसी स्थानमें अवाच्य होजाता है ॥ ७१ ॥

आद्यावाच्यविवक्षायां पञ्चमो भङ्ग इष्यते । अन्त्यावाच्यविवक्षायां षष्ठभङ्गसमुद्भवः ॥ समुच्चयेन युक्तश्च सप्तमो भङ्ग उच्यत इति ॥ ७२ ॥

प्रथमन्यायकी अवाच्य विवक्षा होनेपर पञ्चमन्यायका प्रयोग विहित होता है । अन्त्यकी अवाच्य विवक्षा होनेपर षष्ठ न्यायका समुद्भाव होजाता है । और एक ही वार सबका प्रयोग होनेपर सप्तमन्याय कहा जाता है ॥ ७२ ॥

स्याच्छब्दः खल्वयं निपातः तिङन्तप्रतिरूपकोऽनेकान्तद्योतकः । यथोक्तम्—वाक्येष्वनेकान्तद्योतिगम्यं प्रति विशेषणम् । स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तिङन्तप्रतिरूपक इति ॥ ७३ ॥

यहां स्यात शब्द निश्चय अव्यय है तिङन्तके प्रतिरूपक प्रयोजित हुआ है । जिस कारण यह अनेकान्तका प्रकाशक है । प्रमाण जैसेः—वाक्यमें प्रयोजित अव्यय शब्द प्रतिविशेषणसे अतीव विस्तरपसे अनेकान्तका द्योतक होनेपर अर्थयोगवशतः, तिङन्तका प्रतिरूपक हो जाता है ॥ ७३ ॥

यदि पुनरेकान्तद्योतकः स्याच्छब्दोऽयं स्यात्तदा स्यादस्तीति वाक्ये स्यात्पदमनर्थकं स्यात् । अनेकान्तद्योतकत्वे तु स्यादस्ति कथञ्चिदस्तीति स्यात पदात् कथञ्चिदिति अयमर्थो लभ्यत इति नानर्थक्यम् ॥ ७४ ॥

फलतः (स्यात्) इसपदसे कथञ्चित् इस प्रकार अर्थही लब्ध होता है । इसका कथन अनर्थक नहीं होता ॥ ७४ ॥

तदाह–स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किं वृत तद्विधे ।
सप्तभङ्गिनयापेक्षो हेयादेयविशेषकादिति ॥ ७५ ॥

प्रमाण यथा, जिस स्थानमें सर्वतोभावसे एकान्तका त्याग होता है, उसी स्थानमें स्याद्वाद प्रयोजित होता है । यह स्याद्वाद सप्तभङ्गिनयापेक्ष एवं हेय और उपादेय, इन दोनोंका पार्थक्य करदेताहै ॥ ७५ ॥

यदि वस्त्वस्त्येकान्ततः सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सर्वात्मनास्तीति न उपादित्साजिहासाभ्यां क्वचित् कदा केनचित् प्रवर्त्तेत निवर्त्तेत वा प्राप्तप्रापणीयत्वहेयज्ञानानुपपत्तेश्च । अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चित् क्वचित् केनचित् सत्वेन हानोपादाने प्रेक्षावतामुपपद्येते । किञ्च वस्तुनः सत्वं स्वभावः असत्वं वेत्यादि प्रष्टव्यं न तावदस्तितत्वं वस्तुनः स्वभाव इति समस्ति घटोऽस्तीत्यनयोः पर्य्यायतया युगपत् प्रयोगायोगात् नास्तीति प्रयोगविरोधाच्च । एवमन्यत्रापि योज्यम् ॥ ७६ ॥

यदि वस्तु एकान्तही रहती है, तो सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सब अवयवमें रहताहै परिग्रह और परिहार इन दोनोंकी इच्छा क्रमसे कही कभी किसी द्वारा प्रवर्त्तित किया या पुनः निवर्त्तित नहीं होसकता । क्योंकि प्राप्त प्रापणीयत्व, हेय, और हान इन सबकी अनुपपत्ति होजाती है । अनेकान्त पक्षमें किसी प्रकार कही किसीसे किया परिग्रह और प्रत्याख्यान उपपादित होनेकी सम्भावना । पुनः यदि जिज्ञासा किया जावे जो सत्त्व किम्वा असत्त्व वस्तुका स्वभाव है ? इसके उत्तरमें कहा जा सकता है जो अस्तित्व वस्तुका स्वभाव नहीं । क्योंकि, है और घट है; इन दोनोका पर्य्याय विशिष्ट युगपत इनका प्रयोग नहीं हो सकता । विशेषतः नास्ति अर्थात् नहीं, इस प्रकार प्रयोगके साथ विरोध पड़ता है । इस प्रकार अन्यत्र भी योजना किया जासकताहै ॥ ७६ ॥

यथोक्तम्–
घटोऽस्तीति न वक्तव्यं सन्नेव हि यतो घटः ।
नास्तीत्यपि न वक्तव्यं विरोधात् सदसत्त्वयोरित्यादि ॥ ७७ ॥

इस कारण कहा है, घट है, नही कह सकते. कारण यह है जो, घटही सत् स्वरूप है, और नही भी कह नही यह सकते । क्योंकि, नही कहनेसे, असत्व और असत्वका विरोध घटता है । अर्थात् एक वस्तु है, और नही, कभी भी इस प्रकार नही होसकता॥७७॥

तस्मादित्थं वक्तव्यं सदसत्सदसदनिर्वचनीयवादभेदेन प्रतिवादिनश्चतुर्विधाः। पुनरप्यनिर्वचनीयमतेनामिश्रितानि सदसदादिमतानीति त्रिविधाः। तान् प्रति किं वस्त्वस्तीत्यादिपर्य्यनुयोगे कथञ्चिदस्तीत्यादिप्रतिवचनसम्भवेन ते वादिनः सर्वे निर्विण्णाः सन्तः तूष्णीमासत इति सम्पूर्णार्थविनिश्चायिनः स्याद्वादमङ्गीकुर्वतस्तत्र तत्र विजय इति सर्वमुपपन्नम् ॥ ७८ ॥

इस कारण इस प्रकार कहा जा सकता है; सत, असत, सदसत् और अनिर्वचनीय मतभेदसे प्रतिवादी ४ प्रकारका है । पुनः अनिर्वचनीय मत छोड़ देनेपर, सत्, असत् और सदसत् तीन प्रकारका होता है । इन सबको यदि पूछो कि, वस्तु है क्या ? तो कथञ्चित् है, इत्यादि प्रतिवचन सम्भावनामें वे सब निर्विण्ण हो कर चुप रहजाते है । इस प्रकार स्याद्वाद स्वीकार करने पर, सम्पूर्ण रूपसे अर्थ निर्णीत और उसका निबन्धन सर्वत्रही जयलाभ होता है । यह सर्वतो भावसे सिद्ध है ॥ ७८ ॥

यदवोचदाचार्य्यः स्याद्वादमञ्जर्य्याम्—
अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम् ।
एकदेशविशिष्टोऽर्थो न यस्य विषयो मतः ॥ ७९ ॥
न्यायानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तौ श्रुतवर्त्मनि ।
सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वस्तु श्रुतमुच्यत इति ॥ ८० ॥

अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्
यथापरे मत्सरिणः प्रवादाः ।
नयानशेषानविशेषमिच्छ-
न्न पक्षपाती समयस्तथार्हत इति ॥ ८१ ॥

परस्परके पक्ष और प्रतिपक्ष भाव उपस्थित होनेपर, अपर लोग जिस प्रकार मात्सर्य प्रकाश करते हैं, अर्हत् उस प्रकार कुछभी नही करते । ये अपक्षपाती, सबमतोके परस्पर विरोध दूर करनेके लिये इनका परिश्रम है ॥ ८१ ॥

जिनदत्तसूरिणा जैनं मतमित्थमुक्तम् ।
बलभोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः ।
अन्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञानं जुगुप्सितम् ॥ ८२ ॥

जिनदत्त सूरिने जैन मतपर इस प्रकार व्याख्या किये है । जैसे बल भोग उपभोग एवं दान और लाभ इन सबका अन्तरायभूत निद्रा, भय, अज्ञान, और जुगुप्सित ॥ ८२ ॥

हिंसा रत्यरती रागद्वेषौ रतिरति स्मरः ॥
शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादश दोषा नयस्य च ॥ ८३ ॥

हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, अति रति, स्मर, शोक और मिथ्या येही १८ नय दोष हैं ॥ ८३ ॥

जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः ॥
ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपवर्गस्य वर्तिनि ॥ ८४ ॥

जिनदेवही गुरु और सम्यक् सत्तत्त्वज्ञानोपदेष्टा । ज्ञान दर्शन, और चारित्रयही मोक्षका प्रकाशक है ॥ ८४ ॥

स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च ॥
नित्यानित्यात्मकं सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा ॥ ८५ ॥

स्याद्वादके दो प्रमाण हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान । सबही वस्तु नित्यानित्यात्मक, तत्त्व या सात हैं ॥ ८५ ॥

जीवाजीवौ पुण्यपापे चास्रवः संवरोऽपि च ॥
बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याधुनोच्यते ॥ ८६ ॥

इन सबका नाम जैसे:-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव संवर, बन्ध, निर्जरण, और मुक्ति । अधुना इनकी व्याख्या किये जाती है ॥ ८६ ॥

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः ॥
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्य्ययः ॥ ८७ ॥

जीवका स्वरूप चेतना । अजीव उसके विरुद्ध धर्मयुक्त हो । सत्कर्म पुद्गलका नाम । पाप उसके विपरीत है ॥ ८७ ॥

आस्रवः कर्मणां बन्धो निर्जरस्तद्वियोजनम् ।
अष्टकर्मक्षयान्मोक्षोऽथान्तर्भावश्च कैश्चन ।
पुण्यस्य संस्रवे पापस्यास्रवे क्रियते पुनः ॥ ८८ ॥

आस्रव शब्दसे कर्म्मबन्ध । निर्जर शब्दसे उसका वियोजन । आठ कर्म्मके क्षय होनेसे मोक्ष होता है कोई २ इसको अन्तर्भाव कहते है । पुण्य संस्रवसे और पापके अस्रवसे अर्थात् विनाशसे मोक्ष विहित होता है ॥ ८८ ॥

लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकागूढस्य चात्मनः ।
क्षीणाष्टकर्मणो मुक्तिर्निर्व्यावृत्तिर्जिनोदिता ॥ ८९ ॥

आत्मा अनन्त चतुष्कलाभ करके आठ प्रकारके कर्म्मके नाश योग प्राप्त होनेपर उसकी मुक्ति घटती है । जिनके मतसे इसका नाम निर्व्यावृत्ति अर्थात् इस प्रकार मुक्तिलाभ होनेपर और उसको कभी संसारमें फिर नहीं आना होगा ॥ ८९ ॥

सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः ।
श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसङ्गा जैनसाधवः ॥ ९० ॥

जैन साधुगण भिक्षाद्वारा जीविका निर्वाह करते हैं माथ मुंडवाने, श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, क्षमाशील और सर्वथा निर्लिप्त होते हैं ॥ ९० ॥

लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः ।
ऊर्द्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः ॥ ९१ ॥

द्वितीय प्रकार जैनसाधु हैं । इनका नाम जिनर्षि है, ये लोग माथ मुंडवाये, पिच्छिका हस्त, पाणिपात्र, दिगम्बर एव ये लोग दाताके घरभी भोजन नहीं करते हैं ॥ ९१ ॥

भुङ्क्ते न केवलं न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः ।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह ॥ ९२ ॥
इति सर्वदर्शनसंग्रहे आर्हतदर्शनम् ॥ ३ ॥

अथ रामानुजदर्शनम् ॥ ४ ॥

तदेतदार्हतमतं प्रामाणिकगर्हणमर्हति न ह्येकस्मिन् वस्तुनि परमार्थे सति परमार्थसतां युगपत् सदसत्त्वादिधर्माणां समावेशः सम्भवति न च सदसत्त्वयोः परस्परविरुद्धयोः समुच्चयासम्भवे विकल्पः किं न स्यादिति वदितव्यं क्रिया हि विकल्प्यते न वस्त्विति न्यायात् ॥ १ ॥

आर्हतने जो कहा है उसका सर्व्वथा प्रमाणद्वारा खण्डन होसकता है। जो परमार्थ सत् तादृश एक वस्तुमें परमार्थ सत् सदसत्वादि धर्म्म सबका युगपत् समावेश सम्भव नहीं हो सकता, सूर्य्यमें आलोक है, और अन्धकार है, यह कभी नही कहा जा सकता अथवा घट है, और एकही साथ नही है ऐसा कहना भी सङ्गत नहीं होसकता। यदि कहो सत्त्व और असत्त्व परस्पर विरुद्ध, सुतरां उनका समुच्चय अर्थात् एकतः असम्भव है, किन्तु विकल्पमें इस प्रकार एकता होना असम्भव क्या ? ऐसा नही कह सकते क्योंकि क्रियाहीका विकल्प होता है। वस्तुका कभी नहीं होता। ऐसा न्यायप्रसिद्ध है ॥ १ ॥

न चानेकान्तं जगत् सर्वं हेरम्बनरसिंहवदिति दृष्टान्तावष्टम्भवशाद्वेष्टव्यम् एकस्मिन् देशे गजत्वं सिंहत्वं वा अपरस्मिन् नरत्वमिति देशभेदेन विरोधाभावेन तस्यैकस्मिन् देश एव सत्त्वासत्त्वादिना अनेकान्तत्वाभिधाने दृष्टान्तानुपपत्तेः। ननु द्रव्यात्मना सत्त्वं पर्य्यायात्मना तदभाव इत्युभयमप्युपपन्नमिति चेन्मैवं कालभेदेन हि कस्यचित् सत्त्वमसत्त्वञ्च स्वभाव इति न कश्चिद्दोषः ॥ २ ॥

हेरम्ब और नरसिंहके तुल्य इत्यादि दृष्टान्तका आश्रयवशात् जगत्को अनेकान्त नहीं कह सकते हो। एकदेशमें गजत्व और सिंहत्व एवं अपर देशमें नरत्व इस प्रकार देश भेदसे विरोधके अभाववशतः किस प्रकार विरोध उपस्थित नहीं होसकता। किन्तु ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं जिसके द्वारा एकही देशमें सत्त्व और असत्त्वद्वारा संसारको इस प्रकार अनेकान्त कहा जासकता। इसका भावार्थ नरसिंहने यही कहा है यही ज्ञात पड़ता है, शरीरके ऊर्ध्वभाग सिंहकी नाईं एवं परभाग मनुष्यकी नाईं है इसमें देशभेद कहा गया इसी कारण कोई विरोध नहीं हुआ। एक देशमें कहनेपर विरोध होता, किन्तु भगवान्‌ने

पक्षमे सो नही है। एक देश कहागया है इस कारण विरोध हुआ। यदि कहो, वस्तु द्रव्यरूपसे है एवं संज्ञारूपसे नही इस स्थानमें सत्व और असत्व दोनोंही उत्पन्न हुए। ऐसाभी नही कह सकते हो। क्योंकि. कालभेदहोसे कोई वस्तु सत्व और असत्व स्वभाव, ऐसा कहनेसे दोष नहीं होसकता फलतः कालहीमें वस्तुका सत्व और असत्व (रहना और नही रहना) होताहै, स्थान वा नामसे नहीं ॥ २ ॥

न चैकस्य ह्रस्वत्वदीर्घत्ववदनेकान्तत्वं जगतः स्यादिति वाच्यं प्रतियोगिभेदेन विरोधाभावात्। तस्मात् प्रमाणाभावात् युगपत् सत्त्वासत्त्वे परस्परविरुद्धे नैकस्मिन् वस्तुनि वस्तुयुक्ते। एवमन्यासामपि भङ्गीनां भङ्गोऽवगन्तव्यः ॥ ३ ॥

और एकव्यक्तिके ह्रस्वत्व और दीर्घत्वकी नाई जगत्को अनेकान्त नही कहसकते। क्योंकिः इसमें प्रतियोगि भेदसे विरोधका अभाव भाता है। इसका भावार्थ यह है, ह्रस्वत्वके कहनेसे ह्रस्वत्वका अभाव नही होता; उसके दीर्घत्वका अभाव होता है। फलतः जो व्यक्ति ह्रस्व है उसको दीर्घभी कभी नही कह सकते। ऐसे प्रमाणके अभावसे सत्व और असत्व परस्पर विरुद्ध बहकर युगपत् एकवस्तुमें नही रहसकता। इस प्रकार अन्यान्य भङ्गि सबका भी भङ्ग अर्थात् खण्डन होता है जानना ॥ ३ ॥

किञ्च सर्वस्यास्य मूलभूतः सप्तभङ्गिनयः स्वयमेकान्तः अनेकान्तो वा। आद्ये सर्वमनेकान्तमिति प्रतिज्ञाव्याघातः। द्वितीये विवक्षितार्थासिद्धिः। अनेकान्तत्वेनासाधकत्वात्। तथा चैयमुभयतःपाशरज्जुः स्याद्वादिनः स्यात ॥ ४ ॥

अपि च नवत्वनतत्वादिनिर्द्धारणस्य फलस्य तन्निर्द्धारयितुः प्रमातुश्च तत्करणस्य प्रमाणस्य प्रमेयस्य नवत्वादेरनियमे नाऽऽसमर्थितमाप्तमतस्तीर्थकरत्वं देवानां प्रियेणार्हतमतप्रवर्त्तकेन। तथा जीवस्य देहानुरूपपरिमाणत्वाङ्गीकारे योगबलादनेकपरि-

आहृकयोगिजीवेषु प्रतिशरीरं जीवविच्छेदः प्रसज्येत, मनुजशरीरपरिमाणो जीवो मतङ्गजदेहं कृत्स्नं प्रवेष्टुं न प्रभवेत् ॥ ५॥

और एकवार नवतत्व और पुनः सात तत्व कहे गये हैं । सुतरां उसका निर्धारण फलका जैसा किसी प्रकार नियम नहीं उसी प्रकार उसका निर्धारण कर्ता प्रमाता, उसका करण प्रमाण और प्रमेय नवतत्वादिकीभी किसी प्रकार स्थिरता नहीं । सुतरां देवगणका प्रिय आर्हतमत प्रवर्त्तक अपनातीर्थंकरत्व वेशही समर्थित किया है । आर्हत मतमें लिखा है जो, देहके परिमाणानुसार जीवका परिमाण होता है । इसको माननेसे योगबलसे योगी जीव जब अनेक शरीर ग्रहण करते हैं, तब उसके प्रति शरीरके अनुसार जीव विच्छेद प्रसंक्तिकी सम्भावना घटती है । क्योंकि, मनुष्य शरीर परिमित जीव हाथीके शरीरमे सर्व्वतो भावसे प्रवेश नहीं करसकताहै ॥ ५ ॥

किञ्च गजादिशरीरं परित्यज्य पिपीलिकाशरीरं विशतः प्राचीनशरीरसन्निवेशविनाशोऽपि प्राप्नुयात् । न च यथा प्रदीपप्रभाविशेषः प्रपाप्रासादाद्युदरवर्त्तिसङ्कोचविकाशवान् तथा जीवोऽपि मनुजमतङ्गजादिशरीरेषु स्यादित्येषितव्यं प्रदीपवदेव सविकारत्वेनानित्यत्वप्राप्तौ कृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् ॥ ६ ॥

और हस्ती आदि शरीर छोडकर पिपीलिकाके शरीरमें प्रवेश करते समय पूर्वशरीर सन्निवेशका विनाश होसक्ता है । यहां ऐसी सम्भावना नहीं करना, जो, प्रदीप प्रभा विशेष जैसे प्रपा और प्रासाद आदि अभ्यन्तरवर्त्ती होनेपर, उस परिमाणसे यथाक्रमसे संकोच और विकाश दोनोंही प्राप्त होता है । मनुष्य और हस्ती प्रभृति शरीरमें प्रवेश समय जीवकाभी उसी प्रकार संकोच विकाश संघटित होजाताहै । ऐसा होनेसे प्रदीपकी नाई विकारी पदार्थ कहकर जीवका अनित्यत्व दोषोत्पत्ति होती है । एवं अनित्यत्व होनेसे, कृतप्रणाश और अकृताभ्यागम ये दो प्रकारके दोषभी उपस्थित होते हैं । जीव किन्तु अनित्य और विकारी नहीं है ॥ ६ ॥

एवं प्रधानमल्लनिबर्हणन्यायेन जीवपदार्थदूषणाभिधानदिशान्यत्रापि दूषणमुत्प्रेक्षणीयम् । तस्मान्नित्यानिर्दोषश्रुतिविरुद्धत्वादिदमुपादेयं न भवति । तदुक्तं भगवता व्यासेन—नैकस्मिन्नसम्भवादिति । रामानुजेन च जैनमतनिराकरणपरत्वेन तदिदं सूत्रं व्याकारि । एष हि तस्य सिद्धान्तः चिदचिदीश्वरभेदेन भोक्तृभोग्यनियामकभेदेन व्यवस्थितास्त्रयः पदार्था इति ॥ ७ ॥

इसी प्रकार, जैसे प्रधान मल्लकी पराजय होनेसे अन्यान्य मल्लकी भी पराजय सम्भावना कियी जाती है, उसी प्रकार आर्हत मतके प्रधान अङ्गभूत जीव पदार्थ जब सर्व्वथा दोषयुक्त और भ्रमपूर्ण सिद्ध होता है, तब अन्यत्र भी इसी प्रकार दोष और भ्रम प्रतिपन्न होसकता है, इसी कारण यह आर्हतमत नित्य-निर्दोष-वेद-विरुद्ध कहा जाता, और कदापि ग्रहण नहीं किया जासकता । भगवान् व्यास देवने भी कहा है जो, एक पदार्थमें सम्भव नहीं हो सकता । रामानुजने जैन मतके खण्डन विषयमें इसी सूत्रकी व्याख्या कियी है । यही उनका सिद्धान्त है, जो. चित् अचित् और ईश्वरभेदसे भोक्ता. भोग और नियामक भेद संघटित होता है । तदनुसार पदार्थ तीन प्रकारका होता है ॥ ७ ॥

तदुक्तम्—

ईश्वरश्चिदचिच्चेति पदार्थत्रितयं हरिः ।
ईश्वरश्चित इत्युक्तो जीवो दृश्यमचित् पुनरिति ॥ ८ ॥

प्रमाण, जैसे, भगवान् हरि ही ईश्वर, चित् और अचित् भेदसे तीन पदार्थ है । उनमें ईश्वर और जीवको चित् पदार्थ कहते हैं । और परिदृश्यमान संसार ही अचित पदार्थ है ॥ ८ ॥

अपरे पुनरशेषविशेषप्रत्यनीकं चिन्मात्रं ब्रह्मैव परमार्थः । तच्च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावमपि तत्त्वमस्यादिसामानाधिकरण्याधिगतजीवैक्यं बध्यते मुच्यते च । तदतिरिक्तनानाविधभोक्तृभोक्तव्यादिभेदप्रपञ्चः सर्वोऽपि तस्मिन्नविद्यया परिकल्पितः सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमित्यादिवचननिचयप्रामाण्यादिति ब्रुवाणास्तरति शोकमात्मविदित्यादिश्रुतिशिरःशतवशेन निर्विशेषब्रह्मात्मैकत्वविद्यया अनाद्यविद्यानिवृत्तिमङ्गीकुर्वाणाः मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यतीति भेदनिन्दाश्रवणेन पारमार्थिकं भेदं निराचक्षाणाः विचक्षणंमन्यास्तमिमं विभागं न सहन्ते ॥ ९ ॥

से जो विविध भेद विस्तारित हुआ है, सब ही अविद्या बलसे परिकल्पित हुए हैं । वे लोग कहते हैं जो, वही सत् स्वरूप, वही आगे थे, वही एक और अद्वितीय, इत्यादि वचन निश्चयसे उक्त अभेद प्रमाणित होता है । वे लोग और भी कहते हैं जो, आत्मवित् व्यक्ति शोकसे उत्तीर्ण होता है, इत्यादि सैंकडों उपनिषद्के वचनानुसार निर्विशेष ब्रह्मात्मैकत्वविद्या द्वारा यह अनादि अविद्याकी निवृत्ति होती है । पुनः जो लोग नानात्व दर्शन करते हैं, वे मृत्युसे भी मृत्युको प्राप्त होते हैं, इत्यादि विधान क्रमसे जो भेद निन्दा सुनी जाती है, तदनुसार वे लोग पारमार्थिक भेदका खण्डन करते हैं । इत्यादि कारणोंसे वे विचक्षणत्वाभिमानी पुरुष लोग उपरि लिखित ईश्वर, चित् और अचित इस प्रकार भेदसे तीन प्रकारका विभाग मानते हैं ॥ ९ ॥

तत्रायं समाधिरभिधीयते भवेदेतदेवं यद्यविद्यायां प्रमाणं विद्येत न च वमनादिभावरूपं ज्ञाननिवर्त्यमज्ञानमहमज्ञो मामन्यञ्च न जानामीति प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धम् ॥ १० ॥

इस विषयका इसप्रकार समाधान वा मीमांसा होसकती है जो, यदि अभावरूप अविद्या प्रमाण है । तो इसप्रकार अभेदकी कल्पना होसकती है, किन्तु सो नहीं । क्योंकि अनादि भावस्वरूप अज्ञान ज्ञानद्वारा ही निवृत्त होता है । मैं अज्ञ, अपनेको या अन्यको जानता नहीं इसप्रकार अज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध ही होता है ॥ १० ॥

तदुक्तम्—

अनादिभावरूपं यद्विज्ञानेन विलीयते ।
तदज्ञानमिति प्राज्ञा लक्षणं संप्रचक्षत इति ॥ ११ ॥

शास्त्रान्तरमें ज्ञानके उदय होनेपर, जो अनादि भाव स्वरूप वस्तुका विनाश होता है, उसका नाम अज्ञान, अज्ञानका इसीप्रकार लक्षण कहा गया है ॥ ११ ॥

न चैतत् ज्ञानाभावविषयमित्याशङ्कनीयं, को हि कं ब्रूयात प्रभाकरकरावलम्बी भट्टदत्तहस्तो वा नाद्यः ।

स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।
वस्तुनि ज्ञायते किञ्चित कैश्चिद्रूपं कदाचनेति ॥ १२ ॥

ऐसी आशङ्का नहीं करसकते यह ज्ञानके अभाववस्तुको बुझाता है; क्योंकि, कौन किसे कहेगा ? जो लोग प्रभाकरके मतावलम्बी हैं, वे कहेंगे कि नहीं, भट्टदत्तके मतावलम्बी लोक कहेंगे ? इनमेंसे आद्य (प्रभाकरमतावलम्बी) कभी नहीं । क्योंकि, स्वरूप और पररूपद्वारा नित्य सदसदात्मक वस्तुमें किसप्रकार कुछ कभी जाना जा सकता है ॥ १२ ॥

भावान्तरमभावो हि कयाचित् तु व्यपेक्षया ।
भावान्तरमभावोऽन्यो न कश्चिदनिरूपणात् ॥ १३ ॥

क्योंकि किसी प्रकार विधानसे अभाव पदार्थ भाव पदार्थके ही अन्तर्भूत है । क्योंकि अभावपदार्थ भावपदार्थसे भिन्न अन्य कौन वस्तुस्वरूप हैं, यह निरूपणही नही किया जासकता ॥ १३ ॥

इति वदता भावव्यतिरिक्तस्याभावस्यानभ्युपगमात् । अभावस्य षष्ठप्रमाणगोचरत्वेन ज्ञानस्य नित्यानुमेयत्वेन च तदभावस्य प्रत्यक्षविषयत्वानुपपत्तेः । यदि पुनः प्रत्यक्षाभाववादी कश्चिदेवमाचक्षीत तं प्रत्याचक्षीत अहमज्ञ इत्यस्मिन्ननुभवे अहमित्यात्मनोऽभावधर्मितया ज्ञानस्य प्रतियोगितया चावगतिरस्ति न वा अस्ति चेद्विरोधादेव न ज्ञानाभावानुभवसम्भवः॥१४॥

इस प्रकार निर्देश करनेसे, अभाव पदार्थ जो भावपदार्थसे भिन्न, उसका अभ्युपगम (स्वीकार) ही नही हुआ । अभावपदार्थ छठे प्रमाणका गोचर और ज्ञान नित्यानुमेय है । इसीकारण उस अभावकी प्रत्यक्ष विषयता अनुपपन्न होती है । पर भी इस स्थानमें एक हेतु है । यदि कोई प्रत्यक्ष भाववादी यह नही कहे उसको कहसकतेहो, मैं अज्ञ हूँ, इस प्रकार अनुभाव स्थानमें मैं, यह आत्माका अभाव धर्म्मत्व घटता है । इसी कारण प्रतियोगिताकी अवगति होती है । या नही ? यदि अवगति होती है, इसप्रकार कहा जावे, तो विरोध वशात् ज्ञानको अभावका अनुभव सम्भव नही होता ॥ १४ ॥

नेद्धर्मिप्रतियोगिज्ञानसापेक्षो ज्ञानाभावानुभवः सुतरां न सम्भवति तस्याज्ञानस्य भावरूपत्वे प्रागुक्तदूषणाभावादयमभावो भावरूपाज्ञानगोचर एवाभ्युपगन्तव्य इति । तदेतन गगनरोमन्थायितं भावरूपस्याज्ञानस्य ज्ञानाभावसमानयोगक्षेमत्वात् ।

ज्ञानके अभावका अनुभव यदि धर्म्म प्रतियोगि ज्ञान सापेक्ष नहीं होता है। तो उसका अनुभव ही नहीं होसकता। और यह अज्ञान यदि अभावरूप न होकर भावरूप ही हो, तो पूर्वोक्त दूषणके अभाव हेतु इस अनुभवको भाव रूप और अज्ञान गोचर कहकर स्वीकार किया जासका। किन्तु भावरूप अज्ञानका ज्ञानाभाव समानयोगक्षेमत्व हेतु आकाश रोमन्था·यित्वकी नाई मिथ्यात्व ही हुआ। इस प्रकार विषयत्व और आश्रयत्व द्वारा ज्ञानकी व्यावर्त्त·कता हेतु व्यापक अर्थ सिद्ध हुआ या नहीं ? इस प्रकार जिज्ञासा होनेपर, यह प्रज्ञानस्वरूप ज्ञानसाध्य ऐसी प्रतिपत्ति (निश्चय) स्थिरताके परे, सिद्ध नहीं हुआ, ऐसी आशङ्का ही नहीं होसकती विशेष, असिद्ध होनेपर, व्यावर्त्तक आश्रयशून्य विषय शून्य अज्ञानका अनुभव ही नही होसकता ॥ १५ ॥

अथ विशदः स्वरूपावभास एवाज्ञानविरोधिना ज्ञानेनाभासित इति आश्रयविषयज्ञाने सत्यपि नाज्ञानानुभवविरोध इति हन्त तर्हि ज्ञानाभावेऽपि समानमेतत् अन्यत्राभिनिवेशात् । तस्मादुभयाभ्युपगतज्ञानाभाव एवाहमज्ञो मामन्यञ्च न जानामीत्यनुभवगोचर इत्यभ्युपगन्तव्यम् ॥ १६ ॥

परिस्फुट—स्वरूपाभासही अज्ञानविशिष्ट ज्ञानद्वारा आभासित होताहै, इस प्रकार आश्रय विज्ञान होनेसे, फिर अज्ञानानुभवका विरोध नही होता है, सुतरां अन्यत्राभिनिवेशहेतु ज्ञानाभावमेंही समानहीं हुआ अतएव उभयाभ्युपगत ज्ञानाभावही मैं अज्ञ, मुझे (अपनेको) और अन्यकोभी नहीं जानता, ऐसे अनुभवका विषय, यही अभ्युपगत (स्वीकार) हुआ ॥ १६ ॥

अस्तु तर्ह्यनुमानं विवादास्पदं प्रमाणाज्ञानं स्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकम् अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात् अन्धकारे प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभावादिति । तदपि न क्षोदक्षमम् अज्ञानेऽप्यनभिमताज्ञानान्तरसाधने अपसिद्धान्तापातात् तदसाधने अनैकान्तिकत्वात् दृष्टान्तस्य साधनविकलत्वाच्च न हि प्रदीपप्रभाया अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वं सम्भवति ज्ञानस्यैव प्रकाशकत्वात् सत्यपि प्रदीपे ज्ञानेन विषयप्रकाशसम्भवात् प्रदीपप्रभायास्तु चक्षुरिन्द्रियस्य ज्ञानं समुत्पादयतो विरोधिमन्तमसनिरसनद्वारेणोपकारकत्वमात्रमेवेत्यलमतिविस्तरेण ॥ १७ ॥

अतएव प्रमाणज्ञान अप्रकाशित अर्थका प्रकाशकत्व हेतु अन्धकारमें प्रथमोत्पन्न प्रदीप प्रभाकी नाई स्वप्रागभाव व्यतिरिक्त स्वविषयका आवरणभूत स्वसाध्य स्वदेशगत अन्य वस्तुपूर्वक होजानेसे अनुमान विवादास्पद हो ऐसा विचार योग्य नहीं होता । कारण यह है जो, ऐसा होनेपर अनभिमत ज्ञानान्तरका साधन होजानेसे अज्ञानमें अपसिद्धान्त आपत्तित होताहै एवं उस प्रकार ज्ञानान्तरके असाधनमें अनैकान्तिकत्व होता है । विशेषतः दृष्टान्त भी साधनहीन होता है । ज्ञानही प्रकाशक वस्तु यदि कहो, प्रदीप रहनेपर भी ज्ञानविषयको प्रकाश करता है, नही तो करता नहीं इसमें भी कोई हानि नहीं दीखती कारण, प्रदीपप्रभा, प्रकाशविरोधी अन्धकारके निरसनद्वारा ज्ञानोत्पादक दर्शनेन्द्रियका उपकारक होने मात्र है । इस सम्बन्धमें और अधिक विस्तारका प्रयोजन नहीं ॥ १७ ॥

प्रतिप्रयोगश्च विवादाध्यासितमज्ञानं न ज्ञानमात्रब्रह्माश्रितं अज्ञानत्वाच्छुक्तिकाद्यज्ञानवदिति । ननु शुक्तिकाद्यज्ञानस्याश्रयस्य प्रत्यगर्थस्य ज्ञानमात्रस्वभावत्वमेवेति चेन्मैवं शङ्किष्ठाः । अनुभूतिर्हि स्वसद्भावेनैव कस्यचिद्वस्तुनो व्यवहारानुगुणत्वापादकस्वभावा ज्ञानावगतिसङ्गतिविदाद्यपरनामा सकर्मकानुभवितुरात्मत्वं ज्ञानत्वमित्याश्रयणात् ॥ १८ ॥

विवादाध्यासित अज्ञान निजका अज्ञानत्वका हेतु शुक्तिकादि निष्ठ अज्ञानकी नाई ज्ञानमात्र ब्रह्माश्रित नहीं, इसप्रकार प्रतिप्रयोग किया जाता है । आश्रयभूत व्यापक शुक्तिकादि निष्ठ अज्ञान ज्ञानमात्र स्वभाव है या नहीं, ऐसी आशङ्का भी नहीं किये जाती । कारण यह है जो, अनुभूति स्वकीय सद्भाव द्वारा ही जिस किसी वस्तुकी व्यवहारानुकूलता सम्पादन करती है । इसप्रकार सम्पादन करना ही उसका स्वभाव है । उसका अपर नाम ज्ञान, अवगति, सङ्गति और वित् इत्यादि । वह एवं उसका सकर्म्मक अनुभवितका आत्मत्व और ज्ञानत्व स्वीकृत होता है, इसी कारण इसप्रकार सम्भावना नहीं किये जासक्ती ॥ १८ ॥

ननु ज्ञानरूपस्यात्मनः कथं ज्ञानगुणकत्वमिति चेत्तदसारं यदा हि मणिद्युमणिप्रभृति तेजोद्रव्यं प्रभावद्रूपेणावतिष्ठमानं प्रभाख्यगुणाश्रयः । स्वाश्रयादन्यत्रापि वर्त्तमानत्वेन रूपत्वेन च प्रभाद्रव्यरूपापि तच्छेषत्वनिबन्धनगुणव्यवहारा एवमयमात्मा स्वप्रकाशचिद्रूप एव चैतन्यगुणः ॥ १९ ॥

अवस्थिति करताहै तो प्रभारूपसे गुणाश्रय होता है । प्रभाभी अपना आश्रय छोड़कर अन्यत्र वर्त्तमान और रूप स्वरूप होता है । एवं तत्प्रयुक्त यह प्रभा द्रव्यरूप और तत् शेषत्वनिबन्ध गुण व्यवहारविशिष्ट होता है इस प्रकार, आत्मा प्रभाशाली चिद्रूप होकरही चैतन्य गुण होजाता है ॥ १९ ॥

तथा च श्रुतिः सदा सैन्धवघनोऽनन्तरो बाह्यः कृत्स्न रसघन एव एवं वा अरे अयमात्मानन्तरो बाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते । अथ यो वेदेदं जिघ्राणेति स आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुष एष हि द्रष्टा श्रोता रसयिता घ्राता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष इत्यादिका श्रुतिरपि न चानृतेन हि प्रत्यूढा इति श्रुतिरपि विद्यापर्वप्रमाणमित्याश्रयितुं शक्यं ऋतेतरविषयो ह्यनृतशब्दः ऋतशब्दश्च कर्मवचनः ऋतं पिबन्ताविति वचनात् ऋतं कर्मफलाभिसन्धिरहितं परमपुरुषाराधनयैव तत्प्राप्तिफलम् । अत्र तद्व्यतिरिक्तसांसारिकाल्पफलं कर्मानृतं ब्रह्मप्राप्तिविरोधि य एतं ब्रह्मलोकं न विदन्ति अनृतेन हि प्रत्यूढा इति वचनात् ॥ २० ॥

और उसी प्रकार श्रुतिमेभी कहा है । कि यह आत्मा सर्व्वदा सैन्धवकी नाईं घनस्वरूप है । उसका भीतर भी नही, बाहिर भी नही । वह कृत्स्न अर्थात् सर्व स्वरूप और रस घन अर्थात् सम्पूर्ण रसके परिपूर्ण आधारस्वरूप है । पुनः कहा है, यह आत्मा अन्तरशून्य बहिः शून्य, सर्व्व स्वरूप ही विज्ञानघन है (विज्ञानसे परिपूर्ण) पुनः कहा है, यह पुरुष (आत्मा) स्वयं ज्योतिः, विज्ञाताके विज्ञप्तिका लोप नहीं, वा होता नहीं, जो विज्ञानमय जो सम्पूर्ण प्राणोंमें विराजमान; जो हृदयमें अन्तर्ज्योति स्वरूप अधिष्ठित है, वही पुरुष अर्थात् आत्मा है यही आत्मा देखता है । सुनता है, रस अनुभव करता है, सूंघता है, मनन करता है, बोध करता है, कार्य्य करता है, विज्ञान ही इसका आत्मा है । इत्यादि श्रुति एवं अनृत द्वारा प्रत्यूढ इत्यादि श्रुतिभी विद्यापर्व्वका प्रमाण है, इस प्रकार स्वीकार करनेकी क्षमता नहीं और अनृत शब्द ऋतेतर विषय अर्थात् मिथ्या और ऋतकर्म्म वचन । कर्म्मफलकी अभिसन्धि त्यागपूर्वक परम पुरुषकी आराधना करही कर उसकी फल प्राप्ति होती है, इसी को ऋत कहते हैं इस स्थानमें उसको छोड़कर सांसारिक अल्पफलजनक कर्म्मका नाम

अनृत है । वह ब्रह्म मानिका विरोधी है । क्योंकि, इस प्रकार लिखा है, जो जो लोग इस ब्रह्मलोकको जानते हैं, वे लोग अमृतद्वारा मत्यूढ हैं ॥ २० ॥

मायान्तु प्रकृतिं विद्यादित्यादौ मायाशब्दो विचित्रार्थसर्गकत्रिगुणात्मकप्रकृत्यभिधायको नानिर्वचनीयाज्ञानवचनः ।

तेन मायासहस्रं तच्छंबरस्याशुगामिना ।
बालस्य रक्षता देहमेकैकं श्येनसूदितम् ॥ २१ ॥

मायाको प्रकृति जानना । इत्यादि स्थानमें भी माया शब्द विचित्रार्थका प्रयोजक त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका वाचक, अनिर्वचनीय अज्ञान वचन नहीं है, शबरके बाणने लडकेके देहकी रक्षा कर श्यामको माराथा । ऐसी घटना माया सहस्रस्वरूप है ॥ २१ ॥

इत्यादौ विचित्रार्थसर्गसमर्थस्य पारमार्थिकस्यैवासुराद्यस्त्रविशेषस्यैव मायाशब्दाभिधेयत्वोपलम्भात् अतो न कदाचिदपि श्रुत्यानिर्वचनीयाज्ञानप्रतिपादनं नाप्यैक्योपदेशानुपपत्त्या तत्त्वपदयोः सविशेषब्रह्माभिधेयत्वेन विरुद्धयोर्जीवपरयोः स्वरूपैक्यस्य प्रतिपत्तुमशक्यतया अर्थापत्तेरनुदयदोषदूषितत्वात् । तथाहि तत्पदं निरस्तसमस्तदोषमनवधिकातिशयासङ्ख्येककल्याणगुणास्पदं जगदुदयविभवलयलीलं ब्रह्म प्रतिपादयति तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेत्यादिषु तस्यैव प्रकृतत्वात् समानाधिकरणं त्वं पदं वा चिद्विशिष्टं जीवशरीरं ब्रह्माचष्टे प्रकारद्वयविशिष्टैकवस्तुपरत्वात् सामानाधिकरणस्य ॥ २२ ॥

प्रतिपाद्य है, उसने देखा जो, मैं बहुत होकर जन्म ग्रहण करूं, इत्यादि वाक्य परम्परामें उसीका प्रकृतत्व वशतः समानाधिकरण त्वं पदको अथवा चिद् विशिष्ट जीव शरीरको ब्रह्म कहते हैं। क्योंकि, जो प्रकारद्वय विशिष्ट एक वस्तुके निकट है, उसीको समानाधिकरण कहते हैं॥ २२॥

ननु सोऽयं देवदत्त इतिवत् तत्त्वमिति पदयोर्विरुद्धभागत्यागलक्षणयोर्निर्विशेषस्वरूपमात्मैक्यं समानाधिकरणार्थः किं न स्यात् यथा सोऽयमित्यत्र तच्छब्देन देशान्तरकालान्तरसम्बन्धी पुरुषः प्रतीयते इदंशब्देन च सन्निहितदेशवर्त्तमानकालसम्बन्धी तयोः सामानाधिकरण्ये नैक्यमवगम्यते। तत्रैकस्य युगपद्विरुद्धदेशकालप्रतीतिर्न सम्भवतीति द्वयोरपि पदयोः स्वरूपपरत्वे स्वरूपस्य चैक्यं प्रतिपत्तुं शक्यमेवमत्रापि किञ्चिज्ज्ञत्वसर्वज्ञत्वादिविरुद्धांशप्रहाणेनाखण्डस्वरूपं लक्ष्यते चेत् विषमोऽयमुपन्यासः॥ २३॥

यदि कहो जो, सो यही देवदत्त है इत्यादि वाक्यकी नाईं विरुद्धभाग त्यागलक्षण विशिष्ट तत् औरत्वं इन दो पदोंका जो निर्विशेष स्वरूप आत्मैक्य, उसीके अर्थमें सामानाधिकरण्य नही होगा क्यों? जिस प्रकार वही यही इत्यादि स्थलमें उसी शब्दसे देशान्तर और कालान्तर सम्बन्ध विशिष्ट पुरुषकी प्रतीति होती है, एवं इस शब्दसे सन्निहित देश और वर्त्तमान काल इन दोनोंके सहित जिसका सम्बन्ध है, उसीको समझाताहै। उसका निबन्धन सामानाधिकरण्य द्वारा दोनोंकी एकता जानी जाती है। उनमें एकका कभी युगपत् विरुद्ध देशकालप्रतीति साम्भवपर नहीं होता। इस कारण, दोनों शब्द स्वरूपपर होनेसे स्वरूपकी एकता प्रतिपादन करना शक्य होता है। उसी प्रकार यहांभी किञ्चित् ज्ञत्व और सर्व्वज्ञत्व इत्यादि विरुद्ध अंशका परित्याग द्वारा अखण्डस्वरूप लक्षित होता है। यह विषम उपन्यास है॥ २३॥

दृष्टान्तेऽपि विरोधवैधुर्य्येण लक्षणा गन्धासम्भवादेकस्य तावद् भूतवर्त्तमानकालद्वयसम्बन्धो न विरुद्धः। देशान्तरस्थितिर्भूता सन्निहितदेशस्थितिर्वर्त्तत इति देशभेदसम्बन्धविरोधश्च कालभेदेन परिहरणीयः। लक्षणापक्षेऽप्येकस्यैव पदस्य लक्षकत्वाश्रयणेन विरोधपरिहारे पदद्वयस्य लाक्षणिकत्वमस्वीकार्य्यं न

सङ्गच्छते । इतरथा एकस्य वस्तुनस्तत्तदन्ताविशिष्टत्वावगाहनेन प्रत्यभिज्ञायाः प्रामाण्यानङ्गीकारे स्थायित्वासिद्धौ क्षणभङ्गवादी बौद्धो विजयेत ॥ २४ ॥

दृष्टान्तपक्षमें विरोधकी सम्भावना एवं लक्षणका सम्पर्क मात्र नहीं इस कारण एक वस्तुके अतीत और वर्त्तमानरूप कालद्वय सम्बन्ध विरुद्ध नहीं होता । पूर्व्वमें देशान्तरमें स्थिति थी, इस समय भी सन्निहित देशमें स्थिति है, इसप्रकार देश-भेद-सम्बन्धविरोध परिहार किया जासकता है । लक्षणपक्षमें भी एकपक्षका लक्षकत्व संघटनवशात विरोधका परिहार हो जानेमें दोनों शब्दका लाक्षणिकत्व स्वीकार करना सङ्गत नही होसकता । अन्यथा एक वस्तुको सो यह कहकर ज्ञान नही करनेसे प्रत्यभिज्ञाका प्रामाण्य नहीं माना-जाता । इसप्रकार अङ्गीकार नही करनेसे, स्थायित्वकी असिद्धिवशात् क्षणभङ्गवादी बौद्ध हीका विजय होता है ॥ २४ ॥

एवमत्रापि जीवपरमात्मनोः शरीरात्मभावेन तादात्म्यं न विरुद्धमिति प्रतिपादितम् । जीवात्मा हि ब्रह्मणः शरीरतया प्रकारत्वात् ब्रह्मात्मकः य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरः य आत्मानं वेद यस्यात्मा शरीरम् इति श्रुत्यन्तरादत्यल्पमिदमुच्यते सर्वे शब्दाः परमात्मन एव वाचकाः । न च पर्य्यायत्वं द्वारभेदसम्भवात् । तथाहि जीवस्य शरीरतया प्रकारभूतानि देवमनुष्यादिसंस्थानानीव सर्वाणि वस्तूनीति ब्रह्मात्मकानि तानि सर्वाणि॥२५॥

अतः—
देवो मनुष्यो यक्षो वा पिशाचोरगराक्षसाः ।
पक्षी वृक्षो लता काष्ठं शिला तृणं घटः पटः ॥ २६ ॥

इसीकारण, देव, मनुष्य, यक्ष, पिशाच, उरग, राक्षस, पक्षी, वृक्ष, काष्ठ, शिला, तृण, घट और पट इत्यादि जो सब शब्द प्रकृति प्रत्ययके योगमें अभिधायक कहकर लोकमें प्रसिद्ध है, सो सब ही उसकी वाच्यतामें प्रतीयमान तत्तत्संस्थान विशिष्ट वस्तु सहायसे तदभिमानी जीव और उसका अन्तर्यामी परमात्मा पर्य्यन्त संस्थानका वाचक होता है। तत्त्वमुक्तावली और चतुरन्तर नामक ग्रंथमें देवादि शब्दोंका परमात्मा पर्य्यन्तत्व कहा है ॥ २६ ॥

इत्यादयः सर्वे शब्दाः प्रकृतिप्रत्यययोगेनाभिधायकतया प्रसिद्धा लोके तद्वाच्यतया प्रतीयमानतत्तत्संस्थानवद्वस्तुमुखेन तदभिमानिजीवतदन्तर्यामिपरमात्मपर्य्यन्तसंस्थानस्य वाचकाः । देवादिशब्दानां परमात्मपर्य्यन्तत्वमुक्तं तत्त्वमुक्तावल्यां चतुरन्तरे च ॥ २७ ॥

देवादि शब्द जीवका वाचक है । और निष्कर्ष अभिप्राययुक्त सब लौकिक और वैदिक प्रयोग, जीवसे अभिन्न सिद्ध भावाभिधान अर्थात् परमात्माका वाचक होता है । आत्मसम्बन्ध कालमें देव और मनुष्यादि मुक्तिविशिष्ट होकर जो अवस्थिति करता है, सो नहीं जाना जाता । वही जीवात्मा ही संसारमें अनुप्रवेशकर, नाम और रूप व्यक्त करता है ॥ २७ ॥

जीवं देवादिशब्दो वदति तदपृथक् सिद्धभावाभिधानं
निष्कर्षाकूतयुक्तो बहुरिह च दृढो लोकवेदप्रयोगः ॥
आत्मासम्बन्धकाले स्थितिरनवगता देवमर्त्यादिमूर्त्ति-
र्जीवात्मानुप्रवेशाज्जगति विभुरपि व्याकरोन्नामरूपे ॥

इत्यनेन देवादिशब्दानां शरीरपर्य्यन्तत्वं प्रतिपाद्य संस्थानैक्याद्यभाव इत्यादिना शरीरलक्षणं दर्शयित्वा शब्दस्तत्त्वस्वरूपप्रतिकृतिभिरित्यादिना विश्वेश्वरादपृथक्सिद्धत्वमुपपाद्य निष्कर्षाकूतेत्यादिना पद्येन सर्वेषां शब्दानां परमात्मपर्य्यन्तत्वं प्रतिपादितं तत् सर्वं तत एवावधार्य्यम् । अयमेवार्थः समर्थितो वेदार्थसंग्रहे नामरूपश्रुतिव्याकरणप्रसङ्गे रामानुजेन॥२८॥

यहां देवादि शब्दोंका शरीर पर्य्यन्तत्व प्रतिपादन कर, पीछे निष्कर्ष अभिप्राय इत्यादि शब्द प्रयोगद्वारा सब शब्दोंका परमात्मा पर्य्यन्तत्व जो प्रतिपादन किया गया है सो सब

ही परमात्मा है, ऐसा समझना वा निश्चय करना चाहिये । रामानुजने वेदार्थसंग्रह नामक ग्रंथमें नामरूप श्रुतिके व्याकरणका समय इसी प्रकारके अर्थका समर्थ न किया है ॥२८॥

किञ्च सर्वप्रमाणस्य सविशेषविषयतया निर्विशेषवस्तुनि न किमपि प्रमाणं समस्ति निर्विकल्पकप्रत्यक्षेऽपि सविशेषमेव वस्तु प्रतीयते । अन्यथा सविकल्पके सोयमिति पूर्वप्रतिपन्नप्रकारविशिष्टप्रतीत्यनुपपत्तेः ॥ २९ ॥

पुनः समुदाय प्रमाण सविशेष कहकर ब्रह्मरूप निर्विशेष वस्तुमें कोई प्रमाणही नही स्थान पाता है, जो वस्तु सविशेष है, वही निर्विकल्प प्रत्यक्ष प्रतीत होता है उसके न होनेसे सविकल्पक वस्तुमें वही इत्यादि पूर्व सिद्ध प्रकार विशिष्ट प्रतीतिकी अनुपपत्ति सम्भव होती है ॥ २९ ॥

किञ्च तत्त्वमस्यादिवाक्यं न प्रपञ्चस्य बाधकं भ्रान्तिमूलकत्वात् । भ्रान्तिप्रयुक्तरज्जुसर्पबाधयवत् नापि ब्रह्मात्मैक्यज्ञानं निवर्त्तकं तत्र प्रमाणाभावस्य प्रागेवोपपादनात् । न च प्रपञ्चस्य सत्यत्वप्रतिष्ठापनपक्षे एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाव्याकोपः प्रकृतिपुरुषमहदहङ्कारतन्मात्रभूतेन्द्रियचतुर्दशभुवनात्मकब्रह्माण्डतदन्तर्वर्तिदेवतिर्य्यङ्मनुष्यस्थावरादिसर्वप्रकारसंस्थानसंस्थितं कार्य्यमपि सर्वं ब्रह्मैवेति कारणभूतब्रह्मात्मज्ञानादेव सर्वविज्ञानं भवतीत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानस्योपपन्नतरत्वात् ॥३०॥

अपिच ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्य मिथ्यात्वे सर्वस्यासत्त्वादेवैक विज्ञानेन सर्वविज्ञानं बाध्येत । नामरूपविभागेनेहसूक्ष्मदशावत् प्रकृतिपुरुषशरीरं ब्रह्मकारणावस्थं जगतस्तदापत्तिरेव प्रलयः नामरूपविभागविभक्तस्थूलचिदचिद्वस्तुशरीरं ब्रह्मकार्य्यावस्थं ब्रह्मणस्तथाविधस्थूलभावश्च सृष्टिरित्यभिधीयते ॥ ३१ ॥

पुनः ब्रह्मव्यतिरिक्त सबही वस्तु मिथ्या एवं सबही सत्वहीन इसप्रकार एक विज्ञानद्वारा सर्व्वविज्ञान बाधित होता है नामरूप विभागके अनुपयुक्त सूक्ष्म दशाविशिष्ट प्रकृति पुरुष शरीर ब्रह्मकारणमें अवस्थित करता है । उसके आपत्तिकोही जगतका प्रलय कहते हैं और नाम, रूप, विभाग, विभक्त, स्थूलस्वरूप, चिद्वस्तु, शरीर ब्रह्मकार्य्यमें प्रतिष्ठित हैं । ब्रह्मके उस प्रकार स्थलभावकोही सृष्टि कहते हैं ॥ ३१ ॥

एवञ्च कार्य्यकारणयोरनन्यत्वमप्यारम्भणाधिकरणे प्रतिपादित-मुपपन्नतरं भवति । निर्गुणवादाश्च प्राकृतहेयगुणनिषेधविषय-तया व्यवस्थिताः नानात्वनिषेधवादाश्च एकस्यैव ब्रह्मणः शरी-रतया प्रकारभूतं सर्वं चेतनाचेतनात्मकं वस्त्विति सर्वस्यात्म-तया सर्वप्रकारं ब्रह्मैवावस्थितमिति सर्वात्मकब्रह्मपृथग्भूतवस्तु सद्भावनिषेधपरत्वाभ्युपगमेन प्रतिपादिताः ॥ ३२ ॥

इसप्रकार, आरम्भणाधिकरणमें कार्य्य कारण दोनोंका जो अनन्यत्व कहा गया है, वही अच्छीप्रकार सिद्ध होता है । पुनः प्राकृत हेय गुणका निषेध विषयता वशात् जो निर्गुण-वाद प्रतिष्ठापित हुआ है, वह भी कहा गया । इस प्रकार सब ही चेतनाचेतनात्मक वस्तु एकमात्र ब्रह्मका शरीररूप कहकर, उसीका प्रकारभूत एवं ब्रह्मही सबका आत्मा कहकर सब प्रकारसे अवस्थित हैं, इत्यादि विधानसे सर्व्वजनक ब्रह्मसे पृथग् भूतवस्तुका निषेध परत्व स्वीकारद्वारा ब्रह्मका सर्व्वात्मकत्व उपपादित होता है ॥ ३२ ॥

किमत्र तत्त्वं भेदः प्रभेदः उभयात्मकं वा सर्वशरीरतया सर्वप्र-कारं ब्रह्मैवावस्थितमित्यभेदोऽभ्युपेयते एकमेव ब्रह्मनानाभूतचि-दचित्प्रकारं नानात्वेनावस्थितमिति भेदाभेदौ चिदचिदीश्व-राणां स्वरूपस्वभाववैलक्षण्यादसंकराच्च भेदः ॥ ३३ ॥

इससमय इसविषयमें असल तत्त्व क्या है ? भेद या अभेद, अथवा भेदाभेद दोनों ही किम्वा सब ही मङ्गनतत्त्व है ? उनमें सर्व्वात्मकता वशात् ब्रह्म ही सब प्रकारसे अवस्थित

है, इसके द्वारा अभेद अभ्युपेत होता है। पुनः, एकमात्र ब्रह्महीं नानाभूत और चित् और अचित् प्रकारसे नानात्ववशात् विराजमान होता है, इसका द्वारा भेदाभेद प्रतिपादित होता है। चित्. अचित् और ईश्वर इन सबका स्वरूप और स्वभावका वैलक्षण्य एवं असङ्कर वशात् भेद प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥

तत्र चिद्रूपाणां जीवात्मनामसङ्कुचितापरिच्छिन्ननिर्मलज्ञानरूपाणामनादिकर्मरूपाविद्यावेष्टितानां तत्तत्कर्मानुरूपज्ञानसङ्कोचविकाशो भोग्यभूता चित् भोक्ता संसर्गः तदनुगुणसुखदुःखोपभोगद्वयवत् कृता भगवत्प्रतिपत्तिः भगवत्पदप्राप्तिरित्यादयः स्वभावाः। अचिद्वस्तूनान्तु भोग्यभूतानामचेतनत्वमपुरुषार्थत्वं विकारास्पदत्वमित्यादयः परस्येश्वरस्य भोक्तृभोग्ययोरुभयोरन्तर्यामिरूपेणावस्थानमपरिच्छेद्यज्ञानैश्वर्य्यवीर्य्यशक्तितेजःप्रभृत्यनवस्थितिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणता स्वसङ्कल्पप्रवृत्तस्वेतरसमस्तचिदचिद्वस्तुजातता स्वाभिमतस्वानुरूपैकरूपदिव्यरूपनिरतिशयविविधानन्तभूषणतेत्यादयः॥२४॥

इनमें जो असङ्कुचित, अपरिच्छिन्न और निर्मल ज्ञानस्वरूप एवं अनादि कर्मरूप अविद्यामें वेष्टित है, वही चिद्रूप जीवात्माके उस २ कर्म्मानुसार ज्ञानका सङ्कोच और विकास भोग्यभूत चित्तभोक्ता, संसर्ग एवं उसके अनुगुण सुखदुःखोपभोगद्वयके विहित भगवत् प्रतिपत्ति और तदीय पदप्राप्ति ये सब स्वभाव कहकर परिगणित है। भोग्यभूत अचिद् वस्तुगणकी अचेतनत्व अपुरुषार्थत्व और विकारास्पदीभूतत्त्व इत्यादि स्वभाव हैं। भोक्ता और भोग्य इन दोनोंके अन्तर्यामीरूपसे अविच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, शक्ति और तेजःप्रभृति अतिशय असंख्येय कल्याण गुणगण विशिष्टता. स्वकीय संकल्पसे समुद्भूत आत्मभिन्न समस्त चिद् और अचिद् वस्तु सबका अधिष्ठातृता एवं स्वाभिमत स्वानुरूप, एकरूप, दिव्यरूप, निरतिशय, नानाविध और अनन्त भूषणोंसे अलङ्कार इत्यादि ईश्वरका स्वभाव ॥ २४ ॥

वेङ्कटनाथेन त्वित्थं निराटङ्कि पदार्थविभागः।

द्रव्याद्रव्यप्रभेदान्मितमुभयविधं तद्विदं तत्त्वमाहुः॥

द्रव्यं द्वेधा विभक्तं जडमजडमिति प्राच्यमव्यक्तकालौ।

अन्त्यं प्रत्यक् पराक् च प्रथममुभयथा तत्र जीवेशभेदात्॥

नित्या भूतिर्मतिश्चेत्यपरमिह जडामादिमां केचिदाहुः ॥२५॥

वेङ्कटनाथनें इसप्रकार पदार्थ निर्णय किया है, द्रव्य और अद्रव्य प्रभेद वशात् तत्व दो प्रकारका है । द्रव्य और दो भागोंमें विच्छिन्न है । जैसे-जड़ और अजड़ । प्राक् और पराक् एवं जीव और ईश्वरभेदसे इन दोनोंके और यथाक्रमसे दो प्रकार हैं । कोई २ नित्या भूति और मति ये दो विभाग निर्देश करते हैं ॥ ३५ ॥

तत्र-

द्रव्यं नाना दशावत् प्रकृतिरिह गुणैः सत्त्वपूर्वैरुपेता
कालोऽब्दाद्याकृतिः स्यादणुरवगतिमान् जीव ईशोऽन्य आत्मा ।
संप्रोक्ता नित्यभूतिस्त्रिगुणसमधिका सत्त्वयुक्ता तथैव
ज्ञातुर्ज्ञेयावभासा मतिरिति कथितं संग्रहाद्द्रव्यलक्ष्म ॥
इत्यादिना ॥ ३६ ॥

उनमें द्रव्य विविध दशान्तर विशिष्ट, प्रकृति सत्त्वादि गुणोंसे अलंकृत है, काल भी शब्द प्रभृति आकृतिसम्पन्न है, जीव और ईश्वर आत्मा, उनमें जीव अणुस्वरूप और अनुभव स्वरूप है, जिसमें तीन गुणोंहीका आधिक्य है, उसका नाम नित्या भूति एवं जिसमें ज्ञाताका ज्ञेयविषयमें उपलब्धि उत्पन्न होती है, उसका नाम मति है । इसी संग्रहको सत्ता कहते हैं ॥ ३६ ॥

तत्र चिच्छब्दवाच्याजीवात्मानः परमात्मनः सकाशाद् भिन्नाः नित्याश्च । तथाच श्रुतिः, द्वा सुपर्णा सयुजा सखायेत्यादिका । अतएवोक्तं नानात्मानो व्यवस्थात इति । तन्नित्यत्वमपि श्रुतिप्रसिद्धम् ।

न जायते म्रियते वा विपाश्चि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे इति ॥ ३७ ॥

उनमें चिच्छब्दका वाच्य जीवात्मा परमात्मासे भिन्न और नित्यस्वरूप है । श्रुतिमें भी यह कहा है, कि दो पक्षी परस्पर समान और सखा हैं इत्यादि । उसका नित्यत्व भी श्रुति प्रसिद्ध । जैसे-इसका जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, कभी होकर और होता नहीं । यह

जन्महीन, नित्य, शाश्वत और पुराणस्वरूप है । शरीरको हन्यमानत्वमें भी, यह मारा नहीं जाता ॥ ३७ ॥

अपरथा कृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गः । अतएवोक्तं वीतरागजन्मादर्शनादिति । तदणुत्वमपि श्रुतिप्रसिद्धम् ।

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पत इति ॥
आराग्रमात्रः पुरुषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य इति च ॥ ३८ ॥

फलतः नित्यत्व प्रभृति गुणका सन्निवेश न होनेसे, कृतप्रणाश और अकृताभ्यागम दोष संघटित होता है । उसका अणुत्व भी श्रुति प्रसिद्ध है । जैसे, एक केशके अग्रभागको १०० भागकर पुनः उस एक २ भागको सौ २ भाग करनेसे जो होगा वही जीवका स्वरूप जानना । इसप्रकार वह अणुस्वरूप है, पुरुषरूपी आत्मा एकमात्र चित्तका वेदनीय है ॥ ३८ ॥

अचिच्छब्दवाच्यं दृश्यं जडं जगत् त्रिविधं भोग्यभोगोपकरणभोगायतनभेदात् । तस्य जगतः कर्त्तोपादानं चेश्वरपदार्थः पुरुषोत्तमो वासुदेवादिपदवेदनीयः । तदप्युक्तम् ।

वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः ।
भुवनानामुपादानं कर्त्ता जीवनियामक इति ॥ ३९ ॥

अचित् शब्दवाच्य दृश्यमान जड जगत् तीनों भाग विच्छिन्न जैसे, भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन । आदि पद वेदनीय ईश्वररूपी पुरुषोत्तम वासुदेवही इस जगत्का कर्त्ता और उपादान है । तथापि कहाहै, समुदाय कल्याणगुणसम्पन्न वासुदेवही परब्रह्म । [illegible] जो सम्पूर्ण भुवनोंका उपादान, कर्त्ता और सब जीवोंका नियामक है ॥ ३९ ॥

स एव वासुदेवः परमकारुणिको भक्तवत्सलः परमपुरुषस्तदुपासकानुगुणतत्तत्फलप्रदानाय स्वलीलावशादर्चाविभवव्यूहसूक्ष्मान्तर्यामिभेदेन पञ्चधावतिष्ठते । तत्रार्चा नाम प्रतिमादयः । रामाद्यवतारो विभवः । व्यूहश्चतुर्विधः वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धसंज्ञकः । सूक्ष्मं सम्पूर्णं षड्गुणं वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म गुणा अपहतपाप्मत्वादयः । सोऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सः सत्यकामः सत्यसङ्कल्प इति श्रुतेः । अन्त-

र्यामीसकलजीवनियामकः य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरीय-मयतीति श्रुतेः तत्र पूर्वपूर्वमूर्त्युपासनया पुरुषार्थपरिपन्थिदुरि-तनिचयक्षये सत्युत्तरोत्तरमूर्त्युपास्त्यधिकारः । तदुक्तम्—

वासुदेवः स्वभक्तेषु वात्सल्यात् तत्तदीहितम् ।
अधिकार्य्यानुगुण्येन प्रयच्छति फलं बहु ॥ ४० ॥

वह परम कारुणिक और परम पुरुषरूपी है भक्तवत्सल वासुदेवही स्वकीय उपासक -मण्डलीके परम अभीप्सित तत्तत् फल प्रदान वासनामें अनन्य साधारण लीला रससे अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म, अन्तर्यामी, भेदसे पांच प्रकारसे अधिष्ठित है । उनमें अर्चा शब्दसे प्रतिमादि विभव शब्दसे रामादि रूपमें अवतरण होना, व्यूह चार प्रकारका है, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । सूक्ष्म शब्दसे षड्गुण पूर्ण वासुदेव नामक परब्रह्म । यहां गुण शब्दसे अपहत पाप्मत्व प्रभृति । जैसे श्रुतिमें कहा है, वही अपहत पाप्मा शोकहीन, रजोहीन, मृत्युहीन इत्यादि । इसप्रकार अन्तर्यामी शब्दसे सब जीवोंका नियामकरूपसे जो आत्मामें अधिष्ठित है । श्रुतिमें भी कहा है जो आत्मामें अन्तरसे अव-स्थित है । रहकर आत्माको नियन्त्रित करता है । उनमें पूर्व २ मूर्तिकी उपासनाद्वारा पुरुषार्थप्राप्तिके प्रतिकूल दुरित राशि दूर होनेपर उत्तरोत्तर मूर्तियोंकी उपासनामें अधिकार उत्पन्न होता है उसी प्रकार कहा भी है:—भगवान् वासुदेव स्वकीय भक्तोंके वात्सल्यवशात् अधिकारीके आनुगुण्यक्रमसे सबही अभीष्ट फलोंको प्रदान करते हैं ॥ ४० ॥

तदर्थं लीलया स्वीयाः पञ्च मूर्तीः करोति वै ।
प्रतिमादिकमर्चा स्यादवतारास्तु वैभवाः ॥ ४१ ॥

इसी कारण जो लीलारससे अपनी पांच मूर्तियोंका आविष्कार करते है । उनमें प्रति-मादिका नाम अर्चा रामादिका अवतार वैभव नामसे परिगणित है ॥ ४१ ॥

सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।
व्यूहश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूक्ष्मं सम्पूर्णषड्गुणम् ॥
तदेव वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निगद्यते ॥ ४२ ॥

सङ्कर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार प्रकारके व्यूह हैं । सूक्ष्म, सम्पूर्ण, षड्गुण विशिष्ट वही वस्तु वासुदेव परम ब्रह्म कहकर परिगणित होते हैं ॥ ४२ ॥

अन्तर्यामी जीवसंस्थो जीवप्रेरक ईरितः ॥
य आत्मनीतिवेदान्तवाक्यजालैर्निरूपितः ॥ ४३ ॥

जो जीवके भीतर रहकर उनकी प्रेरणा करे उसका नाम अन्तर्यामी है । वेदान्तकी बात परस्परमें विरुद्ध हैं जो इस प्रकार निरूपित हुआ है ॥ ४३ ॥

अर्चोपासनया क्षिप्ते कल्मषेऽधिकृतो भवेत् ॥
विभवोपासने पश्चाद् व्यूहोपास्तौ ततः परम् ।
सूक्ष्मे तदनुशक्तः स्यादन्तर्यामिणमीक्षितुमिति ॥ ४४ ॥

उनमें अर्चा वा प्रतिमादिकी उपासना करनेसे दुरित राशि दूर होतेहैं और उसके सहकारसे विभवोपासनामें अधिकार संघटन होता है। पश्चात् व्यूहके उपासनाका अधिकारी होजाता है। तदनंतर सूक्ष्मके उपासनाका सामर्थ्य होता है। पीछे अन्तर्यामीके साक्षात् करनेकी शक्ति समुद्भूत होती है ॥ ४४ ॥

तदुपासनञ्च पञ्चविधम् अभिगमनमुपादानमिज्या स्वाध्यायो योग इति श्रीपञ्चरात्रेऽभिहितम्। तत्राभिगमनं नाम देवतास्थानमार्गस्य संमार्जनोपलेपनादि। उपादानं गन्धपुष्पादिपूजासाधनसम्पादनम्। इज्या नाम देवतापूजनम्। स्वाध्यायो नाम अर्थानुसन्धानपूर्वको मन्त्रजपो वैष्णवसूक्तस्तोत्रपाठो नामसङ्कीर्त्तनं तत्त्वप्रतिपादकशास्त्राभ्यासश्च। योगो नाम देवतानुसन्धानम्। एवमुपासनाकर्मसमुच्चितेन विज्ञानेन दृष्टदर्शने नष्टे भगवद्भक्तस्य तन्निष्ठस्य भक्तवत्सलः परमकारुणिकः पुरुषोत्तमः स्वयाथात्म्यानुभवानुगुणानिरवधिकानन्तरूपं पुनरावृत्तिरहितं स्वपदं प्रयच्छति। तथाच स्मृतिः—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गता इति ॥ ४५ ॥

समुद्भावित विज्ञान योग सहाकारसे द्रष्टृ, दर्शन निवृत्त होनेपर भक्त वत्सल परम कारुणिक पुरुषोत्तम वासुदेव अपना याथात्म्य स्वरूपानुभवके अनुकूल, सब प्रकार सीमा विभाग विरहित, अनन्तस्वरूप एवं पुनर्जन्म विवर्जित स्वकीय पद भगवद्भक्त और उसके साथ से सक्त पुरुषोंको प्रदान करते हैं । और कहा है, मेरे शरणागत होनेसे महाजन परम संसिद्धिलाभपूर्व्वक, दुःखके निलय स्वरूप भंगुरभावापन्न पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता ॥ ४५ ॥

स्वभक्तं वासुदेवोऽपि संप्राप्यानन्दमक्षयम् ।
पुनरावृत्तिरहितं स्वीयं धाम प्रयच्छतीति च ॥ ४६ ॥

वासुदेव अपने भक्तोंको अक्षय आनन्द एवं पुनरावृत्ति विरहित स्वीय धाम प्रदान करते हैं ॥ ४६ ॥

तदेतत् सर्वं हृदि निधाय महोपनिषन्मतावलम्बनेन भगवद्बोधायनाचार्य्यकृतां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं विस्तीर्णामालक्ष्य रामानुजः शारीरिकमीमांसाभाष्यमकार्षीत् । तत्राथातो ब्रह्मजिज्ञासेति प्रथमसूत्रस्यायमर्थः । अत्र अथशब्दः पूर्वप्रवृत्तकर्माधिगमनानन्तर्य्यार्थः । तदुक्तं वृत्तिकारेण— वृत्तात् कर्माधिगमादनन्तरं ब्रह्म विविदिषतीति । अतः शब्दो हेत्वर्थः अधीतसाङ्गवेदस्याधिगततदर्थस्य विनश्वरफलात् कर्मणो विरक्तत्वाद्धेतोः स्थिरमोक्षाभिलाषुकस्य तदुपायभूतब्रह्मजिज्ञासा भवति । ब्रह्मशब्देन स्वभावतो निरस्तसमस्तदोषानवधिकातिशयासंख्येयकल्याण गुणः पुरुषोत्तमोऽभिधीयते ॥ ४७ ॥

इन सबको हृदयमें सम्यक् रूपसे स्थापन और उसके सहकारसे महोपनिषन्मत अनुसरण पूर्वक रामानुज भगवान्ने बोधायनाचार्य्य प्रणीत ब्रह्मसूत्र वृत्तिकी आलोडनाकर शारीरक मीमांसाका भाष्य प्रणयन किया है । उनने अनन्तर इस कारण ब्रह्मको जाननेके लिये इच्छा इत्यादि प्रथम सूत्रका अर्थ यह पूर्व्व प्रवृत्त कर्म्माधिगमनका आनन्तर्य्य समझानेके लिये यहां अथ शब्द प्रयोजित हुआ है । वृत्तिकारने भी वही कहा है । जैसे प्रवृत्त कर्म्माधिगमनका अनन्तर ब्रह्मको जाननेकी अभिलाषा होती है । इस कारण शब्दप्रयोगका भावार्थ यह है जो समुदायस्वाङ्गवेद अध्ययन और उनका अर्थ सम्यक् रूपसे प्रतिगमनकर, विनश्वर फल विशिष्ट कर्म्मकी विरक्ति उपस्थित होती है । इस कारण स्थिरपद लाभमें अभिलाषा हुई, उसके उपाय स्वरूप ब्रह्मको जाननेकी इच्छा प्रादुर्भूत होती है । ब्रह्म शब्दसे स्वभावतः समस्त

दोष विहीन, सब प्रकार अवधि शून्य अतिशय असंख्येय कल्याणगुणविशिष्ट पुरुषोत्तमको बोध करता है ॥ ४७ ॥

एवञ्च कर्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य च वैराग्योत्पादनद्वारा चित्तकल्मषापनयनद्वारा च ब्रह्मज्ञानं प्रति साधनत्वेन तयोः कार्य्यकारणत्वेन पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रत्वम् । अतएव वृत्तिकारा एकमेवेदं शास्त्रं जैमिनीयेन षोड़शलक्षणेनेत्याहुः । कर्मफलस्य क्षयित्वं ब्रह्मज्ञानफलस्य चाक्षयित्वं परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेनेत्यादिश्रुतिभिरनुमानार्थापत्युपबृंहिताभिः प्रत्यपादि । एकैकनिन्दया कर्मविशिष्टस्य ज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वं दर्शयति श्रुतिः अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः । विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते इत्यादि ॥ ४८ ॥

इसप्रकार कर्मज्ञान और उसका अनुसन्धान इन दो विषयोंमें वैराग्यका उत्पादन और उसके सत्कारसे चित्त कलुष निःशेष करके निराकरण करनेके लिये परब्रह्म ज्ञानका प्रतिपादन होता है । तन्निबन्धन दोनो कारणोसे भावमें बद्ध होजानेसे, पूर्व्व मीमांसा और उत्तर मीमांसाका एक शास्त्रत्वसिद्ध होता है । इस कारण वृत्तिकारगणने कहा है, एकही शास्त्र जैमिनिप्रोक्त १६ लक्षणद्वारा कहा गया है । कर्म्मफलका क्षयशीलत्व और ब्रह्मज्ञान फलका अक्षयित्वकी परीक्षाकर श्रुतिमे एकैक निन्दाक्रमसे कर्म्मविशिष्ट ज्ञानका मोक्षसाधनत्व प्रदर्शित हुआ है । जैसे, लोग अविद्याका उपासक. वे लोग अन्धतममे प्रवेश करते है, जो लोग विद्यामें आसक्त उनकी भी ऐसी ही दशा होती है जो व्यक्तिविद्या और अविद्या दोनोके ज्ञाता है, सो अविद्याके सहित मृत्युको पारकर. विद्याबलसे मोक्ष लाभ करते हैं इत्यादि ॥ ४८ ॥

तदुक्तं पाञ्चरात्ररहस्ये—

स एव करुणासिन्धुर्भगवान् भक्तवत्सलः ।
उपासकानुरोधेन भजते मूर्तिपञ्चकम् ॥ ७१ ॥

तदर्चाविभवव्यूहसूक्ष्मान्तर्यामिसंज्ञकम् ।
यदाश्रित्यैव चिद्वर्गस्तत्तज्ज्ञेयं प्रपद्यते ॥ ५० ॥

इन पांच मूर्तियोंके नाम जैसे, अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म और अन्तर्यामी हैं । चिन्मय, विग्रह भगवान् उस २ मूर्तिका आश्रयकर सबके अगोचर आविर्भूत होते हैं ॥ ५० ॥

पूर्वपूर्वोदितोपास्तिविशेषक्षीणकल्मषः ।
उत्तरोत्तरमूर्त्तीनामुपास्त्यधिकृतो भवेत् ॥ ५१ ॥

उनमें पूर्व्व २ मूर्तिकी उपासना करनेपर उसके प्रभावसे अशेष पापका निरास होकर उत्तरोत्तर मूर्तियोंकी उपासनाका अधिकार उत्पन्न होता है ॥ ५१ ॥

एवं ह्यहरहः श्रौतस्मार्त्तधर्मानुसारतः ।
उक्तोपासनया पुंसां वासुदेवः प्रसीदति ॥ ५२ ॥

इसप्रकार दिन दिन श्रौतस्मार्त्त धर्म्मके अनुसरणपूर्वक उक्तविधानसे उपासना करने पर, वासुदेव प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥

प्रसन्नात्मा हरिर्भक्त्या निदिध्यासनरूपया ।
अविद्यां कर्मसङ्घातरूपां सद्यो निवर्त्तयेत् ॥ ५३ ॥

भगवान् हरि निदिध्यासन रूपसे भक्ति करनेपर प्रसन्नचित्त होकर, क्रम २ से कर्म्मसंघातरूप अविद्याका सदा नाश करते हैं ॥ ५३ ॥

ततः स्वाभाविकाः पुंसां ते संसारातिरोहिताः ।
आविर्भवन्ति कल्याणाः सर्वज्ञत्वादयो गुणाः ॥ ५४ ॥

तब पुरुषका संसार तिरोहित और स्वभाव सिद्ध सर्व्वज्ञत्व प्रभृति कल्याण गुणपरम्पराका आविर्भाव होता है ॥ ५४ ॥

एवं गुणाः समानाः स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च ।
सर्वकर्तृत्वमेवैकं तेभ्यो देवे विशिष्यते ॥ ५५ ॥

इसप्रकार ईश्वर और भक्तलोग दोनोंका समान गुणका समावेश होता है । उनमें ईश्वर एकमात्र सर्वकर्तृत्वद्वारा उन सबकी अपेक्षा वैशिष्ट्य प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

मुक्तास्तु शेषिणि ब्रह्मण्यशेषे शेषरूपिणः ।
सर्वानश्नुवते कामान् सह तेन विपश्चितेति ॥ ५६ ॥

शेषरूपी भक्तगणमुक्तिलाभकर, वही शेषरूपी ब्रह्ममें लीन होकर, समुदायअभिलषित सिद्धि सम्भोग करते हैं ॥ ५६ ॥

तस्मात्तापत्रयातुरैरमृतत्वाय पुरुषोत्तमादिपदवेदनीयं ब्रह्म जिज्ञासितव्यमित्युक्तं भवति । प्रकृतिप्रत्ययैः प्रत्ययार्थं प्राधान्येन सह ब्रूत इतः स नोऽन्यत्रेति वचनबलादिच्छाया इष्यमाणप्रधानत्वादिष्यमाणं ज्ञानमिह विधेयं तच्च ध्यानोपासनादिशब्दवाच्यं वेदनं न तु वाक्यजन्यमापातज्ञानं पदसन्दर्भश्राविणो व्युत्पन्नस्य विधानमन्तरेणापि प्राप्तत्वात्। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मेत्येवोपासीत विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत अनुविद्य विजानातीत्यादिश्रुतिभ्यः । अत्र श्रोतव्य इत्यनुवादः अध्ययनविधिना साङ्गस्य ग्रहणे अधीतवेदस्य पुरुषस्य प्रयाजनवदर्थदर्शनात्तन्निर्णयाय स्वरसत एव श्रवणे प्रवर्त्तमानतया तस्य प्राप्तत्वात् । मन्तव्य इति चानुवादः श्रवणप्रतिष्ठार्थत्वेन मननस्यापि प्राप्तत्वादप्राप्ते शास्त्रमर्थवदिति न्यायात् । ध्यानञ्च तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिसन्तानरूपा वा स्मृतिः स्मृतिप्रतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष इति ध्रुवायाः स्मृतेरेव मोक्षोपायत्वश्रवणात् । सा च स्मृतिर्दर्शनसमानाकारा ॥ ८७ ॥

इस कारण तीनों तापोंसे आतुर पुरुषलोग अमृतत्व नामके निमित्त पुरुषोत्तम प्रभृति पदवेदनीय ब्रह्मजिज्ञासामें प्रवृत्त होंगे, यही कहा है । शास्त्रवाक्यानुसार इच्छाकी इष्यमाण प्रधानत्ववशात् इष्यमाण ज्ञान अर्जन करना कर्त्तव्य है यह ज्ञान, ध्यान और उपासनादि शब्दवाच्य, वेदनस्वरूप, वाक्यजनितके आपात ज्ञान नहीं । क्योंकि, पद सन्दर्भश्रवण परायण पुरुषका विधान व्यतिरेकके विना भी वह ज्ञान होता है । श्रुतिमें भी कहा है अरे ! आत्माका

इसप्रकार अविचलित स्मृतिका मोक्षोपायत्व प्रसिद्ध है । यह स्मृति साक्षात् दर्शनकी नाई, क्यों नहीं ॥ ५७ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ५८ ॥

उसी परमात्माभगवान्का स्वरूप दृष्ट होनेपर, हृदयकी सब गांठें खुलजातीं सम्पूर्ण संशय नष्ट होजाते और सब कर्म्म क्षीण होजाते हैं ॥ ५८ ॥

इत्यनेनैकत्वात् । तथाच आत्मा वा अरे द्रष्टव्य इत्यनेनास्याद-र्शनरूपता विधीयते । भवति च भावनाप्रकर्षात् स्मृतेर्दर्शन रूपत्वम् । वाक्यकारेणैतत सर्वं प्रपञ्चितं वेदनमुपासनं स्यादि-त्यादिना । तदेव ध्यानं विशिनष्टि श्रुतिः—नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्त-स्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वामिति । प्रियतम एव हि वरणीयो भवति यथायं प्रियतममात्मानं प्राप्नोति तथा स्वयमेव भगवान् प्रियतम इति भगवतैवाभिहितम् ॥ ५९ ॥

इत्यादिके साथ इस स्मृतिकी एकता है । और आत्मा वा अरे द्रष्टव्य अर्थात् आत्माका दर्शन करना चाहिये, इत्यादि वाक्यानुसार इसकी दर्शनं स्वरूपता कही गयी है । भावनाके प्रकर्षबलसे स्मृतिका दर्शन स्वरूपत्व घटता है । वाक्यकारने इन सबको प्रपञ्चित किया है, जैसे वेदनही उपासना इत्यादि श्रुतिमें इस ध्यानका विशेषरूपसे निर्देश किया है जैसे, यह आत्मा प्रवचन द्वारा नहीं पाया जाता, मेधाद्वारा भी पाया नहीं जाता, एवं बहुविध श्रुतद्वारा भी नहीं पाया जाता । जो [illegible] इसको वरण करता है, वही इसको पाता है । आत्मा उसीके निकट स्वकीय स्वरूप प्रकट करता है, इत्यादि । पुनः स्वयं भगवानहीने कहा है, आत्माही सबकी अपेक्षा प्रिय है । अतएव उसीको वरण करना चाहिये इत्यादि ॥ ५९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते इति ॥ ६० ॥

गीता प्रभृतिमें कहा है कि जो [illegible] नित्य मनके अनुसार [illegible] सहकारसे पूर्ण प्रीतिसे मुझको भजता है, मैं उन [illegible] बुद्धियोग दान करता हूं; और [illegible] प्रभावसे मुझको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्ययेति च ॥ ६१ ॥

हे पार्थ ! वही परम पुरुष परमात्मा एकमात्र अनन्यभक्तिसे ही लभ्य होता है ॥ ६१ ॥

भक्तिस्तु निरतिशयानन्दप्रियानन्यप्रयोजनसकलेतरवैतृष्ण्यवज्ज्ञानविशेष एव । तत्सिद्धिश्च विवेकादिभ्यो भवतीति वाक्यकारेणोक्तं तल्लब्धिर्विवेकविमोकाभ्यासक्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः सम्भवान्निर्वचनाच्चेति । तत्र विवेको नामादुष्टादन्नात् सत्त्वशुद्धिः, अत्र निर्वचनम्—आहारशुद्धेः सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिरिति । विमोकः कामानभिष्वङ्गः शान्त उपासीतेति निर्वचनम् । पुनः पुनः संशीलनमभ्यासः निर्वचनञ्च स्मार्त्तमुदाहृतं भाष्यकारेण—सदा तद्भावभावित इति । श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानं शक्तितः क्रिया क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठ इति निर्वचनम् सत्यार्जवदयादानादीनि कल्याणानि सत्येन लभ्यत इत्यादिनिर्वचनम् दैन्यविपर्य्ययोऽनवसादः नायमात्मा बलहीनेन लभ्यत इति निर्वचनम् तद्विपर्य्ययजा तुष्टिरनुद्धर्षः शान्तो दान्त इति निर्वचनम् ॥ ६२ ॥

जिसमें निरतिशय आनन्द है, जो सबहीका प्रिय है, जो अनन्य प्रयोजन विशिष्ट, एवं जिसके प्रभावसे सब इतर वस्तुमें वितृष्णाका उदय होता है । तादृश ज्ञान विशेषही भक्ति है । विवेकादिकी सहायतामें उसकी सिद्धि होती है । यह वाक्यकार कहते हैं । जैसे विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, अङ्कन, कल्याण, अनवसाद और अनुद्धर्ष एवं निर्व्वचन इन सब उपायोंसे भक्ति होती है । उनमें आत्मा दुष्ट अन्नसे सत्वशुद्धिका नाम विवेक है। इस विषयमें निर्व्वचन यह है, जो आहारशुद्धिसे सत्वशुद्धि एवं सत्वशुद्धिमे ध्रुवा स्मृति

तदेवमेवंविधनियमविशेषसमासादितपुरुषोत्तमप्रसादविध्वस्त-तमःस्वान्तस्य अनन्यप्रयोजनानवरतनिरतिशयप्रियवदात्मप्रत्ययावभासतापन्नध्यानरूपया भक्त्या पुरुषोत्तमपदं लभ्यत इति सिद्धम् । तदुक्तं यामुनेन—उभयपरिकर्मितस्वान्तस्यैकान्तिकात्यन्तिकभक्तियोगलभ्य इति ज्ञानकर्मयोगसंस्कृतान्तःकरणस्येत्यर्थः ॥ ६३ ॥

एवंविध नियम विशेषके साहचर्य्यसे पुरुषोत्तमकी प्रसन्नता होनेपर, लोगोंके अन्तस्थ अन्धकार समूहका नाश होता है । तब, अनन्य प्रयोजन समेत निरवच्छिन्न निरतिशय प्रियतुल्य आत्मप्रभावके अवभास द्वारा ध्यानरूप भक्तिका उदय होता है, उसीमें वह पुरुषोत्तम पद लाभ होता है, यह सिद्ध हुआ । स्वयं यामुनने यही कहा है—जिसका अन्तः करण ज्ञान और कर्म्मयोग सहायसे सविशेष मार्जित और उन्नत हुआ है, वह व्यक्ति एकान्तिक आत्यान्तिक भक्तियोगद्वारा लाभ करता है, इत्यादि ॥ ६३ ॥

किं पुनर्ब्रह्म जिज्ञासितव्यमित्यपेक्षायां लक्षणमुक्तं जन्माद्यस्य यत इति । जन्मादीति सृष्टिस्थितिप्रलयं तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः अस्याचिन्त्यविविधरचनारच्यस्य नियतदेशकालभोगब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तक्षेत्रज्ञमिश्रस्य जगतः यतो यस्मात् सर्वेश्वरात् निखिलहेयप्रत्यनीकस्वरूपात् सत्यसङ्कल्पाद्यनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणात् सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः पुंसः सृष्टिस्थितिप्रलयाः प्रवर्त्तन्त इति सूत्रार्थः ॥ ६४ ॥

किसलिये ब्रह्म जिज्ञासा करनी चाहिये, इस अपेक्षामें कहते हैं, कि वह परमेश्वर, निखिल हेय वस्तुके परिपन्थि स्वरूप, सत्यसङ्कल्प प्रभृत्ति अवधिशून्य अतिशय असंख्येय कल्याण गुणका आधार, सर्व्वज्ञ, सर्व्वशक्तिविशिष्ट पुरुषसे यह आचिन्त्य विविध रचना रच्य, नियत देश काल भोग ब्रह्मादि स्तम्ब पर्य्यन्त क्षेत्रज्ञ समेत जगत्का सृष्टि स्थिति प्रलय प्रवर्त्तित होता है इत्यादि ॥ ६४ ॥

इत्थम्भूते ब्रह्मणि किं प्रमाणमिति जिज्ञासायां शास्त्रमेव प्रमाणमित्युक्तं शास्त्रयोनित्वादिति । शास्त्रं योनिः कारणं प्रमाणं यस्य तच्छास्त्रयोनि तस्य भावस्तत्त्वं तस्माद् ब्रह्मज्ञानकारणा-

त्मज्ञानकारणत्वात् शास्त्रस्य तद्योनित्वं ब्रह्मण इत्यर्थः । न च ब्रह्मणः प्रमाणान्तरगम्यत्वं शङ्कितुं शक्यमतीन्द्रियत्वेन प्रत्यक्षस्य तत्र प्रवृत्त्यनुपपत्तेः नापि महार्णवादिकं सकर्तृकं कार्य्यत्वात् घटवत् इत्यनुमानस्य पूतिकूष्माण्डायमानत्वात् । तल्लक्षणं ब्रह्म, यतो वा इमानि भूतानीत्यादिवाक्यं प्रतिपादयतीति स्थितम् ॥ ६५ ॥

ब्रह्म जो एवं विध गुणविषय, उसका प्रमाण क्या ? इसके उत्तरमें कहते हैं, शास्त्रही उसका प्रमाण है । फलतः शास्त्रद्वारा ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान दोनोंही विनिष्पादित होतें है । इसकारण शास्त्रही ब्रह्मकी योनि है, या नहीं, प्रमाण । इसके भिन्न ब्रह्मका अन्यविध प्रमाण शङ्का नहीं किसी जासकती । क्योंकि, वह अतीन्द्रिय है । इसकारण उसमें प्रत्यक्ष प्रवृत्ति सिद्ध नही होती । पुनः कार्य्यवशात् घटकी नाईं महासमुद्रादि भी कर्तृ विशेषसे समुत्पन्न हुआ है, इत्यादि अनुमान प्रति कूष्माण्डके तुल्य सदा हेयभावापन्न, इस कारण उसमें इसप्रकार अनुमानका भी किसी तरह अवसर नहीं । इस विषयमें श्रुति प्रमाण यह है जो, जिससे यह दृश्यमान भूत प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है इत्यादि ॥ ६५ ॥

यद्यपि ब्रह्म प्रमाणान्तरगोचरतां नावतरति तथापि प्रवृत्तिनिवृत्तिपरत्वाभावसिद्धरूपं ब्रह्म न शास्त्रं प्रतिपादयितुं प्रभवतीति एतत्पर्य्यनुयोगपरिहारायोक्तं-तत्तु समन्वयादिति । तुशब्दः प्रसक्ताशङ्काव्यावृत्त्यर्थः तच्छास्त्रप्रमाणकत्वं ब्रह्मणः सम्भवत्येव कुतः समन्वयात् परमपुरुषार्थभूतस्यैव ब्रह्मणोऽभिधेयतयान्वयादित्यर्थः । न च प्रवृत्तिनिवृत्त्योरन्यतरविरहिणः प्रयोजनशून्यत्वं स्वरूपपरेष्वपि पुत्रस्ते जातः नायं सर्प इत्यादिषु हर्षभयनिवृत्तिरूपप्रयोजनत्वं दृष्टमेवेति न किञ्चिदनुपपन्नम् । दिङ्मात्रमत्र प्रदर्शितं विस्तरस्तत्त्वाकरादेवावगन्तव्य इति विस्तरभीरुणोपरम्यत इति सर्वमनाकुलम् ॥ ६६ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे रामानुजदर्शनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मका शास्त्र प्रमाणकत्व सम्भव होता है। क्योंकि, ब्रह्म परम पुरुषार्थ स्वरूप है। सुतरां अभिधेयता वशात् उसके शास्त्रके सहित घनिष्ठ सम्बन्धकता है। प्रवृत्ति निवृत्ति इन दोमेंसे अन्यतर अभाव सत्त्वमें भी प्रयोजनका अभाव होता नहीं। तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह सर्प नहीं, इत्यादि स्थानमें हर्ष और भय निवृत्तिरूप प्रयोजनवत्ता दीख पड़ती है, सुतरां कुछ भी अनुपपन्न नहीं, इस स्थानमें दिङ्मात्र दिखलाया गया। आकरसे सविस्तार देखना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति सर्व्वदर्शनसंग्रहमें रामानुजका दर्शन समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अथ पूर्णप्रज्ञदर्शनम् ॥ ५ ॥

तदेतद्रामानुजमतं जीवाणुत्वदासत्ववेदापौरुषेयत्वसिद्धार्थबोधकत्वस्वतःप्रमाणत्वप्रमाणत्रित्वपाञ्चरात्रोपजीव्यत्वप्रपञ्चभेदसत्यत्वादिसाम्येऽपि परस्परविरुद्धभेदादिपक्षत्रयकक्षीकारेण क्षपणकपक्षनिक्षिप्तमित्युपेक्षमाणः स आत्मा तत्त्वमसीत्यादेर्वेदान्तवाक्यजातस्य भङ्ग्यन्तरेणार्थान्तरपरत्वमुपपाद्य ब्रह्ममीमांसाविवरणव्याजेनानन्दतीर्थः प्रस्थानान्तरमास्थित। तन्मते हि द्विविधतत्त्वं स्वतन्त्रास्वतन्त्रभेदात्। तदुक्तं तत्त्वविवेके।

स्वतन्त्रमस्वतन्त्रञ्च द्विविधं तत्त्वमिष्यते।
स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुर्निर्दोषोऽशेषसद्गुण इति ॥ १ ॥

जीवका अणुत्व, दासत्व, वेदका अपौरुषेयत्व, सिद्धार्थ बोधकत्व और स्वतः प्रमाण प्रमाणत्रित्व, पाञ्चरात्रोपजीव्यत्व, एवं प्रपञ्च भेद इत्यादि सब विषयमें रामानुजके इस मतके साथ एकता होनेपर भी, उसको परस्पर विरुद्ध भेदादि पक्षत्रयका स्वीकार किया गया है, इस कारणसे यह मत क्षपणक पक्ष निक्षिप्त समझकर उसमें उपेक्षा कर, आनन्द तीर्थने तत्त्वमसि आदि वेदान्त वाक्य परम्पराके भङ्गयन्तर क्रमसे अर्थान्तर परता उपपादित करके, ब्रह्ममीमांसा विवरण च्छलमें प्रस्थानान्तर व्यवस्थापित किया है। उनके मतमें स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र भेदसे तत्त्व दो प्रकारका है। उनमें सम्पूर्ण दोष लेश परिशून्य, अशेष सद्गुण निलय भगवान् विष्णु स्वतन्त्र नामसे परिगणित हैं ॥ १ ॥

ननु सजातीयविजातीयस्वगतनानात्वशून्यं ब्रह्मतत्त्वमिति प्रतिपादकेषु वेदान्तेषु जागरूकेषु कथमशेषसद्गुणत्वं तस्य कथ्यत इति चेन्मैवं भेदप्रमापकबहुप्रमाणविरोधेन तेषां तत्र प्रामाण्यानुपपत्तेः। तथाहि प्रत्यक्षं तावदिदमस्माद्भिन्नमिति नीलपीतादेर्भेदमध्यक्षयति । अथ मन्येथाः किं प्रत्यक्षभेदमेवावगाहते किं वा धर्मिप्रतियोगिघटितम् ॥ २ ॥

यदि कहो कि, ब्रह्मतत्त्व सजातीय, विजातीय, स्वगत और नानात्वशून्य । सब वेदान्तोंने ऐसाही प्रतिपादन किया है उन सब वेदान्तोंके जागते हुए भी किस प्रकार उसका अशेष सद्गुणत्व कहा जासकता ? इसके उत्तरमें कहते हैं, भेद प्रमापक बहुविध प्रमाण विरोध वशात इसने सब वेदान्तोका इस विषयमे प्रामाण्यकी उपपत्ति नही होती । उसी प्रकार, इससे यह भिन्न इत्यादि विधानसे नील पीतादिका भेद निर्दिष्ट हुआ है । इस स्थानमें प्रत्यक्ष भेद या धर्मिप्रतियोगिघटित भेद कल्पित हुआहै । इसके उत्तरमें कहा जासकताहै, प्रत्यक्षभेद कल्पित होता नही क्योंकि धर्मिप्रति योगिकी प्रतिपत्ति व्यतिरेकसे तत्सापेक्ष भेदका अध्यवसाय सम्भाव्य नहीं होता ॥ २ ॥

न प्रथमः धर्मिप्रतियोगिप्रतिपत्तिमन्तरेण तत्सापेक्षस्य भेदस्याशक्याध्यवसायत्वात् । द्वितीयोऽपि धर्मिप्रतियोगिग्रहणपुरःसरं भेदग्रहणमथवा युगपत् तत्सर्वग्रहणम् । न पूर्वः बुद्धेर्विरम्य व्यापाराभावात् अन्योन्याश्रयप्रसङ्गाच्च । नापि चरमः कार्य्यकारणबुद्ध्योर्यौगपद्याभावात । धर्मिप्रतीतिर्हि भेदप्रत्ययस्य कारणं सन्निहितेऽपि धर्मिणि व्यवहितप्रतियोगिज्ञानमन्तरेण भेदस्याज्ञातत्वेनान्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्य्यकारणभावावगमात् ॥ ३ ॥

पदार्थकी ज्ञानव्यतिरेक द्वारा कार्य्य कारणभाव अवगत होजाता हैं। उसके सहकारसे अन्वय और व्यतिरेक (Positine and Nigature) द्वारा कार्य्य कारण भाव अव-गत होजाता है ॥ ३ ॥

तस्मान्न भेदप्रत्यक्षं सुप्रसरमिति चेत् किं वस्तुस्वरूपभेदवादिनं प्रति इमानि दूषणान्युद्घुष्यन्ते किं धर्मिभेदवादिनं प्रति प्रथमे चोरापराधान्माण्डव्यनिग्रहन्यायापातः भवदभिधीयमानदूषणानां तद्विषयत्वात्। ननु वस्तुस्वरूपस्यैव भेदत्वे प्रतियोगिसापेक्षत्वं न घटते घटवत् प्रतियोगिसापेक्ष एव सर्वत्र भेदः प्रथत इति चेन्न प्रथमं सर्वतोविलक्षणतया वस्तुस्वरूपे ज्ञायमाने प्रतियोग्यपेक्षया विशिष्टव्यवहारोपपत्तेः। तथाहि परिमाणवटितं वस्तुस्वरूपं प्रथममवगम्यते पश्चात् प्रतियोगिविशेषापेक्षया ह्रस्वं दीर्घमिति तदेव विशिष्य व्यवहारभाजनं भवति ॥ ४ ॥

इस कारण, यदि कहो कि, भेद प्रत्यक्ष सुप्रसर नहीं तो इसको उत्तर कहा जावे, वस्तु स्वरूप भेद वादीको नही, धर्म्मि भेदवादीको दूषित करते हो ? यदि प्रथम होता है, तो चोरके अपराधसे माण्डव्य निग्रह न्यायसे संघटित होताहै। इसका कारण यह है जो, तुम्हारा प्रयोजित दूषण सब सर्व्वथा उसके अविषयीभूत । यदि कहो कि, वस्तु स्वरूपके ही भेदसे की नाई, प्रतियोगि सापेक्ष पक्षत्व संघटित नहीं होता । सर्व्वत्र प्रतियोगि सापेक्ष भेद प्रसिद्ध हैं। इसका उत्तर यह है, जो प्रथम सर्वतोभावसे वैलक्षण्य वशातः वस्तु स्वरूप परिज्ञात होनेपर, प्रतियोगीकी अपेक्षामें विशिष्ट व्यवहारकी उपपत्ति होती हैं । उसी प्रकार पश्चात् प्रतियोगि विशेषकी अपेक्षामें, ह्रस्व दीर्घ इत्यादि विशिष्ट व्यवहारका संघटन होता है ॥ ४ ॥

तदुक्तं विष्णुतत्त्वनिर्णये—न च विशेषणविशेष्यतया भेदसिद्धिः। विशेषणविशेष्यभावश्च भेदापेक्षधर्मिप्रतियोग्यपेक्षया भेदसिद्धिः भेदापेक्षञ्च धर्मिप्रतियोगित्वमित्यन्योन्याश्रयतया भेदस्यायुक्तिः पदार्थस्वरूपत्वाद्भेदस्येत्यादिना। अतएव गवार्थिनो गवयदर्शनान्न प्रवर्त्तन्ते गोशब्दञ्च न स्मरन्ति। न च नीरक्षीरादौ

स्वरूपे गृह्यमाणे भेदप्रतिभासोऽपि स्यादिति भणनीयं समानाभिहारादिप्रतिबन्धकबलाद्भेदभानव्यवहाराभावोपपत्तेः ॥ ५ ॥

सो विष्णुतत्त्वनिर्णयनामक पुस्तकमें कहा है:—जैसे विशेषण विशेष्यताद्वारा भेदकी सिद्धि नही होती । क्योंकि, विशेषण विशेष्यभाव भेद सापेक्ष । धर्म्मीके प्रतियोगीकी अपेक्षामें जैसे भेदकी असिद्धि होती है, धर्म्मके प्रतियोगित्व उसी प्रकार एकमात्र भेदसापेक्ष है इस प्रकार. परस्पर एक दूसरेका आश्रय भेद सिद्ध होजाता है । अतएव गवार्थी कभी गवयदर्शनमें प्रवृत्त नहीं होता; एवं गो शब्दका स्मरण नहीं करता । जल और दूधमें स्वरूप गृह्यमाण होनेपर भेद प्रतिभास होजाता, ऐसा भी नही कहा जासकता । क्योंकि समान अभिहारादि प्रतिबन्धक बलसे भेद ज्ञानका व्यवहाराभाव सिद्ध होजाता है ॥ ५ ॥

तदुक्तम्—

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्चेति ॥ ६ ॥

इसीप्रकार कहा है अतिदूर सामीप्य, इन्द्रियविघात, अनवस्थितचित्तता, सूक्ष्मत्त्व, व्यवधान, अभिभव और समान अभिहार, इन सब कारणोंसे यथावत् ग्रहणका व्यभिचार होजाता है ॥ ६ ॥

अतिदूराद् गिरिशिखरवर्त्तितर्वादौ अतिसामीप्याल्लोचनाञ्जनादौ इन्द्रियघाताद्विद्युदादौ मनोऽनवस्थानात् कामाद्युपप्लुतमनस्कस्य स्फीतालोकवर्त्तिनि घटादौ सौक्ष्म्यात् परमाण्वादौ व्यवधानात् कुड्याद्यन्तर्हिते अभिभवात् दिवा प्रदीपप्रभादौ समानाभिहारात् नीरक्षीरादौ यथावद् ग्रहणं नास्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

भवतु वा धर्मभेदवादस्तथापि न कश्चिद्दोषः धर्मिप्रतियोगित्वे धर्मभेदनानवसम्भवात् । न च धर्मभेदवादे तस्य तस्य भेदस्य भेदान्तरभेद्यत्वेनानवस्था दुरवस्था स्यादित्या-

स्थेयं भेदान्तरप्रसक्तौ मूलाभावात् भेदभेदिनौ भिन्नाविति व्यवहारादर्शनात् । न चैकभेदबलेनान्यभेदानुमानं दृष्टान्तभेदाविघातेनोत्थानदोषाभावात् । सोऽयं पिण्याकयाचनार्थं गतस्य खारिकातैलदातृत्वाभ्युपगम इव । दृष्टान्तभेदविमर्दे त्वनुत्थानमेव । न हि वरविघाताय कन्योद्वाहः । तस्मान्मूलक्षयाभावादनवस्था न दोषाय ॥ ८ ॥

अथवा धर्म्मभेदवाद स्वीकार करनेपर, यदि प्रतियोगी ग्रहण किया जावे, उसमें भी कोई दोष नहीं होसकता । क्योंकि, उसमें धर्म्मभेदकी प्रतीति होजाती है । धर्म्मभेदवाद सो उत्तरोत्तर भेदकी भेदान्तर भेद्यतावशात् अनवस्था या दुरवस्था भी आशङ्का किये जासकती है । क्योंकि, भेदान्तर प्रसङ्गसे मूलके अभाव वशतः भेद और भेदी दोनोंसे भिन्न होजाता है, इस प्रकार व्यवहार देखा जाता है । एक भेद द्वारा अन्य भेदका अनुमान नहीं हो सकता । क्योंकि, उनके दोषके अभाव हेतु दृष्टान्त भेदके अभिघात द्वारा उत्थान नहीं हो सकता । पिण्याक (तिलकातेल) माँगने गया, खारिका तैलका लेना स्वीकार करनेकी नाईं दृष्टान्त भेदके विमर्दनवशात अनुत्थान ही होजाता है । पुनः वरके नाशके लिये कन्याका विवाह नहीं होता । अतएव मूलके नाशके अभावके कारण अनवस्था हुई, वह दोषावह नहीं होता ॥ ८ ॥

अनुमानेनापि भेदोऽवसीयते । परमेश्वरो जीवाद्भिन्नः, तं प्रति सेव्यत्वात् यो यं प्रति सेव्यः स तस्माद्भिन्नः यथा भृत्याद्राजा । न हि सुखं मे स्यात् दुःखं मे न मनागपि इति पुरुषार्थमर्थयमानाः पुरुषाः स्थपतिपदं कामयमानाः सत्कारभाजो भवेयुः प्रत्युत सर्वानर्थभाजनं भवन्ति । यः स्वस्यात्मनो हीनत्वं परस्य गुणोत्कर्षञ्च कथयति स स्तुत्यः प्रीतः तावकरस्य तस्मा अभीष्टं प्रयच्छति । तदाह,

घातयन्ति हि राजानो राजाहमिति वादिनः ।
ददत्यखिलभोगांश्च स्वगुणोत्कर्षवादिनामिति ॥ ९ ॥

दूसरेके गुणोंकी प्रशंसा करता वह स्तुति करनेयोग्य प्रीत होकर उल्लिखित स्तोत्र करनेवालेके अभीष्टको पूरण करता है । इसीप्रकार कहा भी है,–

मैं राजा, इसप्रकारके वाक्य प्रयोग करनेमे प्रवृत्त व्यक्तियोंको राजालोग वध करते हैं । किन्तु स्वीयगुणोंको उत्तम कहनेवालोंको अखिल अभीष्ट प्रदान करदेते हैं ॥ ९ ॥

एवञ्च परमेश्वराभेदतृष्णाया विष्णोर्गुणोत्कर्षस्य मृगतृष्णिकासमत्वाभिधानं विपुलकदलीफललिप्सया जिह्वाच्छेदनं हरति एतादृशविष्णुविद्वेषणादन्धतमसप्रवेशप्रसङ्गात् । तत्तद् प्रतिपादितं मध्यमन्दिरेण महाभारततात्पर्य्यनिर्णये–

अनादिद्वेषिणो दैत्या विष्णोर्द्वेषो विवर्द्धितः ।
तमस्यन्धे पातयति दैत्यानन्धे विनिश्चयादिति ॥ १० ॥

इस प्रकार परमेश्वरकी अभेदवासनामें विष्णुके गुणोत्कर्षसे मृगतृष्णिकाके समान करनेपर. उसके प्रति ऐसा विद्वेष प्रकाश जनित अन्धतमस नरकमें प्रवेश करना पड़ता है । मध्यमन्दिर, महाभारत तात्पर्य निर्णयमें इस विषयको प्रतिपादन किया है । जैसे, दैत्यगण. बहुत दिनोंसे द्वेषभावमे प्रविष्ट है । विष्णुके प्रति उनका द्वेष बढ जानेसे, उनको अन्धतम नरक मिलागा ॥ १० ॥

सा च सेवा अङ्कननामकरणभजनभेदात्त्रिविधा । तत्राङ्कनं नारायणायुधादीनां तद्रूपस्मरणार्थमपेक्षितार्थसिद्ध्यर्थञ्च । तथाच शाकल्यसंहितापरिशिष्टम् ।

चक्रं बिभर्त्ति पुरुषोऽभितप्तं बलं देवानाममृतस्य विष्णोः ।
स याति नाकं दुरितावधूय विशन्ति यद् यतयो वीतरागाः ॥ ११ ॥

देवाय येन विधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयातान्समायन् ।
येनाङ्किता मनवो लोकसृष्टिं वितन्वन्ति ब्राह्मणास्तद्वहन्ति ॥ १२ ॥

पुनः कहा है कि, सुदर्शनचक्र बाहुमें धारण करनेसे मनुष्यजन्मसे निवृत्ति होजाती है। कहनेमें क्या, मनुगणने इस चक्रके अङ्कन सहायसे लोकोंकी सृष्टि कियी ॥ १२ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं येन गच्छन्ति लाञ्छिताः ।
उरुक्रमस्य चिह्नैराङ्किता लोके सुभगा भवाम इति ॥ १३ ॥

इस चक्रसे चिह्नित होनेपर विष्णुके उस परमपदको प्राप्त होजाता है । हम लोग उसके सब चिह्नोंसे अङ्कित होनेपर संसारमें परम सौभाग्यशाली होंगे ॥ १३ ॥

अतप्ततनुर्नतदामो अश्नुते श्रितास इद्वहन्तस्तत्समासतेति तैत्तिरीयकोपनिषच्च । स्थानविशेषश्चाग्नेयपुराणे दर्शितः ।

दक्षिणे तु करे विप्रो बिभृयाच्च सुदर्शनम् ।
सव्येन शंखंच बिभृयादिति ब्रह्मविदो विदुरिति ॥ १४ ॥

तैत्तिरीयोपनिषदमें लिखा है, जो उसकी चक्रादिद्वारा शरीर इसप्रकार तपाकर चिह्नित न करनेपर उसके तेजकी स्फूर्त्ति नहीं होती । किस स्थानमें किस प्रकार वह २ चिह्न अङ्कित करना चाहिये सो अग्निपुराणमें विशेषरूपसे निर्देश किया है—जैसे,—ब्राह्मण दहिने हाथमें सुदर्शन और वामहस्तमें शंख धारण करे; वेद जाननेवाले ब्राह्मणके पक्षमें यह विधि विदित है॥ १४॥

अन्यत्र चक्रधारणे मन्त्रविशेषश्च दर्शितः ।
सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्य्यसमप्रभ ।
अज्ञानान्धस्य मे नित्यं विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥ १५ ॥

अन्यत्र चक्र धारणके लिये मंत्र भी लिखा हैं जैसेः—हे सुदर्शन ! तुम प्रचण्ड ज्वाला युक्त परम्परासे है, । एवं करोडों सूर्यकी नाईं तुम्हारी प्रभा है । मैं अज्ञानान्ध हूं । अतएव मुझे विष्णुका वह अविनाशी मार्ग दिखलाओ ॥ १५ ॥

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ।
नमितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते इति ॥ १६ ॥

हे पाञ्चजन्य ! तुम पूर्व्वमें समुद्रसे उत्पन्न हुए हो । भगवान् विष्णुने स्वयं तुम्हें धारण किया है सम्पूर्ण देवतागण तुझे नमस्कार करते हैं । तुमको प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥

नामकरणं पुत्रादीनां केशवादिनाम्ना व्यवहारः सर्वदा तन्नामानुस्मरणार्थम् । भजनं दशविधं वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्या-

यः कायेन दानं परित्राणं परिरक्षणं मनसा दया स्पृहा श्रद्धा चेति अत्रैकैकं निष्पाद्य नारायणे समर्पणं भजनम् ।

तदुक्तम्—

अङ्कनं नामकरणं भजनं दशधा च तदिति ॥ १७ ॥

नामकरण शब्दसे पुत्रादिका नाम केशवादिके नामसे रखनेका व्यवहार है । इसका उद्देश यह है जो, सदा उस परमेश्वरका नाम उस मार्गसे स्मरण रहेगा भजन दश प्रकारकाहै उनमें वाक्यसे सत्य, हित, प्रिय और स्वाध्याय ये चार प्रकारका है।अर्थात् असत्य बोलना, हित बात कहनी, प्रिय बात कहनी और वेद पाठ करना इसका नाम वाचिक भजन है । क्योंकि, भगवान् सत्य आदिके दास हैं। इसप्रकार दान, परित्राण और परिरक्षण भेदसे कायिक भजन तीनप्रकारका है । दरिद्रका दुःख मोचन; विपन्नका विपद् छुडाना, और शरणागतकी रक्षा करनी इत्यादि सदनुष्ठानसे भगवान् अवश्य ही प्रसन्न होते हैं । यही कायिक भजनको उद्देश्य है। इसी प्रकार मानसिक भजन भी तीन प्रकारका है । जैसे दया, स्पृहा और श्रद्धा । यहां स्पृहा शब्दसे विषय स्पृहा नहीं लेना: भगवान्के दासत्वमें ऐकान्तिक अभिलाषा है । इन सबको एक २ कर निष्पादन कर नारायणमें समर्पण करनेका नाम भजन है । उसीप्रकार कहा है। अङ्कन नामकरण और दशविध भजन इत्यादि ॥ १७ ॥

एवं ज्ञेयत्वादिनापि भेदोऽनुमातव्यः, तथा श्रुत्यापि भेदोऽवगन्तव्यः, सत्यमेतमनुविश्वे मदन्तिरातिं देवस्य गृणतो मघोनः सत्यासो अस्य महिमागृणे शवोयज्ञेषु विप्रराज्ये सत्य आत्मा सत्यो जीवः सत्यं भिदा सत्यं भिदा मयि वारुण्यो मयि वारुण्यो मयि वारुण्य इति मोक्षानन्दभेदप्रतिपादक श्रुतिभ्यः ।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम सामर्थ्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ १८ ॥

जगद्व्यापारवर्जंप्रभुकरणासन्निहितत्वाच्चेत्यादिभ्यश्च । न च ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवतीति श्रुतिबलाज्जीवस्य पारमैश्वर्य्यं शक्यशङ्कं सम्पूज्य ब्राह्मणं भक्त्या शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेदितिवत् संहितो भवतीत्यर्थपरत्वात् । ननु

प्रपञ्चो यदि वर्त्तेत निवर्त्तेत न संशयः ।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥ १९ ॥

प्रभु करणका असान्निध्य वशात् वे केवल जगत्की सृष्टि नहीं करसकते । ब्रह्मको जीव जाननेसे, ब्रह्म होजाता हैं इत्यादि श्रुति प्रमाणसे जीवके जगत् सृष्टि प्रभृतिरूप उक्त प्रकार परमैश्वर्य संघटित होजाता है ऐसी शङ्का नहीं कियी जासकती तो, ब्राम्हणको भक्तिके सहकारसे विशेष विधानसे पूजा करनेपर, शूद्र ब्राम्हण होजाता है, इत्यादिके तुल्य, जीवका केवल बृंहित भाव सम्पन्न होता है । यदि कहो कि, इस प्रपञ्चके उत्पन्न होनेपर, अवगाही विनष्ट होगा । यह द्वैत मायामात्र है परमार्थतः अद्वैतही है ॥ १९ ॥

इति वचनात् द्वैतस्य कल्पितत्वमवगम्यत इति चेत् सत्यं भावमनभिसन्धायाभिधानात् । तथाहि यद्युत्पद्येत तर्हि निवर्त्तेत न संशयः । तस्मादनादिरेवायं प्रकृष्टः पञ्चविधो भेदप्रपञ्चः । न चायमविद्यमानो मायामात्रत्वान्मायेति भगवदिच्छोच्यते ।

इत्यादि वाक्यमें द्वैतको कल्पित कहकर बोध होता है । इसका उत्तर यह है जो, सत्यभावके अनभिसन्धान पूर्व्वक इस प्रकार कहागया है । उसी प्रकार यदि इस प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है, तो निवृत्ति होगी उसमें सन्देह नहीं । इसी कारण यह प्रकृष्ट पांच प्रकारकी भेदसे प्रपञ्च अनादि स्वरूप है । यह कभी मायाभाव कहकर विद्याभाव नहीं ह क्योंकि, मायाशब्दसे भगवान्की इच्छा निर्दिष्ट हुई है ।

महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च ।
प्रकृतिर्वासनेत्येव तवेच्छानन्त कथ्यते ॥ २० ॥

माहामाया, अविद्या, सर्व्वलोक मोहिनी, नियति, प्रकृति और वासना, हे अनन्त । यह सब तुम्हारी इच्छा कहकर उद्दिष्ट हुआ है ॥ २० ॥

प्रकृतिः प्रकृष्टकरणाद्वासना वासयेद् यतः ।
अ इत्युक्तो हरिस्तस्य मायाऽविद्येति संज्ञिता ॥ २१ ॥

प्रकृष्टरूपसे करते हैं कहनेसे प्रकृति सबको वासित अर्थात् संसारमें लिप्त और आसक्त करती है । इसीकारण इसका नाम वासना है । अशब्दसे हरि । उसीकी माया कहनेसे इसका नाम अविद्या है ॥ २१ ॥

मायेत्युक्ता प्रकृष्टत्वात् प्रकृष्टे हि मया भिधा ।
विष्णोः प्रज्ञप्तिरेवैका शब्दैरेतैरुदीर्य्यते ॥
प्रज्ञप्तिरूपो हि हरिः सा च स्वानन्दलक्षणा ॥ २२ ॥

प्रकृष्टत्ववशात् मायानाम हुआ है क्योंकि, प्रकृष्टका नाम माया है । विष्णुकी एक मात्र प्रज्ञप्तिही माया प्रकृति उल्लिखित शब्दोंका वाच्य होजाती है । क्योंकि, वह साक्षात् विज्ञप्तिरूप है । आत्मानन्दही प्रज्ञप्तिका लक्षण है ॥ २२ ॥

इत्यादिवचननिचयप्रामाण्यबलात् सैव प्रज्ञा मानत्राणकर्त्री च यस्य तन्मायामात्रं ततश्च परमेश्वरेण ज्ञातत्वाद्रक्षितत्वाच्च न द्वैतं भ्रान्तिकल्पितं, न हीश्वरे सर्वस्य भ्रान्तिः सम्भवति विशेषादर्शननिबन्धनत्वाद् भ्रान्तेः । तर्हि तद्व्यपदेशः कथमित्यत्रोत्तरम् अद्वैतं परमार्थत इति परमार्थापेक्षया तेन सर्वस्मादुत्तमस्य विष्णुतत्त्वस्य समाभ्यधिकशून्यत्वमुक्तं भवति । तथाच परमा श्रुतिः—

जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा ।
जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा ॥ २३ ॥

मिथश्च जड़भेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः।
सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

और जड़भेद, ये पांच प्रकारका भेद भेद प्रपञ्च सत्य और अनादि है । अनादि न होनेसे, विनाशको प्राप्त होता ॥ २४ ॥

न च नाशं प्रयात्येष न चासौ भ्रान्तिकल्पितः।
कल्पितश्चेन्निवर्त्तेत न चासौ विनिवर्त्तते ॥ २५ ॥

किन्तु इसका कभी विनाश नहीं होता, एवं यह किसी प्रकार भ्रान्तिकल्पित भी नहीं यदि कल्पित होता, तो इसकी निवृत्तिभी होती ॥ २५ ॥

द्वैतं न विद्यत इति तस्मादज्ञानिनां मतम्।
मतं हि ज्ञानिनामेतन्मितं त्रातं हि विष्णुना ॥
तस्मान्मात्रमिति प्रोक्तं परमो हरिरेव त्वित्यादि ॥ २६ ॥

जो लोग कहते हैं कि द्वैत विद्यमान नहीं, वे लोग अज्ञानी है, यह ज्ञानियोंका मत है। स्वयं विष्णुने इसका मान और त्राण विधान किया है ॥ २६ ॥

तस्माद्विष्णोः सर्वोत्कर्ष एव तात्पर्य्यं सर्वागमानाम्। एतदेवाभिसन्धायाभिहितं भगवता–

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ २७ ॥

इत्यादि कारणसे विष्णुको सर्वोत्कर्षही सब शास्त्रोंका तात्पर्य्य है इसी प्रकार अभिसन्धान कर भगवाननें कहा है इस संसारमें दो पुरुष हैं क्षर और अक्षर सब भूत क्षर शब्दका वाच्य है और, स्वयं कूटस्थको अक्षर कहते हैं ॥ २७ ॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ २८ ॥

इन क्षर और अक्षरसे सर्व्वथा भिन्न उत्तम पुरुषको परमात्मा कहते हैं। वह अव्यय स्वरूप साक्षात् ईश्वर है। लोकत्रयमें अनुप्रवेशपूर्व्वक उसको धारण करते हैं ॥ २८ ॥

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ २९ ॥

जिस कारण, मैं क्षरके अतीत और अक्षरकी अपेक्षा भी उत्तम इसीसे लोक और वेद में पुरुषोत्तम कहकर प्रसिद्ध हूं ॥ २९ ॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ ३० ॥

जो व्यक्ति सर्व्वथा मोहके बहिष्कृत एवं इसी कारण मुझको उत्तम पुरुष कहकर लोग जानते हैं । वही सर्व्वज्ञ और वही सर्व्वतोभावसे भजन सेवा करता है ॥ ३० ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारतेति ॥ ३१ ॥

तुम सर्व्वथा निष्पापी इसी कारण तुम्हारे निकट अतीव गोपनीय यह शास्त्र कहा है । इसको जाननेहीसे लोकमें बुद्धिमान् होकर एवं कृतकृत्यता भी लाभ करता है ॥ ३१ ॥

महावराहेऽपि—
मुख्यश्च सर्ववेदानां तात्पर्य्यं श्रीपतौ परे ।
उत्कर्षे तु तदन्यत्र तात्पर्य्यं स्यादवान्तरमिति ॥ ३२ ॥

महावराहपुराणमे भी कहा है:—परमात्मारूपी श्रीपतिमेंही एक मात्र सबका मुख्यतात्पर्य्य है इससे भिन्न उत्कर्षमें अवान्तर अर्थात् गौण तात्पर्य्य है ॥ ३२ ॥

मुक्तौश्च विष्णोः सर्वोत्कर्षे महातात्पर्य्यम् । मोक्षो हि सर्वपुरुषार्थोत्तमः । धर्मार्थकामास्त्वनित्याः । मोक्ष एव नित्यः । तस्मान्नित्यं तदर्थाय यतेत मतिमान्नर इति भाल्लवेयश्रुतेः । मोक्षश्च विष्णुप्रसादमन्तरेण न लभ्यते । यस्य प्रसादात् परमा यत्स्वरूपात् संसारान्मुच्यते नावरैस्सुरा नाराधयन्तोऽसौ परमो विचिन्त्यो मुमुक्षुभिः कर्मपाशादमुष्मादिति नारायणश्रुतेः ।

तस्मिन् प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं
धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते ।
समाश्रिताद् ब्रह्मतरोरनन्तात्
निःसंशयं मुक्तिफलं प्रयाति इति ॥ ३३ ॥

एवं जिससे संसारकी निवृत्ति संघटित, इस कर्म्मपाशसे मुक्तिकाम पुरुषगण उस परमेश्वररूप विष्णुहीकी चिन्ता करे उसके प्रसन्न होनेसे इस संसारमें और क्या अलभ्य होसकता ? सब प्रकारका अर्थ काम तो सामान्य बात है । सुतरां उन लोगों और वस्तुओंसे प्रयोजन ही क्या रहा अनन्तस्वरूप ब्रह्मरूप गुरुके आश्रय लेनेसे, मुक्तिफल लाभ होजाता, उसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

विष्णुपुराणोक्तेश्च । प्रसादश्च गुणोत्कर्षज्ञानादेव नाभेदज्ञानादित्युक्तम् । न च तत्त्वमस्यादितादात्म्यव्याकोपः श्रुतितात्पर्य्यापरिज्ञानविजृम्भणात् ।

आह नित्यपरोक्षन्तु तच्छब्दो ह्यविशेषितः ।
त्वंशब्दश्चापरोक्षार्थं तयोरैक्यं कथं भवेत् ॥ ३४ ॥

विष्णुपुराणमें भी इसप्रकार कहाहै । फलतः उसके गुणोत्कर्षके ज्ञान होनेही पर, उसकी प्रसन्नता संग्रहमें समर्थ होजाता है । अभेद ज्ञानद्वारा कभी वह प्रसाद लाभ नहीं होता, यह कहागया है । श्रुतिके तात्पर्य्यका अपरिज्ञान विजृम्भणसे तत्त्वमस्यादि वाक्यके तादात्म्यका कहना व्यर्थ नहीं होता है । तत् शब्द नित्य परोक्षार्थ एवं त्व शब्दसे नित्य अपरोक्ष । सुतरां किस प्रकार दोनोंकी एकता होसकती? ॥ ३४ ॥

आदित्यो यूप इतिवत् सादृश्यार्था तु सा श्रुतिरिति ॥
तथाच परमा श्रुतिः—
जीवस्य परमैक्यञ्च बुद्धिसारूप्यमेव वा ।
एकस्थाननिवेशो वा व्यक्तिस्थानमपेक्ष्य वा ॥ ३५ ॥

आदित्ययूप, इस प्रकार सादृश्य अर्थहीमें यह श्रुति प्रयोजित होती है । और परमाश्रुतिमें कहा है:—जीवकी आत्यन्तिक एकता बुद्धिसारूप्य, एकस्थान निवेश व्यक्तिस्थानकी सापेक्ष है ॥ ३५ ॥

न स्वरूपैकता तस्य मुक्तस्यापि विरूपतः ।
स्वातन्त्र्यपूर्णतेऽल्पत्वपारतन्त्र्ये विरूपतेति ॥ ३६ ॥

एवं मुक्तिहोनेपर भी स्वरूपकी एकता नहीं होती । विरूपताही इसकी कारण है । स्वातन्त्र्य और पूर्णता एवं अल्पत्व और परतन्त्रता इसीका नाम विरूपता है इसमें ईश्वरकी विरूपता स्वातन्त्र्य और पूर्णता एवं जीवकी विरूपता अल्पत्व अर्थात् अपूर्णता एवं परतन्त्रता है ॥ ३६ ॥

अथवा तत्त्वमसीत्यत्र स एवात्मा स्वातन्त्र्यादिगुणोपेतत्वात् अतत्त्वमसि त्वं तत्र भवसि तद्रहितत्वादित्येकत्वमतिशयेन निराकृतम् । तदाह–

अतत्त्वमिति वा छेदस्तेनैक्यं सुनिराकृतमिति ॥ ३७ ॥

अथवा, तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यमें ज्ञानही आत्मा स्वातन्त्र्यादि गुणयुक्तताबशात् तुम-वह नहीं इस प्रकार अर्थ योगद्वारा तद्विरहितत्व प्रयुक्त, एकत्व एकवार ही निराकृत हुआ है । उसी प्रकार कहा है अथवा अतत्व, इस प्रकार छेदवशतः सर्वतो भावसे-एकताका परिहार हुआ है ॥ ३७ ॥

तत्तस्मात् दृष्टान्तवनकेऽपि स यथा शकुनिः सूत्रेण बद्ध इत्यादिना भेद एव दृष्टान्ताभिधानाय अयमभेदोपदेश इति तत्त्ववादरहस्यम् । तथाच महोपनिषत्–

यथा पक्षी च सूत्रञ्च नानावृक्षरसा यथा ।
यथा नद्यः समुद्राश्च शुद्धोदलवणो यथा ॥ ३८ ॥

और उसी प्रकार महोपनिषद्में कहा है अथवा पक्षी और सूत्र जिसप्रकार परस्पर भिन्न विविध वृक्ष और रस जैसे परस्परपृथक् अथवा नदी नदी और समुद्रमें जिस प्रकार विशेषिता अथवा शुद्धजल और लवणजल इन दोनोमें जैसे पार्थक्य है ॥ ३८ ॥

चौरापहार्य्यौ च यथा यथा पुंविषयावपि ।
तथा जीवेश्वरौ भिन्नौ सर्वदैव विलक्षणौ ॥ ३९ ॥

जीव और ईश्वररूपी हरि ये दोनों परस्पर पृथक् भावसे ज्ञात होनेपर लोकमें मुक्त होता है, नहीं तो बद्ध होजाता है । ब्रह्मा, शिव और सुरादि जितने पदार्थ जात शरीरके क्षरण वशात क्षर नामसे प्रसिद्ध हैं । केवल, लक्ष्मीके देहका क्षरण नही होता, इस कारण वह अक्षरका वाच्य है । भगवान हरि इसकी अपेक्षा भी अक्षर स्वभाव हैं ॥ ४१ ॥

स्वातन्त्र्यशक्तिविज्ञानसुखाद्यैरखिलैर्गुणैः ॥
निःसीमत्वेन ते सर्वे तद्वशाः सर्वदेवता इति ॥ ४२ ॥

वह स्वतन्त्रता, सर्व्व कर्तृकता, विज्ञान और सुखादि निखिल गुणका आधार है । उसको इन सबगुणोंकी सीमा नहीं । सबही देवता उसके वशीभुत हैं ॥ ४२ ॥

विष्णुं सर्वगुणैः पूर्णं ज्ञात्वा संसारवर्जितः ।
निर्दुःखानन्दभुङ्नित्यं तत्समीपे स मोदते ॥ ४३ ॥

इस प्रकार सब गुणोंसे पूर्ण विष्णुको विदित होनेपर संसार विनिवृत्त होता है; सब दुःखोंका एक साथ निर्णय होता है; नित्य परमानन्द भोग होता है; एवं उसका सामीप्य लाभ होता है ॥ ४३ ॥

मुक्तानाञ्चाश्रयो विष्णुरधिकाधिपतिस्तथा ।
तद्वशा एव ते सर्वे सर्वदैव स ईश्वर इति च ॥ ४४ ॥

वह विष्णु मुक्तलोगोंके आश्रय एवं सबका अद्वितीय अधिपति है । वे लोग सब सदा उनके वशीभूत होजाते हैं । वही सबका ईश्वर है ॥ ४४ ॥

एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानञ्च प्रधानत्वकारणत्वादिना युज्यते न तु सर्वमिथ्यात्वेन । न हि सत्ताज्ञानेन मिथ्याज्ञानं सम्भवति । यथा प्रधानपुरुषाणां ज्ञानाज्ञानाभ्यां ग्रामो ज्ञातः अज्ञात इत्येवमादिव्यपदेशो दृष्ट एव । यथा च कारणे पितरि ज्ञाते जानात्यस्य पुत्रमिति । अन्यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञानमित्यत्र एकपिण्डशब्दो वृथा प्रसज्येयातां मृदा विज्ञातयेत्येतावतैव वाक्यस्य पूर्णत्वात् ॥ ४५ ॥

प्रधानत्व और कारणत्व प्रभृतिवशात एक विज्ञान द्वारा सर्व्वथा सज्ञान होजाता है, परन्तु सबके मिथ्यात्वसे नही । और सत्ताज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञानसम्भव नहीं होता, जैसे प्रधानपुरुषका ज्ञान और अज्ञान द्वारा ग्राम ज्ञात और अज्ञात होता है, इसप्रकार व्यपदेश

दीखता है । पुनः कारण स्वरूप पिताको जाननेपर, उसके पुत्रको जानते हैं । सो नहीं होनेसे, हे सौम्य एक मृपिण्डके ज्ञानद्वारा सम्पूर्ण मृन्मय पदार्थ परिज्ञात होजाता है, इस स्थानमें एक और पिण्ड शब्द वृथा प्रयोजित होता है । क्योंकि एक मृत्पिण्डके ज्ञानसे, इस प्रकार न कहकर, मृत्तिकाके ज्ञानद्वारा ऐसा कहनेसे वाक्य पूरा होता है ॥ ४५ ॥

न च वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्येतत् कार्य्यस्य मिथ्यात्वमाचष्टे इत्येष्टव्यं वाचारम्भणं विकारो यस्य तत् अविकृतं नित्यं नामधेयं मृत्तिकेत्यादिकामित्येतद्वचनं सत्यमिति तथ्यस्य स्वीकारात्। अपरथा नामधेयमेवेति शब्दयोर्वैयर्थ्यं प्रसज्येत अतो न कुत्रापि जगतो मिथ्यात्वसिद्धिः । किञ्च प्रपञ्चो मिथ्येत्यत्र मिथ्यात्वं तथ्यमतथ्यं वा । प्रथमे सत्याद्वैतभङ्गप्रसङ्गः । चरमे प्रपञ्चसत्यत्वापातः । नन्वनित्यत्वं नित्यमनित्यं वा उभयथाप्यनुपपत्तिरित्याक्षेपवदयमपि नित्यसमजातिभेदः स्यात्। तदुक्तं न्यायनिर्वाणवेधसा—नित्यमनित्यभावादनित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसम इति ॥ ४६ ॥

अन्यथा, नामधेयादि शब्दका वैयर्थ्य दोषकी उपपत्ति होती है । इस कारणसे कुत्रापि जगतकी मिथ्यात्व सिद्धि सम्भव नहीं । अधिक क्या प्रपञ्च मिथ्या. इस वाक्यमें मिथ्या शब्दका प्रयोग है, सो सत्य या असत्य है ? सत्य होनेपर, सत्य अद्वैतकी भंग प्रसक्ति

अस्याः संज्ञाया उपलक्षणत्वमभिप्रेत्याभिहितं प्रबोधसिद्धौ अन्वर्थित्वात्तूपरञ्जकधर्मसमेति। तस्मात् सदुत्तरमेतदिति चेत् अशिक्षितत्रासनमेतत् दुष्टत्वमूलानिरूपणात्। तद्द्विविधं साधारणमसाधारणञ्च। तत्राद्यं स्वव्याघातकं द्वितीयं त्रिविधं युक्ताङ्गहीनत्वमयुक्ताङ्गाधिकत्वमविषयवृत्तित्वञ्चेति। तत्र साधारणमसम्भावितमेव उक्तस्याक्षेपस्य स्वात्मव्यापनानुपलम्भात्। एवमसाधारणमपि घटस्य नास्तितोक्तावस्तित्ववत् प्रकृतेऽप्युपपत्तेः। ननु प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वमभ्युपेयते नासत्त्वमिति चेत्तदेतत् सोऽयं शिरश्छेदेऽपि शतं न ददाति विंशतिपञ्चकन्तु प्रयच्छतीति शाकटिकवृत्तान्तमनुहरेत् मिथ्यात्वासत्वयोः पर्य्यायत्वादित्यलमतिप्रपञ्चेन॥ ४८॥

इस संज्ञाका उपलक्षणत्व अभिप्राय करके, प्रबोध सिद्धिमें कहा है; अर्थके आनुगुणवशतः प्रपञ्च मिथ्या है, यह माना जावे, किन्तु वह असत्व यह स्वीकार नहीं किया जासकता। इस बातके उत्तरमें माथ काटकर फेकनेसे भी, वह व्यक्ति १०० एक शत नहीं देगा; पांच वीस प्रदान करेगा, इस प्रकार शाकटिक वृत्तान्तके अनुहार किया जासकता है। क्योंकि; इसमें मिथ्यात्व और असत्व दोनोंका पर्य्याय है, जो हो, बहुत विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं॥ ४८॥

तत्राथातो ब्रह्मजिज्ञासेति प्रथमसूत्रस्यायमर्थः। तत्राथशब्दो मङ्गलार्थोऽधिकारानन्तर्य्यार्थश्च स्वीक्रियते। अतःशब्दो हेत्वर्थः।

तदुक्तं गारुडे—

अथातःशब्दपूर्वाणि सूत्राणि निखिलान्यपि।
प्रारभेत नियत्यैव तात्किमत्र नियामकम्॥ ४९॥

अधुना, अतः ब्रह्मजिज्ञासा, इस प्रथम सूत्रका अर्थ किया जाता है। अथ शब्दसे मङ्गल एवं अधिकारका आनन्तर्य बोध होता है। और अतः शब्दका अर्थ हेतु है। गरुड़ पुराण में लिखा है,—सबही सूत्र नियमानुसार अथ और अतः ये दो शब्द निन्यास सहकारसे आरम्भ करना होता है। इस विषयमें नियामक क्या है?॥ ४९॥

कश्चार्थस्तु तयोर्विद्वान् कथमुत्तमता तयोः ।
एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् यथा ज्ञास्यामि तत्त्वतः ॥ ५० ॥

इन दोनोंका अर्थ क्या ? किस प्रकार या किस लिये इनका ऐसा उत्कर्ष सम्पन्न हुआ है ? ब्रह्मन् जिसमें मैं प्रकृत (असल) प्रस्ताव को भलीभाँति समझ सकूं, ऐसी रीतिसे कहियो ॥ ५० ॥

एवमुक्तो नारदेन ब्रह्मा प्रोवाच सत्तमः ।
आनन्तर्य्याधिकारे च मङ्गलार्थे तथैव च ॥
अथशब्दस्त्वतः शब्दो हेत्वर्थे समुदीरित इति ॥ ५१ ॥

नारदके इस प्रकार पूछनेपर, ब्रह्माने उन्हें कहा कि, अथ शब्द मङ्गलार्थमें और अधिकारयो आनन्तर्यार्थ एवं अतः शब्द हेत्वर्थमें प्रयोजित होता है ॥ ५१ ॥

यतो नारायणप्रसादमन्तरेण न मोक्षो लभ्यते प्रसादश्च न ज्ञानमन्तरेण, अतो ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्येति सिद्धम् । जिज्ञास्यब्रह्मणो लक्षणमुक्तं जन्माद्यस्य यत इति । सृष्टिस्थित्यादि यतो भवति तद् ब्रह्मेति वाक्यार्थः । तथाच स्कान्दं वचः—

उत्पत्तिस्थितिसंहारा नियतिर्ज्ञानमावृतिः ।
बन्धमोक्षौ च पुरुषाद्यस्मात् स हरिरेकराडिति ॥ ५२ ॥

जिस कारण, श्रीनारायणकी प्रसन्नता भी बिना मोक्ष नहीं होती एवं ज्ञान बिना उसकी प्रसन्नता भी नहीं होती इस कारण ब्रह्म जिज्ञासा कर्त्तव्य है, यह सिद्ध हुआ । जिज्ञास्य ब्रह्मका लक्षण भी कहते हैं । जन्माद्यस्य यत इति इसका अर्थ यह है जो जिससे सृष्टि स्थित्यादि सम्पादित होती है, वही ब्रह्म है । स्कन्द पुराणमें कहा है:—जिस पुरुषसे उत्पत्ति स्थिति, संहार, नियति, ज्ञान, आवृति, बन्ध, और मुक्ति समुत्पादित होती है, वही हरि एकमात्र प्रधान नियन्ता और प्रभु है ॥ ५२ ॥

यतो वा इमानीत्यादिश्रुतिभ्यश्च । तत्र प्रमाणमप्युक्तं शास्त्रयोनित्वादिति । नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं तन्त्वौपनिषदमित्यादिश्रुतिभ्यः तस्यानुमानिकत्वं निराक्रियते । न चानुमानस्य स्वातन्त्र्येण प्रामाण्यमस्ति । तदुक्तं कौर्मे—

श्रुतिसाहाय्यरहितमनुमानं न कुत्रचित् ।
निश्चयात् साधयेदर्थं प्रमाणान्तरमेव च ॥ ५३ ॥

श्रुतिमें कहाहै कि जिससे यह दृश्यमान भूत प्रपञ्च उत्पन्न हुआहै, इत्यादि । इस विषयका प्रमाण भी निर्देश किया है । जैसे, शास्त्रयोनित्वात् इति जो व्यक्ति भेद नहीं जानता वह उस ब्रह्मस्वरूपको विचारमें समर्थ नहीं होता । इत्यादि श्रुतिद्वारा उसका अनुमानिकत्वका खण्डन हुआ है, विना श्रुतिकी सहायताके अनुमान कहीं भी नियम पूर्वक अर्थ साधनमें समर्थ एवं प्रमाणान्तर रूपसे परिगणित नहीं होता ॥ ९३ ॥

श्रुतिस्मृतिसहायं यत् प्रमाणान्तरमुत्तमम् ।
प्रमाणपदवीं गच्छेन्नात्र कार्य्या विचारणेति ॥ ९४ ॥

जो श्रुति और स्मृतिकी सहायता युक्त है वही उत्कृष्ट प्रमाणान्तर एवं वही प्रमाण मार्ग रूपमें परिगणित होता है इस विषय विचार करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ९४ ॥

शास्त्रस्वरूपमुक्तं स्कान्दे–
ऋग्यजुःसामाथर्वञ्च भारतं पाञ्चरात्रकम् ।
मूलरामायणञ्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ॥ ९५ ॥

प्रकृत शास्त्र किसको कहते हैं, स्कन्द पुराणमें सो कहा है । जैसे, ऋक्, यजु; साम, अथर्व, महाभारत, पाञ्चरात्र, मूल रामायण, इन्हीं सबको शास्त्र कहते हैं ॥ ९५ ॥

यच्चानुकूलने तस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्त्तितम् ।
अतोऽन्यो ग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं कुवर्त्म तदिति ॥ ९६ ॥

जो इन सबके अनुकूल हों, वे भी शास्त्र नामसे कहे जाते हैं । अत एव अन्यप्रकारके विस्तारको शास्त्र नहीं कहते । वह कुमार्ग मात्र है ॥ ९६ ॥

तदनेनानन्यलभ्यः शास्त्रार्थ इति न्यायेन भेदस्य प्राप्तत्वेन तत्र न तात्पर्य्यं किन्त्वद्वैत एव वेदवाक्यानां तात्पर्य्यमिति अद्वैतप्रत्याशा प्रतिक्षिप्ता अनुमानादीश्वरस्य सिद्धाभावेन तद्भेदस्यापि ततः सिद्ध्यभावात् । तस्मान्न भेदानुवादकत्वमिति तत्परत्वमवगम्यते । अतएवोक्तम्--

सदागमैकविज्ञेयं समतीतक्षराक्षरम् ।
नारायणं सदा वन्दे निर्दोषाशेषसद्गुणमिति ॥ ९७ ॥

उक्त वाक्यानुसार शास्त्रार्थ अनन्यलभ्य इस प्रकार न्यायानुसार भेद प्राप्तिहेतु उसमें तात्पर्य्य नहीं; किन्तु अद्वैतही वेदवाक्यका तात्पर्य्य है, इस प्रकार अद्वैत प्रत्याशाका प्रतिक्षेप

किया गया है । क्योंकि अनुमानद्वारा ईश्वर सिद्धिके अभाववशात उस भेद सिद्धिका भी अभाव होजाता है । इसी कारण, भेदानुवादकत्त्व तत्परत्त्व, कहकर परिगणित नहीं होता । इसी कारण कहा है ॥ ५७ ॥

शास्त्रस्य तत्र प्रामाण्यमुपपादितं तत्तु समन्वयादिति । समन्वय उपक्रमादिलिङ्गम् उक्तं बृहत्संहितायाम् ।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णय इति ॥ ५८ ॥

उसी स्थानमें शास्त्रका प्रामाण्य उपपादित हुआ है । जैसे, तत्तु समन्वयादिति यहां समन्वय शब्दसे उपक्रमादि लिङ्ग । बृहत् संहितामें कहा है, उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति इन सबके तात्पर्य्य निर्णयमें लिङ्ग स्वरूप अर्थात् इनके द्वारा तात्पर्य्य निर्णय करना होता है ॥ ५८ ॥

एवं वेदान्ततात्पर्य्यवशात् तदेव ब्रह्म शास्त्रगम्यमित्युक्तं भवति । दिङ्मात्रमत्र प्रादर्शि शिष्टमानन्दतीर्थभाष्यव्याख्यानादौ द्रष्टव्यं ग्रन्थबहुत्वभियोपरम्यत इति । एतच्च रहस्य पूर्णप्रज्ञेन मध्यमन्दिरेण वायोस्तदीयावतारम्मन्येन निरूपितमिति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार वेदान्तके तात्पर्य्य वशतः वही ब्रह्म शास्त्रसे प्रतिपाद्य हो जाता है, यह कहा गया है । फलतः, प्रसङ्गतः दिङ्मात्र दिखलाया गया । अवशिष्ट आनन्द तीर्थके भाष्य और व्याख्यान प्रभृतिमें देखना चाहिये । ग्रन्थ विस्तार भयसे यहां निवृत्त हुआ । पूर्णप्रज्ञ मध्य मन्दिर अपनेको वायुका तीसरा अवतार समझते हैं । इन्होंने यह रहस्य निरूपण किया है ॥५९॥

प्रथमस्तु हनूमान् स्यात् द्वितीयो भीम एव च ।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयश्च भगवत्कार्य्यसाधक इति ॥
एतदभिप्रेत्य तत्र तत्र ग्रन्थसमाप्ताविदं पद्यं लिख्यते ।
यस्य त्रीण्युदितानि वेदवचने दिव्यानि रूपाण्यलं
बट् तद्दर्शतमित्थमेव निहितं देवस्य भर्गो महत् ।
वायो रामवचोनयं प्रथमकं पृक्षो द्वितीयं वपु-
र्मध्वो यत्तु तृतीयमेतदमुना ग्रन्थः कृतः केशवे ॥ ६० ॥

जैसेः—प्रथम हनुमान्, द्वितीय भीम, एवं तृतीय पूर्णप्रज्ञ भगवान्के कार्य्यसाधक हैं इस प्रकार अभिप्राय करके, सर्वत्रही ग्रन्थसमाप्तिमें निम्नलिखित पद्य लिखे२ रहते हैंः—वेदवचनमें उसका तीन प्रकार दिव्यरूप सविशेष समुदित हुआ है, रामभक्त हनूमान् उनमें प्रथम, भीम द्वितीय, एवं मध्यमन्दिर तृतीय हैं ॥ ॥ ६० ॥

एतत्पद्यार्थस्तु बलित्थातद्वपुलियाधि दर्शितं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनीत्यादिश्रुतिपर्य्यालोचनयावगम्यत इति । तस्मात् सर्वस्य शास्त्रस्य विष्णुतत्त्वं सर्वोत्तममित्यत्र तात्पर्य्यमिति सर्वं निरवद्यम् ॥ ६१ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पूर्णप्रज्ञदर्शनम् समाप्तम् ॥ ५ ॥

जो हो, उल्लिखित कारणोंसे विष्णुतत्त्वही सबसे श्रेष्ठ है। इसी कारण, यही तत्त्व सब शास्त्रोंका तात्पर्य्य है। यह सर्व्वथा प्रतिपादित हुआ है ॥ ६१ ॥

इति सर्व्वदर्शनसंग्रहमें पूर्णप्रज्ञदर्शन समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

अथ नकुलीशपाशुपतदर्शनम् ॥ ६ ॥

तदेतद्वैष्णवमतं दासत्वादिपदवेदनीयं परतन्त्रदुःखावहत्वान्न दुःखान्तादीप्सितास्पदमित्यरोचयमानाः पारमैश्वर्य्यं कामयमानाः पराभिहता मुक्ता न भवन्ति परतन्त्रत्वात् पारमैश्वर्य्यरहितत्वादस्मदादिवत् मुक्तात्मानश्च परमेश्वरगुणसम्बन्धिनः पुरपत्वे सति समस्तदुःखबीजविधुरत्वात् परमेश्वरवदित्याद्यनुमानं प्रमाणं प्रतिपद्यमानाः केचन माहेश्वराः परमपुरुषार्थसाधनपञ्चार्थप्रपञ्चनपरं पाशुपतशास्त्रमाश्रयन्ते। तत्रेदमादिसूत्रम्, अथातः पशुपतेः पाशुपतयोगविधिं व्याख्यास्याम इति । अस्यार्थः—अत्राथशब्दः पूर्वप्रकृतापेक्षः । पूर्वप्रकृतश्च गुरुं प्रति शिष्यस्य प्रश्नः। गुरुस्वरूपं गणकारिकायां निरूपितम् ।

पञ्चकास्त्वष्ट विज्ञेया गणश्चैकत्रिकात्मकः ।
वेत्ता नवगणस्यास्य संस्कर्त्ता गुरुरुच्यत इति ॥ १ ॥

उल्लिखित वैष्णवमतानुसार भगवानका दासत्वही करना होता है। सुतरां, वह परतन्त्र होनेसे दुःखजनक है । उसमें दुःखका अन्त होता नहीं इसी कारण उसकी [illegible]

चाहना नहीं होती । ऐसी विवेचना करनेमें उसमें रुचि नहीं होती; विशेषतः जो लोग हम लोगोंके तुल्य परमैश्वर्य्य रहित और परतन्त्र हैं वे कभी मुक्त नहीं होसक्ते, पक्षान्तरमें मुक्तात्मा पुरुष परमेश्वरके गणसम्बन्धितावशात् पुरुषत्व लाभ पुरःसर समस्त दुःख बीज नाश करे साक्षात् परमेश्वरकी नाईं होजाते हैं, इस प्रकार अनुमान प्रमाण प्रतिपादन पूर्व्वक कोई महेश्वरोपासक व्यक्तिगण परमैश्वर्य्य कामनासे वशंवद होकर परम पुरुषार्थ प्राप्तिका उपाय स्वरूप पञ्चार्थ प्रपञ्चनपर पाशुपतशास्त्रका आश्रय करते हैं । इसका प्रथम सूत्र यह है, अर्थात् इत्यादि यहां अथ शब्द पूर्व प्रकृतापेक्ष है पूर्व्व प्रकृत शब्दसे गुरुके प्रति शिष्यका प्रश्न है । अर्थात् शिष्य गुरुको जिज्ञासा करनेके पीछे, गुरुदेव पाशुपत याग विधिकी व्याख्या करते हैं इत्यादि । गुरु किसको कहते उसका लक्षण क्या इस विषयमें गण कारिकामें लिखा है जैसे, अष्ट और वृत्ति त्रय, इन सबको पञ्चक कहते हैं । जो नवगणके विशेषज्ञ और संस्कार करानेमें समर्थ हैं । उनको गुरु कहते हैं ॥ १ ॥

लाभा मला उपायाश्च देशावस्थाविशुद्धयः ।
दीक्षाकारिबलान्यष्टौ पञ्चकास्त्रीणि वृत्तय इति ॥ २ ॥

लाभ, मल, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि, दीक्षा कारिक और बल ये आठ एवं तीन वृत्ति इन सबको पञ्चक कहते हैं ॥ २ ॥

तिस्रो वृत्तय इति प्रयोक्तव्ये त्रीणि वृत्तय इति छान्दसः प्रयोगः । तत्र विधीयमानमुपायफलं लाभः ज्ञानतपोदेवनित्यत्वस्थितिशुद्धिभेदात् पञ्चविधः । तदाह हरदत्ताचार्य्यः—

ज्ञानं तपोऽथ नित्यत्वं स्थितिः शुद्धिश्च पञ्चममिति ॥ ३ ॥

इनमें विधीयमान उपाय फलका नाम लाभ है वह ज्ञान, तपस्या, नित्यत्व, स्थिति और शुद्धिभेदसे पांच प्रकारका है । हरदत्ताचार्य्यने कहा है ज्ञान, तपस्या, नित्यत्व, स्थिति और शुद्धि ये पांच इत्यादि ॥ ३ ॥

आत्माश्रितो दुष्टभावो मलः । स मिथ्याज्ञानादिभेदात् पञ्चविधः । तदप्याह--

साधकस्य शुद्धिहेतुरुपायः वासचर्य्यादिभेदात् पञ्चविधः।
तदप्याह--

वासचर्य्या जपो ध्यानं सदा रुद्रस्मृतिस्तथा।
प्रतिपत्तिश्च लाभानामुपायाः पञ्च निश्चिता इति ॥ ५ ॥

साधकके शुद्धि हेतुको उपाय कहते हैं। वह भी वासचर्य्यादि भेदसे पांच प्रकारका है। जैसे वासचर्य्या, जप, ध्यान, सदा रुद्रका स्मरण करना, प्रतिपत्ति, इन्हीं पांचको लाभका उपाय कहते हैं ॥ ५ ॥

येनार्थानुसन्धानपूर्वकं ज्ञानतपोवृद्धी प्राप्नोति स देशो गुरुजनादिः। यदाह--

गुरुर्जनो गुहादेशः श्मशानं रुद्र एव चेति ॥ ६ ॥

जिसके द्वारा अर्थानुसन्धानपूर्व्वक ज्ञान और तपस्याकी वृद्धि होती है, उसका नाम देश है। जैसे गुरुजनादि। उसी प्रकार कहा है गुरुजन, गुहा, श्मशान और रुद्र इनको देश कहते हैं ॥ ६ ॥

आलाभप्राप्तेरेकत आदौ यदवस्थानं सावस्था व्यक्तादिविशेषेण विशिष्टा। तदुक्तम्–

व्यक्ताव्यक्तजपादानं निष्ठा चैव हि पञ्चममिति ॥ ७ ॥

जबतक लाभ प्राप्ति न हो तबतक इन सबके एकमादिमें जो अवस्थान है उसका नाम अवस्था है यह अवस्था व्यक्तादि भेद विशिष्ट है जैसे, व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा ॥ ७ ॥

मिथ्याज्ञानादीनामत्यन्तव्यपोहो विशुद्धिः। सा प्रतियोगिभेदात् पञ्चविधा। तदुक्तम्--

अज्ञानस्याप्यसङ्गस्य हानिः सङ्करस्य च।
च्युतिर्हानिः पशुत्वस्य शुद्धिः पञ्चविधा स्मृतेति ॥ ८ ॥

मिथ्याज्ञानादिके आत्यन्तिक विनाशका नाम विशुद्धि है। वह प्रतियोगि भेदसे पांच प्रकारका है जैसे–अज्ञान हानि, असङ्गच्युति, सङ्करविनाश, पशुत्वस्खलन, एवं [illegible] ॥ ८ ॥

दीक्षाकारिपञ्चकं चोक्तम्–

द्रव्यं कालः क्रिया मूर्त्तिर्गुरुश्चैव हि पञ्चम इति ॥ ९ ॥

दीक्षाकारिक पञ्चकने भी निर्देश किया है--जैसे, द्रव्य, काल, क्रिया, मूर्ति और गुरु इन पांचोंका नाम दीक्षाकारक पञ्चक है ॥ ९ ॥

बलपञ्चकञ्च—

गुरुभक्तिः प्रसादश्च मतेर्द्वन्द्वजयस्तथा।
धर्मश्चैवाप्रसादश्च बलं पञ्चविधं स्मृतमिति ॥ १० ॥

बलपञ्चक जैसे, गुरुभक्ति, मनकी प्रसन्नता, सुखदुःखादि द्वन्द्वजय धर्म्म और अप्रसाद इन पांचोंकानाम बल है ॥ १० ॥

पञ्चमललघूकरणार्थं मानामानविरोधिनोऽन्नार्जनोपाया वृत्तयः भैक्ष्योत्सृष्टयथालब्धाभिधा इति। शेषमशेषमाकर एवावगन्तव्यम् ॥ ११ ॥

पाच प्रकारका मल लघूकरणार्थ मानामानविरोधि अन्नार्जनोपायका नाम वृत्ति है। तद्गत वृत्ति भैक्ष्य उत्सृष्ट और यथालब्ध नामसे विख्यात है अर्थात् भिक्षाद्वारा, उत्सृष्ट संग्रह द्वारा अन्न उपार्जन करना चाहिये। इस कारण अन्य किसी प्रकार आयास या यत्न नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥

अत्राथशब्देन दुःखान्तस्य प्रतिपादनम्। आध्यात्मिकादिदुःखव्यपोहप्रश्नार्थत्वात्तस्य पशुशब्देन कार्य्यस्य परतन्त्रवचनत्वात्तस्य पतिशब्देन कारणस्येश्वरः पतिरीशितेति जगत्कारणीभूतेश्वरवचनत्वात्तस्य। योगविधी तु प्रसिद्धौ। तत्र दुःखान्तो द्विविधः अनात्मकः सात्मकश्चेति। तत्रानात्मकः सर्वदुःखानामत्यन्तोच्छेदरूपः। सात्मकस्तु दृक्क्रिया शक्तिलक्षणमैश्वर्यम्। तत्र दृक्शक्तिरेकापि विषयभेदात् पञ्चविधोपचर्य्यते दर्शनं श्रवणं मननं विज्ञानं सर्वज्ञत्वञ्चेति ॥ १२ ॥

तत्र सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टाशेषचाक्षुषस्पर्शादिविषयं ज्ञानं दर्शनम्। अशेषशब्दाविषयं सिद्धिज्ञानं श्रवणम्। समस्तचिन्ताविषयं सिद्धिज्ञानं मननम्। निरवशेषशास्त्रविषयं ग्रन्थतोऽर्थतश्च सिद्धिज्ञानं विज्ञानम्। उक्तानुक्ताशेषार्थेषु समासविस्तरविभागविशेषतश्च तत्त्वव्याप्तसदोदितसिद्धिज्ञानं सर्वज्ञत्वम् इत्येषा धीशक्तिः॥ १३॥

उनमें सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट, प्रभृति अशेष चाक्षुषविषयक ज्ञानका नाम दर्शन है। इस प्रकार अशेष शब्दविषयके सिद्धिज्ञान श्रवण, समस्त चिन्ताविषयक सिद्धिज्ञान मनन, ग्रन्थतः और अर्थतः सबही शास्त्रविषयक ज्ञान विज्ञान एवं संक्षेप विस्तार विभाग और विशेषरूपसे उक्त और अनुक्त जितने विषयमें जो तत्त्व व्याप्त सार्वकालिक सिद्धिज्ञान उसको सर्वज्ञत्व कहते हैं। ये सब धीशक्ति हैं॥ १३॥

क्रियाशक्तिरेकापि त्रिविधोपचर्य्यते मनोजवित्वं कामरूपित्वं विक्रमणधर्मित्वञ्चेति। तत्र निरतिशयशीघ्रकारित्वं मनोजवित्वम्। कर्मादिनिरपेक्षस्य स्वेच्छयैवानन्तसलक्षणाविलक्षणसरूपकरणाधिष्ठातृत्वं कामरूपित्वम्। उपसंहृतकरणस्यापि निरतिशयैश्वर्य्यसम्बन्धित्वं विक्रमणधर्मित्वमित्येषा क्रियाशक्तिः॥ १४॥

क्रियाशक्ति एक होनेपर भी तीन प्रकारकी है जैसे मनोजवित्व, कामरूपित्व और विक्रमण धर्मित्व। उनमें निरतिशय शीघ्रकारित्वको मनोजवित्व कहते हैं। कर्म्मादि निरपेक्ष होनेपर, स्वेच्छा क्रमहीसे अनेक प्रकारसे सलक्षण और विलक्षण सरूपकरणमें जो अधिष्ठातृत्व उसका नाम कामरूपित्व है। करणसमुदाय उपसंहृत होनेपर, जो निरतिशय ऐश्वर्य्य सम्बन्ध संघटन होजाताहै उसको विक्रमण धर्म्मित्व कहते हैं—येही कईएक क्रियाशक्ति हैं॥ १४॥

वदस्व तन्त्रं सर्वं कार्य्यं त्रिविधविद्या कला पशुश्चेति। तत्र पशुगणो विद्या। सापि द्विविधा बोधाबोधस्वभावभेदात। बोधस्वभावा विवेकाविवेकप्रवृत्तिभेदात द्विविधा। तत्र या विवेकप्रवृत्तिः प्रमाणमात्रव्यङ्ग्या चित्तत्युच्यते। चित्तेन हि सर्वः प्राणी बाह्यार्थात्मकप्रकाशानुगृहीतं सामान्येन विवेचितमविवेचितञ्चार्थं चेतयते इति। पशवर्थधर्माधर्मिका पुनरबोधात्मिका

विद्या स्वशास्त्रं येनोच्यते चेतनपरतन्त्रत्वे सत्यचेतना कला। सापि द्विविधा कार्य्याख्या कारणाख्या चेति। तत्र कार्य्याख्या दशविधा। पृथिव्यादीनि पञ्च तत्त्वानि रूपादयः पञ्च गुणाश्चेति। कारणाख्या त्रयोदशविधा। ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकम् अध्यवसायाभिमानसङ्कल्पाभिधवृत्तिभेदात् बुद्ध्यहङ्कारमनोलक्षणमन्तःकरणत्रयञ्चेति। पशुत्वसम्बन्धी पशुः। सोऽपि द्विविधः साञ्जनो निरञ्जनश्चेति। तत्र साञ्जनः शरीरेन्द्रियसम्बन्धी निरञ्जनस्तु तद्रहितः। तत्प्रपञ्चस्तु पञ्चार्थभाष्यदीपिकादौ द्रष्टव्यः। समस्तसृष्टिसंहारानुग्रहकारि कारणं तस्यैकस्यापि गुणकर्मभेदापेक्षया विभाग उक्तः पतिः साद्य इत्यादिना। तत्र पतित्वं निरतिशयदृक्क्रियाशक्तिमत्त्वं तेनैश्वर्य्येण नित्यसम्बन्धित्वम् आद्यत्वमनागन्तुकैश्वर्य्यसम्बन्धित्वम् इत्यादर्शकारादिभिस्तीर्थकरैर्निरूपितम्॥ १८॥

जितने अस्वतन्त्र पदार्थ हैं वे सब तीन प्रकारके हैं विद्या कला और पशु इनमें पशुगण विद्या दो प्रकारकी है, बोध स्वभावा और अबोध स्वभावा। बोधस्वभावा और भी दो प्रकारकी है। जैसे, विवेकप्रवृत्ति और अविवेकप्रवृत्ति। इनमें विवेकप्रवृत्तिको चित्त कहते हैं। क्योंकि, चित्तद्वारा ही सम्पूर्ण प्राणी सामान्यतः विवेचित और अविवेचित विषयक

चित्तद्वारेणात्मेश्वरसम्बन्धो योगः । स च द्विविधः क्रियालक्षणः क्रियोपरमलक्षणश्चेति । तत्र जप्यध्यानादिरूपः क्रियालक्षणः क्रियोपरमलक्षणस्तु संविद्गत्यादिसंज्ञितः धर्मार्थसाधकव्यापारो विधिः । स च द्विविधः प्रधानभूतो गुणभूतश्च । तत्र प्रधानभूतःसाक्षाद्धर्महेतुः चर्य्या सा द्विविधा व्रतं द्वाराणि चेति । तत्र भस्मस्नानशय्योपहारजपप्रदक्षिणानि व्रतम् । तदुक्तं भगवता नकुलीशेन । भस्मना त्रिषवणं स्नायीत भस्मनि शयीतेति ॥ १६ ॥

चित्तद्वारा आत्मा और ईश्वरका नाम योग है । वह दो प्रकारका है । क्रियालक्षण और क्रियोपरम लक्षण । उनमें जप और ध्यानादि रूपसे नाम क्रिया लक्षण और संविद् गति प्रभृतिका नाम क्रियोपलक्षण है । धर्म्मार्थसाधक व्यापारका नाम विधि है । विधि भी दो प्रकारका है । प्रधान भूत और अप्रधान भूत । उनमें साक्षात् धर्म्म हेतु चर्य्याका नाम प्रधान भूत है । वह दो प्रकारका है । व्रत और समस्त द्वार । उनमें भस्मस्नान, भस्मशयन, उपहार, जप और प्रदक्षिणा इन कतिपयका नाम व्रत है । स्वयं भगवान् नकुलीशने कहा है, जो भस्मद्वारा त्रिसन्ध्या, स्नान और भस्मही पर शयन करे ॥ १६ ॥

अत्रोपहारो नियमः । स च षडङ्गः । तदुक्तं सूत्रकारेण । हसितगीतनृत्यहुडुक्कारनमस्कारजप्यषडङ्गोपहारेण उपतिष्ठेतेति । तत्र हसितं नाम कण्ठौष्ठपुटविस्फूर्जनपुरःसरमहहहेत्यट्टहासः । गीतं गान्धर्वशास्त्रसमयानुसारेण महेश्वरसम्बन्धिगुणधर्मादिनिमित्तानां चिन्तनम् । नृत्यमपि नाट्यशास्त्रानुसारेण हस्तपादादीनामुत्क्षेपणादिकमङ्गप्रत्यंगोपांगसहितं भावाभावसमेतञ्च प्रयोक्तव्यम् । हुडुक्कारो नाम जिह्वातालुसंयोगान्निष्पाद्यमानः पुण्यो वृषनादसदृशो नादः हुडुगिति शब्दानुकारो वषडितिवत् । यत्र लौकिका भवन्ति तत्रैतत सर्वं गूढं प्रयोक्तव्यम् । शिष्टं प्रसिद्धम् । द्वाराणि तु क्राथनस्पन्दनमन्दनशृङ्गारणावितत्करणावितद्भाषणानि । तत्रासुप्तस्यैव सुप्तलिङ्गप्रदर्शनं क्राथनम् । वाय्वभिभूतस्येव शरीरावयवानां स्पन्दनं कम्पनम् । उपहतपाद-

न्द्रियस्येव गमनं मन्दनम् । रूपयौवनसम्पन्नां कामिनीमवलोक्यात्मानं कामुकमिव यैर्विलासैः प्रदर्शयति तत् शृङ्गारणम् । कार्य्याकार्य्यविवेकविकलस्येव लोकनिन्दितकर्मकरणमवितत्करणम् । व्याहतापार्थकादिशब्दोच्चारणमवितद्भापणमिति । गुणभूतस्तु चर्य्या अनुग्राहकोऽनुस्नानादिः भैक्ष्योच्छिष्टादिनिर्मितायोग्यताप्रत्ययनिवृत्त्यर्थः । तदप्युक्तं सूत्रकारेण । अनुस्नाननिर्माल्यलिंगधारीति ॥ १७ ॥

यहां उपहार शब्दसे नियम समझना । उसके छः अङ्ग हैं । सूत्रकारने कहा है, हसित, गीत, नृत्य, हुडुक्कार, नमस्कार, जप, इन षडङ्ग उपहारकी सहायतासे उपासना करनी चाहिये । इनमें हसित शब्दसे कण्ठ और ओष्ठके पुटके विस्फूर्जित पुरःसर अहह शब्दसे अट्टहास करना-जानना । गीत शब्दसे गान्धर्व्वशास्त्रके नियमानुसार महेश्वरके गुण और धर्म्मादि निमित्त सब चिन्ता करनी । नृत्यशब्दसे नाट्यशास्त्रके अनुसार हाथ पांव आदि सङ्क्षेपणादि अङ्ग प्रत्यङ्ग और उपाङ्ग सहित भावाभावसमेत प्रयोग करना चाहिये । हुडुक्कार शब्दसे जिह्वा और तालु इन दोनोंके संयोगमें निष्पद्यमान परम पवित्र वृषनादके तुल्य शब्द । जहां लोगोंका सञ्चार, वहां इन सबका प्रयोग अति गोपनीयभावसे करना चाहिये । इनके अतिरिक्त जप और प्रदक्षिणका अर्थ सबकोही अवगत है इस कारण उनकी स्वतन्त्र व्याख्याकी आवश्यकता नहीं । द्वार शब्दसे क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृङ्गारण, अवितत्करण और अवितद्भाषण । इनमें असुप्तका सुप्त लिङ्गके तुल्य दर्शनको क्राथन कहते हैं । इसी प्रकार वायु द्वारा अभिभूतकी नाईं शरीरके सब अवयवके स्पन्दनका नाम स्पन्दन है । [illegible] विकलकी नाईं गमन करनेको मन्दन कहते हैं । रूपयौवन शालिनी कामिनीको [illegible] कर, आत्माको जो विलास द्वारासे कामुककी नाईं लोकनिन्दित कर्म्म करनेका [illegible] ... [illegible] और व्याहत शब्दोच्चारणको अवितद्भाषण कहते हैं [illegible] ... [illegible] अनुस्नान, भैक्ष्य और उच्छिष्टादि संग्रह है । [illegible] ... [illegible] इसी प्रकार सूत्रकारने कहा है अनुस्नान [illegible] ॥ १७ ॥

[illegible] मलाभो नाम धर्मिज्ञानाभिधानम् । तत्र प्रथमसूत्र एव [illegible] । एतेषां पदार्थानां प्रमाणतः पश्चादभिधानं विस्तरः । [illegible] ... [illegible] । एतेषां यथासम्भवं लक्षणतोऽ[illegible] विस्तरः । न तु [illegible] ऽस्योऽस्मिपां-

गुणातिशयेन कथनं विशेषः। तथाहि अन्यत्र दुःखनिवृत्तिरेव दुःखान्तः इह तु पारमैश्वर्य्यप्राप्तिश्च। अन्यत्राभूत्वा भावि कार्य्यमिह तु नित्यं पश्वादि। अन्यत्र सापेक्षं कारणं इह तु निरपेक्षो भगवानेव। अन्यत्र कैवल्यादिफलको योगः इह तु पारमैश्वर्य्यदुःखान्तफलकः। अन्यत्र पुनरावृत्तिः स्वर्गादिः इह पुनरपुनरावृत्तिरूपः सामीप्यादिफलकः॥ १८॥

पहिले जो समास और विस्तारादिकी बात कही गयी है उन सबका अर्थ यह है, जो समास शब्दसे अर्थमात्राभिधान। सो पहिले सूत्रमें कहा गया है। विस्तर शब्दसे पांच पदार्थको प्रमाण अनुसार पञ्चविधान राशीकरभाष्यमें यह देखना। यथासम्भव लक्षण अनुसार किसी प्रकार सङ्कर न करके, इन सबके अभिधान करणको विभाग बलसे एवं निहित शास्त्रान्तरसे इन सबके गुणातिशय सहकारसे कथनका नाम विशेष है। अन्यत्र दुःखनिवृति कोही दुःखान्त कहा गया है, अन्यत्र होता नहीं, इस प्रकार भावी कार्य्यकी वर्णना है। किन्तु इसमे नित्य पश्वादि निर्द्दिष्टहै। अन्यत्र, अपेक्षा कारण कहा है किन्तु इसमें निरपेक्ष भगवान्हीने इसप्रकार निर्देश किया है। अन्यत्र योगको कैवल्यादि फलक कहा है। किन्तु इसमें पारमैश्वर्य्य दुःखान्तको ही योगका फल रूपसे निर्वाचित किया है। अन्यत्र पुनः आवृत्तिको स्वर्गादि कहा है। किन्तु इसमें अपुनरावृत्ति रूप और सामीप्यादि फलमें परिणत होता है, ऐसा निर्देश किया है॥ १८॥

ननु महदेतदिन्द्रजालं यन्निरपेक्षं परमेश्वरकारणमिति तथात्वे कर्मवैफल्यं सर्वकार्य्याणां समसमयसमुत्पादश्चेति दोषद्वयं प्रादुःष्यात् मैवं मन्येथाः व्यधिकरणत्वात्। यदि निरपेक्षस्य भगवतः कारणत्वं स्यात्तर्हि कर्मणो वैफल्ये किमायातम्। प्रयोजनाभाव इति चेत् कस्य प्रयोजनाभावः। कर्मवैफल्ये कारणं किं कर्मिणः किं वा भगवतः। नाद्यः ईश्वरेच्छानुगृहीतस्य कर्मणः सफलत्वोपपत्तेः। तदनुगृहीतस्य ययातिप्रभृतिकर्मवत कदाचिन्न निष्फलत्वसम्भवाच्च। न चैतावता कर्मस्वप्रवृत्तिः कर्षकादिवदुपपत्तेः ईश्वरेच्छायतत्वाच्च पशूनां प्रवृत्तेः। नापि द्वितीयः परमेश्वरस्य पर्य्याप्तकामत्वेन कर्मसाध्यप्रयोजनापेक्षाया अभावात्। यदुक्तं

समसमयसमुत्पाद इति तदप्ययुक्तम् अचिन्त्यशक्तिकस्य पर-मेश्वरस्येच्छानुविधायिन्या अव्याहतक्रियाशक्त्या कार्यकारित्वाभ्युपगमात् । तदुक्तं सम्प्रदायविद्भिः—

कर्मादिनिरपेक्षस्तु स्वेच्छाचारी यतो ह्ययम् ।
ततः कारणतः शास्त्रे सर्वकारणकारणमिति ॥ १९ ॥

यदि कहो कि, यह अपेक्षा इन्द्रजाल क्या होसकता है, जो परमेश्वर कारण निरपेक्ष ऐसा होनेसे कर्मका वैफल्य एवं सब ही कार्य्य [illegible] समयमें उत्पन्न हो ऐसा नही कह सकते, क्योंकि, कदाचित्कारणत्व होजाता है । यदि निरपेक्ष भगवान्ही कारण हो तो, क्या कर्म्मका वैफल्य आसकता है ? यदि कहो कि, ऐसा होनेसे कर्म्मका अभाव होता है, जिससे प्रयोजनका अभाव कर्म्मवैफल्य कारण होताहै कर्म्मीका नही; भग-वानका । कर्म्मी कह नही सकते । कर्म्ममात्र ही ईश्वरेच्छा अनुगृहीत । अत एव कर्म्मका सफलत्व उत्पन्न होताहै । इससे अनुगृहीत कर्म्मका ययातिप्रभृतिके कर्म्मकी नाईं कदाचित् निष्फलत्व होजावे ईश्वरेच्छाके आयत्ताधीन करनेसे, पशुगणकी प्रवृत्ति संघटित होतीहै । जो हो, किंचित् नहीं भगवानका नहीं कहसकते । क्योंकि, वह स्वेच्छा [illegible] है । सुतरां, उसका कर्म्मका प्रयोजनकी अपेक्षामें सम्पर्क नहीं । पक्षा-न्तरमें सम समय समुत्पादमें जो उल्लेख किया गया है वह भी युक्तियुक्त नहीहै क्योंकि, अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न परमेश्वरकी इच्छानुविधायिनी अव्याहत क्रियाशक्तिद्वारा कार्यकारित्व अभ्युपगत होताहै । सम्प्रदायविद् व्यक्तियोंने सो कहा है । जैसे जिस कारण वह कर्म्मादि निरपेक्ष और स्वेच्छाचारी, इसी कारण शास्त्रमें उनको सर्वकारणकारण कहा है॥ १९ ॥

ननु दर्शनान्तरेऽपीश्वरज्ञानान्मोक्षो लभ्यत एवेति कुतोऽस्य विशेष इति चेन्मैवं वादीः विकल्पानुपपत्तेः । किमीश्वरविषयज्ञानमात्रं निर्वाणकारणं किंवा साक्षात्कारः अथवा यथावत्तत्त्वनिश्चयः । नाद्यः शास्त्रमन्तरेणापि प्राकृतजनवद्देवानामधिपो

ज्ञानमात्रे यथा शास्त्रं साक्षाद्दृष्टिस्तु दुर्लभा।
पञ्चार्थादन्यतो नास्ति यथावत्तत्त्वनिश्चय इति ॥ २० ॥

यदि कहो, दर्शनान्तरमें कहाहै, जो ईश्वरज्ञानसेही मोक्षलाभ होताहै। इसप्रकार पृथक्बाधको कारण क्या ऐसा नहीं कहसकते। क्योंकि, इसको इसप्रकार विकल्पकी अनुपपत्ति होजातीहै, ईश्वरविषयकज्ञान जीवके निर्वाणका कारण है या उसका साक्षात्कारही कारण है, अथवा उसका तत्त्वका यथावत् ज्ञान होनेसे, इसप्रकार मुक्तिलाभ होजातीहै? प्रथम अर्थात् ज्ञानमात्रही मुक्तिका कारण नहीं कहसकते। क्योंकि, शास्त्रनिरपेक्ष होनेपरभी प्राकृत महादेव देवगणके अधिपति, इसप्रकार ज्ञानोपपत्ति मात्रही मोक्षसिद्धि होजानेमें शास्त्राभ्यासी पुरुषकी नाईं विफलता होजावे। द्वितीय अर्थात् साक्षात्कार और निर्व्वाणका कारण नहीं कहसकते हो। क्योंकि, बहुविधिमल एकत्र होनेपर उपचित पिशित लोचन पशुगण परमेश्वरके साक्षात्कारमें समर्थ नहीं होते। तृतीयपक्षभी हमलोगोंको अभिमत नहीं क्योंकि पाशुपतशास्त्रके विना यथावत् तत्त्वनिश्चयकी भी सम्भावना नहीं। आचार्य्योंने सो कहा है। जैसे, जो वह शास्त्र देखकर, उसके ज्ञानमात्रसे परमेश्वरका साक्षात्कार हो सो सहज नहीं है। पञ्चार्थके विना अन्य उपायसे भी ठीक २ तत्त्व निर्णय करना सम्भव नहीं ॥ २० ॥

तस्मात् पुरुषार्थकामैः पुरुषधौरेयैः पञ्चार्थप्रतिपादनपरं पाशुपतशास्त्रमाश्रयणीयम् ॥ २१ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे नकुलीशपाशुपतदर्शनं समाप्तम् ॥ ६ ॥

इस कारण पुरुषार्थ काम पुरुष प्रवरवर्ग पञ्चार्थका प्रतिपादनके पीछे पाशुपतशास्त्रका आश्रय करे ॥ २१ ॥

इति सर्व्वदर्शनसंग्रहमें नकुलीशपाशुपतदर्शन समाप्तहुआ ॥ ६ ॥

अथ शैवदर्शनम् ॥ ७ ॥

तामिमं परमेश्वरः कर्मादिनिरपेक्षः कारणमिति पक्षं वैषम्यनैर्घृण्यदोषदूषितत्वात् प्रतिक्षिपन्तः केचन माहेश्वराः शैवागमसिद्धान्ततत्त्वं यथावदीक्षमाणाः कर्मादिसापेक्षः परमेश्वरः कारणमिति पक्षं कक्षीकुर्वाणाः पक्षान्तरमुपक्षिपन्ति पतिपशुपाशभेदात् त्रयः पदार्था इति। तदुक्तं तन्त्रतत्त्वज्ञैः।

त्रिपदार्थं चतुष्पाद महातन्त्रं जगद्गुरुः ।
सूत्रेणैकेन संक्षिप्य प्राह विस्तरतः पुनरिति ॥ १ ॥

परमेश्वर कर्म्मादिनिरपेक्ष कारण है । इसप्रकारका पक्ष वैषम्य और नैर्घृण्य दोषोंसे दूषित है । इसकारण कोई २ माहेश्वरसम्प्रदायमें इसमतवादको प्रतिक्षेप करतेहैं । शैवशास्त्र-प्रसिद्ध सिद्धान्ततत्त्व ठीक ठीक आलोचनापूर्वक कर्म्मादि सापेक्ष परमेश्वर कारणहै, इत्यादि पक्ष आश्रय. और उसके सहकारसे पक्षान्तरका उत्क्षेप करजातेहैं । उनलोगोंके मतमें पति, पशु और पाश भेदसे पदार्थ तीन प्रकारका है । तन्त्रतत्त्वज्ञलोगोंने इसप्रकार कहाहै, जो जगदीश्वर तीनों पदार्थोंसे विशिष्ट और पादचतुष्टयसम्पन्न महातन्त्र संक्षेपसे कर एकमात्र सूत्रही विस्तारक्रमसे वर्णन किया है ॥ १ ॥

अस्यार्थः--उक्तास्त्रयः पदार्था यस्मिन् सन्ति तत्त्रिपदार्थं विद्या-क्रियायोगचर्य्याख्याश्चत्वारः पादा यस्मिन् तच्चतुश्चरणं महात-न्त्रमिति । तत्र पशूनामस्वतन्त्रत्वात् पाशानामचैतन्यात् तद्वि-लक्षणस्य पत्युः प्रथमसुद्देशः चेतनत्वसाधर्म्यात् पशूनां तदानन्तर्य्यम् । अवशिष्टानां पाशानामन्ते विनिवेश इति क्रमनियमः ॥ २ ॥

दीक्षाद्वारा परमपुरुषार्थ प्राप्ति होतीहै । जिसकी सहायतासे पशु, पाश और ईश्वरादिका माहात्म्य विनिर्णीत होता है, उसी ज्ञानके विना दीक्षाके कभी निष्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं । इसी कारण ज्ञानका अवबोधक विद्यापाद प्रथमही निर्दिष्ट हुआ है । अनेकविध साङ्ग दीक्षाविधिका प्रदर्शक क्रियापाद उसके परेही उल्लिखित हुआ है । योगके विना अभिमत-प्राप्ति नहीं होती । इसकारण साङ्गयोगज्ञापक योगपाद क्रियापादके परेही उद्दिष्ट हुआ है । विहित अनुष्ठान और निषिद्धका त्यागरूप चर्य्याके विना योगका निर्वाह कभी नहीं होता । इसकारण, तत्प्रतिपादक चर्य्यापादका अन्तमें उल्लेख कियाहै ॥ ३ ॥

तत्र पतिपदार्थः शिवोऽभिमतः । मुक्तात्मनां विद्येश्वरादीनाञ्च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वरपारतन्त्र्यात् स्वातन्त्र्यं नास्ति । ततश्च तदनुकरणभुवनादीनां भावानां सन्निवेशविशिष्टत्वेन कार्य्यत्वमवगम्यते । तेन च कार्य्यत्वेनैषां बुद्धिमत्पूर्वकत्वमनुमीयत इत्यनुमानवशात्परमेश्वरप्रसिद्धिरुपपद्यते ॥४॥

उनमें पतिपदार्थसे शिव अभिमत है, यद्यपि विद्येश्वरादि और मुक्तात्मागणका शिवत्व है, तथापि परमेश्वरकी परतन्त्रतावशात् उनकी स्वतन्त्रता नहीं है । उसके अनुकरण भुवनादि भाव समूहसन्निवेशविशिष्ट कहकर, उन सबका कार्य्यत्व अवगत होता है । इस प्रकार कार्य्यत्ववशात उनका बुद्धिपूर्वकत्व अनुमित होता है । इस प्रकार अनुमान वशसे परमेश्वरकी प्रसिद्धि उपपन्न होजाती है । अर्थात् सबके ऊपर एक जन जो ईश्वर है, सो कार्य्य देख ही कर समझा जासकता है, क्योंकि, यह विश्वादि कार्य्य अपने आप होता नहीं । अपने आप होनेसे, इस प्रकार सुशृङ्खला वा सुव्यवस्थापूर्वक नहीं दीखती और ये सब सुशृ-[illegible], जो एक अद्वितीय बुद्धिमान् व्यक्ति रचित है सो यह बुद्धिका काम नहीं है । सो पति-[illegible]में प्रतिपादित होजाता है ॥ ४ ॥

ननु देहस्यैव तावत्कार्य्यत्वमसिद्धम् । न हि क्वचित् केनचित्कदाचिद्देहः क्रियमाणो दृष्टचरः । सत्यं तथापि न केनचित्क्रियमाणत्वं देहस्य दृष्टमिति कर्तृदर्शनापह्नवो न युज्यते तस्यानुमेयत्वेनाप्युपपत्तेः । देहादिकं कार्य्यं भवितुमर्हति सन्निवेशविशिष्टत्वात् विनश्वरत्वाद्वा घटादिवत् तेन च कार्य्यत्वेन बुद्धिमत्पूर्वकत्वमनुमातुं सुकरमेव । विमतं सकर्तृकं कार्य्यत्वात्

घटवत् यदुक्तसाधनं तदुक्तसाध्यं न यदेवं न तदेवं यथा-त्मादि । परमेश्वरानुमानप्रामाण्यसाधनानुमानमन्यत्राकारी-त्युपरम्यते ॥ ५ ॥

यदि कहो कि देहका कार्य्यत्व असिद्ध है । क्योंकि, कोई किसी देशमें देहको बनते वा करते नहीं देखता । यह बात सत्य तो है । तथापि कोई कभी करते नहीं देखता, इस प्रकार कल्पना कर, कर्तृ दर्शनका अपह्नव (किसी वस्तुके रहनेपरभी उसको नहीं करके दिखलाना) करना युक्त नहीं होता । क्योंकि, एक पुरुष कर्त्ता है, अनुमानसे उपपत्ति होजाती है । देहादिका कार्य्यत्व होना उचित ही है । क्योंकि, वह घटादिके तुल्य सन्निवेश विशिष्ट और विनश्वर है । इस प्रकार कार्य्यद्वारा बुद्धिमत्पूर्वक भी अनायासही अनुमान किया जासकता । अन्यत्रभी कहाहै, इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे ही ईश्वर सिद्ध होता है ॥ ५ ॥

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ ६ ॥

पुनः कहा है कि, जन्तुमात्री ज्ञानशून्य एवं उन अपने सुख दुःख सर्वथा स्वाधीनतारहित हैं ईश्वरप्रेरित होकर, वे सब स्वर्ग वा नरकको गमन करते हैं ॥ ६ ॥

इति न्यायेन प्राणिकृतकर्मानुपेक्षया परमेश्वरस्य कर्तृत्वोपपत्तेः न च स्वातन्त्र्यविरतिरिति वाच्यं करणापेक्षया कर्तुः स्वातन्त्र्य-विरतेरनुपलम्भात् कोपाध्यक्षापेक्षस्य राज्ञःप्रसादादिना दानवत्। यथोक्तं सिद्धगुरुभिः—

स्वतन्त्रस्याप्रयोज्यत्वं करणादिप्रयोक्तृता ।
कर्तुः स्वातन्त्र्यमेतद्धि नच कर्माद्यपेक्षकेति ॥ ७ ॥

तथाच तत्तत्कर्माशयवशाद्भोगतत्साधनतदुपादानादिविशेषज्ञः कर्त्ता अनुमानादिसिद्ध इति सिद्धम् । तदिदमुक्तं तत्र भवद्भिर्बृहस्पतिभिः—

इह भोग्यभोगसाधनतदुपादानादि यो विजानाति ।
तमृते भूतन्नहीदं पुंस्कर्माशयविपाकज्ञमिति ॥ ८ ॥

जो हो, उस २ कर्म्मकी आशावशात् भोग, उसका साधन और उपादान प्रभृति विशेषज्ञ कर्त्ता अनुमानादिसे सिद्ध होजाता है, यह सिद्ध हुआ इस पर भगवान बृहस्पतिने यह सम्बन्ध यों कहा है किः—जो भोग, भोग्य, उसका साधन और उपादानादि विशेष रूपसे जानते हैं उनके विना पुरुषका कर्म्माशय विपाक विषयमें और किसीकाभी अभिज्ञान नही ॥ ८ ॥

अन्यत्रापि—
विवादाध्यासितं सर्वं बुद्धिमत्पूर्वकर्तृकम् ।
कार्य्यत्वादावयोः सिद्धं कार्य्यं कुम्भादिकं यथेति ॥ ९ ॥

अन्यत्र भी कहाहै जो, विवादास्पदीभूत सब प्रकारकी वस्तुही बुद्धिमत्पूर्वक कर्तृताका आयत्तीकृत है । घटादिकार्य्यकी नाईं, कार्य्यत्व वशात् हमारे दोनोंहीका कार्य्यत्व सिद्ध हुआ ॥ ९ ॥

सर्वात्मकत्वादेवास्य सर्वज्ञत्वं सिद्धम् अज्ञस्य करणासम्भवात् । उक्तञ्च श्रीमन्मृगेन्द्रैः—

सर्वज्ञः सर्वकर्तृत्वात साधनाङ्गफलैः सह ।
यो यज्जानाति कुरुते स तदेवेति सुस्थितमिति ॥ १० ॥

सर्व्वात्मक कहनेसे, इसका सर्वज्ञत्वस्वभाव सिद्ध है । क्योंकि, अज्ञ कारणकी सम्भावना नही, श्रीमान् मृगेन्द्रने कहाहै कि, साधन अङ्ग और फलकेसहित सबका कर्त्ता कहनेसे उसको ज्ञ कहतेहैं । जो जिसवस्तुको जानता है, वह उसे करताहै, यही सर्वाभिमत सिद्धान्तित वाक्य है ॥ १० ॥

अस्तु तर्हि स्वतन्त्र ईश्वरः कर्त्ता स तु तावदशरीरः घटादिकार्य्यस्य शरीरवता कुलालादिना क्रियमाणत्वदर्शनात् । शरीरवत्त्वे चास्मदादिवदीश्वरः क्लेशयुक्तोऽसर्वज्ञः परिमितशक्तिः प्राप्नो-

दिति चेन्मैवं मंस्थाः अशरीरस्याप्यात्मनः स्वशरीरस्पन्दादौ कर्तृत्वदर्शनादभ्युपगम्यापि ब्रूमहे शरीरवत्त्वेऽपि भगवतो न प्रागुक्तदोषानुसङ्गः ॥ ११ ॥

अच्छा माना कि ईश्वर स्वतन्त्र कर्त्ता है. किन्तु वह शरीररहित है शरीरविशिष्ट कुम्भकारादि-द्वारा घटादिकार्य्यका क्रियमाणत्त्व देखकर, शरीरविशिष्टता माननेसे, ईश्वरको, हमलोगोकी नांई क्लेशयुक्त और, असर्वज्ञ एवं सर्व्वथा परिमितशक्तिसम्पन्न कहना किन्तु यह बात नहीं कहसकते । क्योंकि, आत्मा अशरीरीहै । तथापि, स्वशरीरास्पन्दनादिमें कर्त्तृत्त्व देखकर उसकी शरीरवत्ता माननेपरभी, वह ऐश्वर्य्यादि छः गुणोंसे परमपूर्ण कहनेसे उसको कभी हमलोगोंकी बराबर क्लेशादिउल्लिखित दोषका विषयीभूत होना नहीं पडेगा ॥ ११ ॥

परमेश्वरस्य हि मलकर्मादिपाशजालासम्भवेन प्राकृतं शरीरं न भवति किन्तु शाक्तं शक्तिरूपैरीशानादिभिः पञ्चभिर्मन्त्रैर्मस्तकादिकल्पनायामीशानमस्तकस्तत्पुरुषवक्त्रो घोरहृदयो वामदेवगुह्यः सद्योजातपाद ईश्वर इति प्रसिद्ध्या यथाक्रमानुग्रहतिरोभावादानलक्षणस्थितिलक्षणोद्भवलक्षणकृत्यपञ्चककारणं स्वेच्छानिर्मितं तच्छरीरं न चास्मच्छरीरसदृशम् ।

तदुक्तं श्रीमन्मृगेन्द्रैः--

मलाद्यसम्भवाच्छाक्तं वपुर्नैतादृशं प्रभोरिति ॥ १२ ॥

पञ्चकृत्योपयोगि पांच प्रकारके मंत्रोंसे तदीय शरीर कल्पित हुआ है । अन्यत्र लिखा है ईशान, तत्पुरुष, अघोर और वामादि इस देहका मस्तकादि है इत्यादि ॥ १३ ॥

नतु पञ्चवक्त्रस्त्रिपञ्चदृगित्यादिना आगमेषु परमेश्वरस्य मुख्यत एव शरीरेन्द्रियादियोगः श्रूयत इति चेत् सत्यं निराकारे ध्यान-पूजाद्यसम्भवेन भक्तानुग्रहकरणाय तत्तदाकारग्रहणाविरोधात् । तदुक्तं श्रीमत्पौष्करे--

साधकस्य तु रक्षार्थं तस्य रूपमिदं स्मृतमिति ॥ १४ ॥

यदि कहो कि, सब शास्त्रोंमें लिखा है, जो वह पञ्चमुख और त्रिपञ्चदृक् । इत्यादि वाक्यानुसार प्रधानतः ईश्वरका शरीर और इन्द्रियादि योग श्रूयमाण होता है, यह बात सत्य तो है । किन्तु निराकारादिका ध्यान पूजादि असम्भववशात् भक्तोंके प्रति अनुग्रह करनेके लिये उस २ आकारका स्वीकार करना किसी प्रकार विरोध सम्भव नहीं । श्रीमत्पौष्करमें कहा है, -साधनके रक्षणार्थ ही उसका रूप कल्पित होता है ॥ १४ ॥

अन्यत्रापि—

आकारवांस्त्वं नियमादुपास्यो
न वस्त्वनाकारमुपैति बुद्धिरिति ॥ १५ ॥

अन्यत्रभी कहाहै कि, तुम आकारवान् कहनेसे नियमानुसार उपास्य होते हो जिसको आकार नहीं तादृश वस्तुमें किसीप्रकार बुद्धिका प्रवेश नहीं होता ॥ १५ ॥

कृत्यपञ्चकं च प्रपञ्चितं भोजराजेन--

पञ्चविधं तत्कृत्यं सृष्टिस्थितिसंहारतिरोभावाः ।
तद्वदनुग्रहकरणं प्रोक्तं सततोदितस्यास्येति ॥ १६ ॥

भोजराज कर्तृक उल्लिखित कृत्यपञ्चक आविष्कृत हुआ है । जैसा, तदीय कृत्य पांचप्रकार जैसे सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करण । वह ईश्वर इस प्रकार सर्वदा काल में उदित अर्थात् प्रकट होजाताहै ॥ १६ ॥

एतच्च कृत्यपञ्चकं शुद्धाध्वविषये साक्षाच्छिवकर्तृकं कृच्छ्राध्व-विषये त्वनन्तादिद्वारेणेति विवेकः । तदुक्तं श्रीमत्करण-शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽहिते प्रभोरिति ॥ १७ ॥

ये पांचप्रकारका कृत्य शुद्धाध्वविषयमें साक्षात् शिवके कर्तृत्वसे निष्पादित होता है और कृच्छ्राध्वविषयमें अनन्तादिद्वारा निष्पादित होताहै ॥ १७ ॥

एवञ्च शिवशब्देन शिवत्वयोगिनां मन्त्रेश्वरमहेश्वरमुक्तात्मशिवानां सवाचकानां शिवत्वप्राप्तिसाधनेन दीक्षादिनोपायकलापेन सह पतिपदार्थ संग्रहः कृत इति बोद्धव्यम् । तदित्थं पतिपदार्थो निरूपितः ।

सम्प्रति पशुपदार्थो निरूप्यते । अनणुक्षेत्रज्ञादिपदवेदनीयो जीवात्मा पशुः न तु चार्वाकादिवद्देहादिरूपः नान्यदृष्टं स्मरत्यन्य इति न्यायेन प्रतिसन्धानानुपपत्तेः । नापि नैयायिकादिवत् प्रकाश्यः अनवस्थाप्रसङ्गात् ।

तदुक्तम्—

आत्मा यदि भवेन्मेयस्तस्य माता भवेत् परः ।
पर आत्मा तदानीं स्यात् स परो यदि दृश्यत इति ॥ १८ ॥

इस प्रकार शिवशब्दसे शिवत्वयोगविशिष्ट मन्त्रेश्वर, महेश्वर और मुक्तात्मा शिवगणका शिवत्व प्राप्तिसाधन दीक्षादि उपाय सब सहित प्रकार पदार्थसंग्रह कहागया है, यह जानना चाहिये । ऐसे ही पतिपदार्थका स्वरूपादि निरूपित हुआ अधुना पशुपदार्थका निरूपण किया जाता है । अनणुस्वरूप क्षेत्रज्ञादि पद प्रतिपाद्य जीवात्मा पशु शब्दका वाच्य चार्वाकादिके उल्लिखित देहादि स्वरूप जीवको पशु नहीं कहते । क्योंकि, उससे प्रतिसन्धान नहीं । नैयायिक लोगोंके उल्लिखित तुल्य प्रकाशभी नहीं है । क्योंकि, उसमें अनवस्था प्रसङ्ग होजाता है इसीप्रकार कहाभी है, आत्मा यदि मेय हो, तो पर उसका माता होगा ॥ १८ ॥

न च जैनवदव्यापकः नापि बौद्धवत् क्षणिकः देशकालाभ्यामनवच्छिन्नत्वात् । तदप्युक्तम्—

नाप्यद्वैतवादिनामिवैकः भोगप्रतिनियमस्य पुरुषबहुत्वज्ञापकस्य सम्भवात् नापि साङ्ख्यानामिवाकर्त्ता पाशजालापोहने नित्यनिरतिशयदृक्क्रियारूपचैतन्यात्मकशिवत्वश्रवणात् । तदुक्तं श्रीमन्मृगेन्द्रैः–

पाशान्ते शिवताश्रुतेरिति ।

चैतन्यं दृक्क्रियारूपं तदस्यात्मनि सर्वदा ।

सर्वतश्च यतो मुक्तौ श्रूयते सर्वतोमुखमिति ॥ २० ॥

अद्वैतवादी लोगोंकी नाईं एक भी नहीं क्योंकि, बहुपुरुषत्व ज्ञापक भोगप्रतिनियमका सम्पर्क है । सांख्यगणकी नाईं अकर्ताभी नही है । क्योंकि, नित्य निरतिशय दृक्क्रिया रूप चैतन्यमय शिवस्वरूप कहनेसे, पाश जालका निराकरण करता है श्रीमान् मृगेन्द्रने कहाहै, पाशके अन्तमें शिवकी स्वरूपता प्राप्तहोता है ऐसा सुननेमें आताहै । पुनः कहा है जो, दृक्क्रियारूप चैतन्य आत्माका स्वभावसिद्ध धर्म्म है क्योंकि, मुक्तिमें वह सर्वतोभावसे श्रुत होजाता है ॥ २० ॥

तत्त्वप्रकाशेऽपि–

मुक्तात्मानोऽपि शिवाः किन्त्वेते तत्प्रसादतो मुक्ताः ।

सोऽनादिमुक्त एको विज्ञेयः पञ्चमन्त्रतनुरिति ॥ २१ ॥

तत्त्व प्रकाशमें भी कहाहै, मुक्तात्मा व्यक्ति भी शिवस्वरूप होजाता है । शिवकेप्रसादहीसे मुक्ति मिलतीहै । वह परमेश्वर एक, अनादि मुक्त एवं पञ्चमंत्ररूप शरीर विशिष्ट है ॥ २१ ॥

पशुस्त्रिविधः विज्ञानाकलप्रलयाकलसकलभेदात् तत्र प्रथमो विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगेन वा कर्मक्षये सति कर्मक्षयार्थस्य कलादिभोगबन्धस्याभावात् केवलमलमात्रयुक्तो विज्ञानाकल इति व्यपदिश्यते । द्वितीयस्तु प्रलयेन कलादेरुपसंहारात् मलकर्मयुक्तः प्रलयाकल इति व्यवह्रियते । तृतीयस्तु मलमायाकर्मात्मकबन्धत्रयसहितः सकल इति संलप्यते । तत्र प्रथमो द्विप्रकारो भवति समाप्तकलुषासमाप्तकलुषभेदात् । तत्राद्यान् कालुष्यपरिपाकवतः पुरुषधौरेयान् अधिकारयोग्याननुगृह्यानन्तादिविद्येश्वराष्टपदं प्रापयति । तद्विद्येश्वराष्टकं निर्दिष्टं बहुदैवत्ये–

अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः ।
एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्त्तिकः ।
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे ॥ २२ ॥

पशु तीन प्रकारका है विज्ञानाकल, मलयाकल और सकल । उनमें विज्ञान, योग संन्यास, अथवा भोगद्वारा कर्म्मके क्षय होनेपर, कर्म्मक्षयार्थ फलादिभोगबन्धका अभावप्रयुक्त केवलमात्र मुक्तको विज्ञानाकल कहतेहैं। द्वितीय मलया कलहै । तृतीयको अर्थात् मल माया कर्म्मरूप बन्धत्रय युक्तको सकल कहते हैं। उनमें विज्ञानाकल दो प्रकारका, समाप्तकलुष और असमाप्तकलुष है। उनमें समाप्तकलुष पुरुष प्रधानगण कालुष्यका परिपाकप्रयुक्त अधिकारयोग होनेपर अनुगतगृह्य अनन्तादि विद्येश्वराष्टपद प्राप्त होतेहैं । बहुदैवत्यमें यह विद्येश्वराष्टपद निर्दिष्टहै । अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्त्तिक, श्रीखण्ड, शिखण्डी इत्यादिकको विद्येश्वर कहते हैं ॥ २२ ॥

अन्त्यान् सप्तकोटिसङ्ख्यातान् मन्त्राननुग्रहकरणान् निधत्ते । तदुक्तं तत्त्वप्रकाशे–

पशवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयकेवलौ सकलः ।
मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात् ॥ २३ ॥

अन्तमें सातकोटिसंख्यक अनुग्रह करणमन्त्र विधान करतेहैं । तत्त्वप्रकाशमें सो कहाहै, पशु तीन प्रकारकाहै, विज्ञानाकल, प्रलयाकल, एवं सकल । उनमें प्रथम मलयुक्त और द्वितीय मलकर्म्मयुक्त ॥ २३ ॥

मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः ।
आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात् ॥ २४ ॥

अवशिष्ट अर्थात् तृतीय मलमायाकर्म्मयुक्त होताहै । आद्य औरभी दो प्रकारकाहै । उनमें प्रथम समाप्तकलुष और द्वितीय असमाप्तकलुष ॥ २४ ॥

आद्याननुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ ।
मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोटयः सप्तेति ॥ २५ ॥

शिव अनुग्रहकर समाप्तकलुष पुरुषोंको अष्टविध विद्येश्वरत्वमें नियोजित करतेहैं एवं सातकोटिमन्त्रभी विधान करतेहैं ॥ २५ ॥

सोमशम्भुनाप्यभिहितम्–
विज्ञानाकलनामैको द्वितीयः प्रलयाकलः ।
तृतीयः सकलः शास्त्रेऽनुग्राह्यास्त्रिविधो मतः ॥ २६ ॥

सोमशम्भुने भी कहा है, एकका नाम विज्ञानाकल, दूसरेका नाम मलयाकल एवं तीसरे का नाम सकल, शास्त्रमें इन्हीं तीनको अनुग्राह्य कहा है ॥ २६ ॥

तत्राद्यो मलमात्रेण युक्तोऽन्ये मलकर्मभिः ।
कलादिभूमिपर्य्यन्ततत्त्वैस्तु सकलो युत इति ॥ २७ ॥

उनमें मलमात्र मुक्तका नाम प्रथम, मल कर्म्मयुक्तका नाम द्वितीय एवं कलादि भूमि पर्य्यन्त तत्त्वयुक्तका नाम तृतीय अर्थात् सकल कहते हैं ॥ २७ ॥

प्रलयाकलोऽपि द्विविधः पक्वपाशद्वयः तद्विलक्षणश्च । तत्र प्रथमो मोक्षं प्राप्नोति, द्वितीयस्तु पुर्य्यष्टकयुतः कर्मवशान्नानाविधजन्मभाग् भवति । तदप्युक्तं तत्त्वप्रकाशे—

प्रलयाकलेषु येषामपक्वमलकर्मणी व्रजन्त्येते ।
पुर्य्यष्टकदेहयुता योनिषु निखिलासु कर्मवशादिति ॥ २८ ॥

मलयाकलभी और दो प्रकारका है, पक्वपाश द्वय और तद्विलक्षण । उनमें प्रथम अर्थात् पक्वपाशद्वयसे मोक्ष प्राप्त होता है । द्वितीय अर्थात् सकल पुर्य्यष्टक युक्त होकर कर्म्मवशात नानाप्रकारका जन्म लाभ करता है । तत्वप्रकाशमें भी वही लिखा है:—जिनका मल और कर्म्म परिपाक नहीं होता, वे मलयकालमें पुर्य्यष्टकरूप देहयुक्त होकर कर्म्मवशात् निखिल योनिमें संक्रमण करते हैं ॥ २८ ॥

पुर्य्यष्टकमपि तत्रैव निर्दिष्टम्—

स्यात् पुर्य्यष्टकमन्तःकरणधीः कर्म करणानीति ॥ २९ ॥

पुर्य्यष्टक किसको कहते हैं, वह भी उसमें निर्दिष्ट हुआ है, जैसे—बुद्धि, कर्म्म, अन्तः- [illegible] और पांच इन्द्रिय इन्हीं आठको पुर्य्यष्टक कहते हैं ॥ २९ ॥

विवृतं चाघोरशिवाचार्य्येण—पुर्य्यष्टकं नाम प्रतिपुरुषनियतः सर्गादारभ्य कल्पान्तं मोक्षान्तं वा स्थितः पृथिव्यादिकलापर्य्यन्तस्त्रिंशत्तत्वात्मकः सूक्ष्मो देहः । तथा चोक्तं तत्त्वसंग्रहे—

वसुधाद्यस्तत्त्वगणः प्रतिपुन्नियतः कलान्तोऽयम् ।
पर्य्यटति कर्मवशाद्भुवनजदेहेष्वयञ्च सर्वेष्विति ॥ ३० ॥

मोक्ष पर्य्यन्त अवस्थिति करता है उसका नाम पुर्य्यष्टक है । उसी प्रकार, तत्वसंग्रहमें कहा है, वसुधादि तत्व गण प्रतिपुरुषहीमें नियत हुआ है एवं कर्म्मवशात उस २ भुवनन देहमें पर्य्यटन करता है ॥ ३० ॥

तथा चायमर्थः समपद्यत अन्तःकरणशब्देन मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तवाचिना अन्यान्यपि पुंसो भोगक्रियायामन्तरङ्गाणि कलाकालनियतिविद्यारागप्रकृतिगुणाख्यानि सप्त तत्त्वानि उपलक्ष्यन्ते । धीकर्मशब्देन ज्ञेयानि पञ्च भूतानि तत्करणानि च तन्मात्राणि विवक्ष्यन्ते । करणशब्देन ज्ञानकर्मेन्द्रियदशकं संगृह्यते ॥ ३१ ॥

इसका अर्थ इसप्रकार मीमांसित हुआ है, अन्तकरण शब्दसे मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त और पुरुषको योगक्रियाका अन्तरङ्गरूप कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति, और गुण ये सम्पूर्ण तत्व उपलक्षित होजाते हैं । इसप्रकार धी कर्म्म शब्दसे पांचभूत और इनका करण सब एवं तन्मात्र सब । यहां करण शब्दसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय समझना चाहिये । इसीका नाम वसुधादि तत्वगण है ॥ ३१ ॥

ननु श्रीमत्कालोत्तरे--शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चकम् । बुद्धिर्मनस्त्वहङ्कारः पुर्य्यष्टकमुदाहृतमिति श्रूयते तत्कथमन्यथा कथ्यते। अद्धा अतएव च तत्रभवता रामकण्ठेन तत्सूत्रं शक्तत्वपरतया व्याख्यायीत्यलमतिप्रपञ्चेन । तथापि कथं पुनरस्य पुर्य्यष्टकत्वम् । भूततन्मात्रबुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियान्तःकरणसंज्ञैः पञ्चभिर्वर्गैस्तत्करणेन प्रधानेन कलादिपञ्चकात्मना वर्गेण चारब्धत्वादित्यविरोधः ॥ ३२ ॥

यदि कहो कि, श्रीमत् कालोत्तरमें कहा है जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध ये पांच एवं बुद्धि, मन और अहङ्कार ये तीन, इन आठको पुर्यष्टक कहते हैं । इत्यादि वाक्य किस प्रकार सङ्गत हो सकता है ? इसी कारण तत्र भगवन् रामकण्ठने इस सूत्र को [illegible] कहकर व्याख्या किया है । तथापि, किसप्रकार इसका पुर्य्यष्टकत्व सिद्ध होसकता ? इसका समन्वय यह है जो, भूत, तन्मात्र, बुद्धिन्द्रिय, कर्म्मेन्द्रिय, और अन्तःकरण नामक पञ्चवर्ग एवं तत्करण, प्रधान और कलादिपञ्चात्मक ये तीन, इन सबको लेकर [illegible] हुआ है, [illegible] किसीप्रकार विरोधकी अपेक्षा नहीं रही ॥ ३२ ॥

तत्र पुर्य्यष्टकयुतान् विशिष्टपुण्यसम्पन्नान् कांश्चिदनुगृह्य भुवन-पतित्वमत्र महेश्वरोऽनन्तः प्रयच्छति । तदुक्तम्--

कांश्चिदनुगृह्य वितरति भुवनपतित्वं महेश्वरस्तेषामिति ॥

सकलोऽपि द्विविधः पक्ककलुषापक्ककलुषभेदात् । तत्राद्यान् परमेश्वरस्तत्परिपाकपरिपाट्या तदनुगुणशक्तिपातेन मण्डल्याद्यष्टादशोत्तरशतं मन्त्रेश्वरपदं प्रापयति । तदुक्तम्--

> शेषा भवन्ति सकलाः कलादियोगादहर्मुखे काले ।
> शतमष्टादश तेषां कुरुते स्वयमेव मन्त्रेशान् ॥ २३ ॥

अनन्तरूप महेश्वर उनमें पुर्य्यष्टक युक्त और विशिष्ट पुण्यसम्पन्न किसी २ पुरुषको अनुग्रहकर भुवनपतित्व प्रदान करते हैं । इसी प्रकार कहा भी है, महेश्वर उनमें किसीको अनुग्रहकर भुवनपतित्व प्रदान करते हैं । पक्ककलुष और अपक्ककलुष भेदसे सकल भी और दो प्रकारका है । उनमें परमेश्वर कलुष परिपाककी अनुसार तदनुगुण शक्तिपात द्वारा कलुषमें पुरुषोंको मण्डलादि ११८ मन्त्रेश्वरपद प्रदान करते हैं । इसी प्रकार कहा है; सबपुरुष सब प्रलयसमयमें कलादि योगवशात शेष होनेपर, स्वयं ईश्वर उन सबको ११८ मन्त्रेश्वर करदेते हैं ॥ २३ ॥

> तत्राष्टौ मण्डलिनः क्रोधाद्यास्तत्समाश्च वीरेशः ।
> श्रीकण्ठः शतरुद्राः शतमित्यष्टादशाभ्यधिकमिति ॥ २४ ॥

उनमें, आठ जनमण्डली, क्रोधादि इसके समान, वीरेशभी श्रीकण्ठ दो एवं १०० रुद्र ये सब मिलकर ११८ हैं ॥ २४ ॥

तत्परिपाकाधिक्यनिरोधेन शक्त्युपसंहारेण दीक्षाकरणेन मोक्षप्रदो भवत्याचार्य्यमूर्तिमास्थाय परमेश्वरः । तदप्युक्तम्--

> परिपक्कमलानेतानुत्सादनशक्तिपातेन ।
> योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाचार्य्यमूर्तिस्थ इति ॥ २५ ॥

श्रीमन्मृगेंद्रोऽपि–

पूर्वं व्यत्यासितस्याणोः पाशजालमपोहतीति ॥ ३६ ॥

श्रीमन्मृगेन्द्रने भी कहा है;–उस जीवका पाशजाल काट डालते हैं ॥ ३६ ॥

व्याकृतश्च नारायणकण्ठेन तत्सर्वं तत एवावधार्य्यम् अस्माभिस्तु विस्तरभिया न प्रस्तूयते । अपक्वकलुषान् बद्धानणून् भोगभाजो विधत्ते परमेश्वरः कर्मवशात् । तदप्युक्तम्–

बद्धान् शेषानपरान् विनियुङ्क्ते भोगभुक्तये पुंसः ।
तत्कर्मणामनुगमादित्येवं कीर्तिताः पशव इति ॥ ३७ ॥

नारायणकण्ठनें इन सबकी विस्तारपूर्व्वक व्याख्या कियी है । उसीसे यह विषय निश्चय करना । हमने विस्तारभयसे अधिक प्रस्ताव नही किया । जो सब जीव अपक्व कलुष, परमेश्वर कर्म्मवशात् उन सबको बद्ध और भोगयुक्त करते हैं । वह भी कहा है, अवशिष्ट अपर पुरुषों-को उनके कर्म्मानुसार बद्ध करके, भोगभुक्तिके लिये विनियुक्त करते हैं । पशुगणका विषय यह कहागया ॥ ३७ ॥

अथ पाशपदार्थः कथ्यते । पाशश्चतुर्विधो मलकर्ममायारोधशक्तिभेदात् । ननु शैवागमेषु मुख्यं पतिपशुपाशा इति क्रमात्त्रितयम् । तत्र पतिः शिव उक्तः, पशवो ह्यणवोऽर्थपञ्चकं पाशा इति । पाशः पञ्चविधः कथ्यते तत् कथं चतुर्विध इति गण्यते । उच्यते विन्दोर्मायात्मनः शिवतत्त्वपदवेदनीयस्य शिवपदप्राप्तिलक्षणपरममुक्त्यपेक्षया पाशत्वेऽपि तद्योगस्य विद्येश्वरादिपदप्राप्तिहेतुत्वेनापरमुक्तित्वात् पाशत्वेनानुपादानमित्यविरोधः । अतएवोक्तं तत्त्वप्रकाशे–

पाशाश्चतुर्विधाः स्युरिति ॥ ३८ ॥

अधुना, पाशपदार्थका विवरण किया जाता है । पाश चारप्रकारका है मल, कर्म्म, माया और रोधशक्ति । यदि कहो, शैवशास्त्रमें कहाहै, पति, पशु और पाश इत्यादि क्रमसे तीनपदार्थ हैं । उनमें पतिशब्दसे शिव कहा गयाहै । पशु शब्दसे अणु सब । और पाश शब्दसे अर्थपञ्चक । इसप्रकार, पांच प्रकार पाश कहा गया है । तो और किस प्रकार ४ प्रकार कहा गया ? इसका उत्तर यह है जो, साक्षात् शिव तत्वपद प्रतिपाद्य–मायामय बिन्दुपदार्थ पाशरूपित होनेपरभी, उसको जब शिवपदप्राप्तिरूप परममुक्तिकी अपेक्षा है

एवं उस मुक्तिका योग होनेपर जिस समय विद्येश्वरादि पदप्राप्तिपूर्वक मुक्ति होजाती है तब उसका और पाशत्वका उपादान होनहीं सकता । इसी कारण तत्त्वप्रकाशमें कहा है पाश सब ४ प्रकारका है ॥ ३८ ॥

श्रीमन्मृगेन्द्रोऽपि–

आवृतीशौ बलं कर्म मायाकार्य्यं चतुर्विधम् ।
पाशजालं समासेन धर्मनाम्नैव कीर्त्तिता इति ॥ ३९ ॥

श्रीमन्मृगेन्द्रनेभी कहाहै,–मल, ईश, बल, और कर्म्म ये ४ प्रकार मायाकारी पाशजाल नामसे परिगणित होता है । इन सबको संक्षेपसे धर्म्मनामसे कहा करते हैं ॥ ३९ ॥

अस्यार्थः, आवृणोति प्रकर्षेणाच्छादयत्यात्मनो दृक्क्रिये इति आवृतिः स्वाभाविक्यशुचिर्मलः । स च ईष्टे स्वातन्त्र्येणेति । तदुक्तम्–

एको ह्यनेकशक्तिदृक्क्रिययोच्छादको मलः पुंसः ।
तुषतण्डुलवज्ज्ञेयस्ताम्राश्रितकालिकावद्वेति ॥ ४० ॥

इस मलका दूसरा नाम 'आवृति' है । प्रशब्दसे प्रकर्ष एवं आवृति शब्दसे आच्छादन करना । यह आत्माका दृक् और दृक्शक्ति दोनों आच्छन्न करते हैं, इसकारण इसका नाम वृत्ति है । इसशब्दसे जो सदा स्वाधीनभावसे प्रभुत्वादि करे । उसीप्रकार कहा भी है, एक मल पुरुषकी अनेकशक्ति, दृक् और क्रियाका आच्छादन करता है । तुषमें जिस प्रकार तण्डुल एवं ताम्रमें जैसे कालिका प्रच्छन्न रहती है मलसे दृक्क्रियाका उस प्रकार प्रच्छादन होता है ॥ ४० ॥

बलं रोधशक्तिः अस्याः शिवशक्तेः पाशाधिष्ठानेन पुरुषतिरोधायकत्वादुपचारेण पाशत्वम् । तदुक्तम्–

तासामहं वरा शक्तिः सर्वानुग्राहिका शिवा ।
धर्मानुवर्त्तनादेव पाश इत्युपचर्य्यत इति ॥ ४१ ॥

क्रियते फलार्थिभिरिति कर्म धर्माधर्मात्मकं बीजाङ्कुरवत्प्रवाहरूपेणानादि यथोक्तं श्रीमत्किरणे–

यथानादिर्मलस्तस्य कर्मालपकमनादिकम् ।
यद्यनादिरसंसिद्धं वैचित्र्यं केन हेतुनेति ॥ ४२ ॥

फलार्थी व्यक्तिगण करते हैं, इसकारण इसका नाम कर्म्म है । यह धर्म्म और अधर्म्म उभयात्मक है । एवं बीजांकुरकी नाई, प्रवाहरूपसे अनादि श्रीमत् किरणमें कहा है,– मल. जैसे अनादि उसका कर्म्म भी वैसाही अनादि है । सुतरां चिन्ता करनेका विषय क्या ? ॥ ४२ ॥

यात्यस्यां शक्त्यात्मना प्रलये सर्वं जगत्, सृष्टौ व्यक्तं यातीति माया । यथोक्तं श्रीमत्सौरभेये–

शक्तिरूपेण कार्य्याणि तल्लीनानि महाक्षये ।
विकृतौ व्यक्तिमायाति सा कार्य्येण कलादिनेति ॥ ४३ ॥

प्रलयमें सम्पूर्ण जगत् शक्तिरूपी आत्मद्वारा इसमें मिलकर अर्थात् उपसंहृत एवं सृष्टि सवही व्यक्तिभूत होजाती है, इसअर्थमें माया । अर्थात् माशब्दसे उपसंहरण और या शब्दसे व्यक्तिकरण, इसअर्थमें मायाशब्द निष्पन्न हुआ है श्रीमत् सौरभेयमें कहा है,– महाप्रलयमें कार्य सब शक्तिरूप द्वारा उसमें लीन होती है एवं सृष्टिसमय व्यक्तिभूत होजाती है ॥ ४३ ॥

यद्यप्यत्र बहु वक्तव्यमस्ति तथापि ग्रन्थभूयस्त्वभयादुपरम्यते । तदित्थं पतिपशुपाशपदार्थास्त्रयः प्रदर्शिताः ।

पतिविद्ये तथाविद्या पशुः पाशश्च कारणम् ।
तन्निवृत्ताविति प्रोक्ताः पदार्थाः षट् समासतः ॥ ४४ ॥

यद्यपि इसविषयमें अनेक बात कहनी है तथापि--ग्रन्थविस्तारभयसे--यहीं निवृत्त हुआ जो हो. पति, पशु और पाश ये तीन पदार्थ दिखलाये गये । पति, विद्या, अविद्या, पशु, पाश, कारण. संक्षेपसे ये छः पदार्थ कहे गये ॥ ४४ ॥

इत्यादिना प्रकारान्तरं ज्ञानरत्नावल्यादौ प्रसिद्धम् ।
सर्वं तत एवावगन्तव्यमिति सर्वं समञ्जसम् ॥ ४५ ॥
इति सर्वदर्शनसंग्रहे शैवदर्शनं समाप्तम् ॥ ७ ॥

इत्यादि विधानसे प्रकारान्तर ज्ञानरत्नावली प्रभृतिमें प्रसिद्ध है । उसीसे सब निश्चय जानना चाहिये ॥ ४५ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें शैवदर्शन समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

अथ प्रत्यभिज्ञादर्शनम् ॥ ८ ॥

अत्रापेक्षाविहीनानां जडानां कारणत्वं दूष्यतीत्यपरितुष्यन्तो मतान्तरमन्विष्यन्तः परमेश्वरेच्छावशादेव जगन्निर्माणं परिघुष्यन्तः स्वसंवेदनोपपत्त्यागमसिद्धप्रत्यगात्मतादात्म्ये नानाविधमानमेयादिभेदाभेदशालिपरमेश्वरोऽनन्यमुखप्रेक्षित्वलक्षणस्वातन्त्र्यभाक् स्वात्मदर्पणे भावात् प्रतिबिम्बवदभासयादिति भणन्तो बाह्याभ्यन्तरचर्य्याप्राणायामादिक्लेशप्रयासकलावैधुर्य्येण सर्वसुलभमभिनवं प्रत्यभिज्ञामात्रं परापरसिद्ध्युपायमभ्युपगच्छन्तः परे माहेश्वराः प्रत्यभिज्ञाशास्त्रमभ्यस्यन्ति । तस्येयत्ताऽपि न्यरूपि परीक्षकैः०

सूत्रं वृत्तिर्विवृतिर्लघ्वी बृहतीत्युभे विमर्शिन्यौ ।
प्रकरणविवरणपञ्चकमिति शास्त्रं प्रत्यभिज्ञायाः ॥

तत्रेदं प्रथमं सूत्रम्—

कथञ्चिदासाद्य महेश्वरः स्या-
द्दास्यं जनस्याप्युपकारमिच्छन् ।
समस्तसम्पत्समवाप्तिहेतुं
तत्प्रत्यभिज्ञामुपपादयामीति ॥ १ ॥

प्रत्यभिज्ञा शास्त्रका अभ्यास करते हैं। परीक्षकलोगोंने उसका होनेसे निरूपण किया है। जैसे,—सूत्र, वृत्ति, लघु, और बृहद् भेदसे दो प्रकारकी विवृति, प्रकरण और विवरण, ये पांच विषय लेकर, प्रत्यभिज्ञाशास्त्रका संकलन हुआ है—उनमें, प्रथमसूत्र यह है,—किसी प्रकार महेश्वरका दासत्व पाना और लोगोंकी उपकारकामना कर, सम्पूर्ण सम्पत्प्राप्तिके लिये यह प्रत्यभिज्ञा उपपादित करता हूं ॥ १ ॥

कथञ्चिदिति परमेश्वराभिन्नगुरुचरणारविन्दयुगलसमाराधनेन परमेश्वरघटितेनैवेत्यर्थः। आसाद्येति आ समन्तात् परिपूर्णतया सादयित्वा स्वात्मोपभोग्यतां निरर्गलां गमयित्वा तदनेन विदितवेद्यत्वेन परार्थशास्त्रकरणेऽधिकारो दर्शितः ॥ २ ॥

यहां किसीप्रकार महेश्वरसे अभिन्न गुरुके चरणारविन्द युगल अच्छीप्रकार आराधनाद्वारा यह आराधना उस परमेश्वरके प्रसाद घटित समझना होगा। आसादन—शब्दसे सर्व्वथा वा शून्य और परिपूर्णरूपसे स्वकीय उपभोग योग्य करलेना। इसकेद्वाराभी विदित वेद्यत्व वशात् पदार्थशास्त्रकरनेमें जो अधिकारमें है, सो दिखलाया गया। अर्थात् मैं जब महेश्वर ही की कृपासे गुरुकी करुणासे उस महेश्वरका पूर्ण दासत्व लाभ करनेमें समर्थ हुआ हूं तो जो कुछ जानना है वह सब मुझे विदित होगया है। उसीके प्रभावसे परके शास्त्रप्रणयन करनेमें मुझे सम्पूर्ण अधिकार हुए है। क्योंकि, शास्त्रप्रणयन इसप्रकार सर्व्वज्ञता सापेक्ष यही इसस्थानका भावार्थहै ॥ २ ॥

अन्यथा प्रतारणमेव प्रसज्येत। मायोत्तीर्णा अपि महामायाधिकृता विष्णुविरिञ्चाद्या यदीयैश्वर्य्यलेशेनेश्वरीभूताः स भगवाननवच्छिन्नप्रकाशानन्दस्वातन्त्र्यपरमार्थो महेश्वरः। तस्य दास्यं दीयतेऽस्मै स्वामिना सर्वं यथाभिलषितमिति दासः परमेश्वरस्वरूपस्वातन्त्र्यपात्रमित्यर्थः ॥ ३ ॥

पुनः विदितवेद्य न होनेसे, प्रतारणाकी अवतरणा होती। कहनेमें क्या, जो मायाको पार करनेपरभी माहामायाके अधिकृतहै, वह विष्णु और ब्रह्माप्रभृति अमर प्रधान वर्ग जिसके ऐश्वर्यका कणमात्र पानेसे भी सबका ईश्वर होजाते हैं; सो वही भगवान् महेश्वर हैं। वह सबदेश, सब काल, सब अवस्थामें प्रकटहैं। उसके आनन्दका नामनहीं है। उसका स्वातन्त्र्य और परमार्थही अनवच्छिन्नहै। उसीका दासत्व। स्वामिकर्तृक सबप्रकार अभिलषित जिसको दियाजाता है उसका नाम दास। सुतरां यहां महेश्वरका दास कहनेसे उसीका स्वरूप स्वातन्त्र्यपात्र समझना चाहिये ॥ ३ ॥

जनशब्देनाधिकारिविषयानियमाभावः प्रादर्शि । यस्य यस्य हीदं स्वरूपकथनं तस्य तस्य महाफलं भवति प्रधानस्यैव परमार्थफलत्वात् ॥ ४ ॥

पुनः यहां लोकशब्द प्रयोगकर, अधिकारी विषयक नियमाभाव प्रदर्शित हुआ है । अर्थात् जिस २ व्यक्तिके निकट इसप्रकार स्वरूप कहा जाता है, उन २ लोगोंका बडा फल होता है । इसविषयमें व्यक्तिभेद नहीं है । तो, प्रधानहीका परमार्थ फललाभ होता है ॥४॥

तथोपदिष्टं शिवदृष्टौ परमगुरुभिर्भगवत्सोमानन्दनाथपादैः-

एकवारं प्रमाणेन शास्त्राद्वा गुरुवाक्यतः ।
ज्ञाते शिवत्वे सर्वस्थे प्रतिपत्त्या दृढात्मना ॥
करणेन नास्ति कृत्यं क्वापि भावनया सकृत् ।
ज्ञाते सुवर्णे करणं भावनां वा परित्यजेदिति ॥ ५ ॥

सोमानन्दनाथने शिवदृष्टिमें कहाहै कि, शास्त्रसे वा गुरुमुखसे एकबार प्रमाण और प्रतिपत्ति सहकारसे दृढरूपसे सर्व्वव्यापी शिवस्वरूप जाननेपर और करणद्वारा किसीप्रकार कार्य्यकरना नही होता, कहीं किसी प्रकारकी भावनाभी नहीं रहती । सुवर्णपरिज्ञात होनेपर करण और भावना दोनों ही त्याग करना चाहिये ॥ ५ ॥

अपिशब्देन स्वात्मनस्तदभिन्नतामाविष्कुर्वता पूर्णत्वेन स्वात्मनि परार्थसम्पत्त्यतिरिक्तप्रयोजनान्तरावकाशश्च पराकृतः । परार्थश्च प्रयोजनं भवत्येव तल्लक्षणयोगात् न ह्ययं देवशापः स्वार्थ एव प्रयोजनं न परार्थ इति । अत एवोक्तमक्षपादेन-

यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत प्रयोजनमिति ॥ ६ ॥

पाकर, सर्व्वथा पूर्णकाम हुआ हूं । इसकारण इससमय दूसरेका उपकार करना भिन्न, मे निजका और कोई स्वार्थ वा प्रयोजन नही । यह भी शब्द प्रयोगका भावार्थ है उसी प्रकार परार्थ ही प्रयोजन होजाताहै, इस प्रकार लक्षणनिर्देश किया है । स्वार्थ साक्षात् देवशाप है सुतरां वह प्रयोजन नही हो सकता । परार्थ ही प्रयोजन होता है । इसी कारण अक्षपाद कहा है, जिस अर्थका अधिकार कर, प्रवृत्त होता है वही प्रयोजन है ॥ ६ ॥

उपशब्दः सामीप्यार्थः । तेन जनस्य परमेश्वरसमीपताकरणमात्रं फलम् । अतएवाह समस्तेति, परमेश्वरतालाभे हि सर्वाः सम्पदस्तन्निष्यन्दमय्यः सम्पन्ना एव रोहणाचललाभे रत्नसम्पद इव । एवं परमेश्वरतालाभे किमन्यत् प्रार्थनीयम् ।

तदुक्तमुत्पलाचार्य्यैः—

भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यदुपयाचितम् ।

एनया वा दरिद्राणां किमन्यदुपयाचितमिति ॥ ७ ॥

उपकारका अर्थ यह है जो, उप शब्दसे सामीप्य, उसके द्वारा लोगोंका परमेश्वर समीपत करणमात्रही फल । इसी लिये कहा है, सम्पूर्ण सम्पत् पानेके लिये इत्यादि । इसका भावा यह है जो, परमेश्वरत्व मिलनेपर, सम्पूर्ण सम्पत् उसकी प्रसन्नतासे मिल जातीहै । क्योंकि सम्पत् सब उसीसे उत्पन्न होती है । इसकारण रोहणाचल मिलनेपर, जिसप्रकार रत्नसम्प मिलती है, उसी प्रकार उसको प्राप्त होता है, उस २ सम्पतका अधिकारी होजाता है इसप्रकार परमेश्वरत्व मिलनेपर और क्या मांगना पडेगा? उत्पलाचार्यनेभी कहा है,—ज लोग भक्तिरूप लक्ष्मीही मे परमधनी है, उनको और क्या चाहना पडेगा? उसी प्रकार ज लोग इसविषयमें दरिद्र उन लोगोंहीको या और क्या अपयाचितहै? इसका भावार्थ यह है जो लोग भक्त ईश्वर उन लोगोंकी सब मनोकामना पूर्ण करते है और जो लोग अभक्तहैं, उ सबको चिरकालहीसे अभाव है । इसकारण उन लोगोंको चिरकालसे आशा और वास प्रभृतिका दुर्व्वहदासत्व बनकर, पद २ मेही अवसन्न, (बेहोश) विपन्न, और नगण रोना पडता है ॥ ७ ॥

इत्थं षष्ठीसमासपक्षे प्रयोजनं निर्दिष्टम् । बहुव्रीहिपक्षेतूपायः समस्तस्य बाह्याभ्यन्तरस्य नित्यसुखादेर्या सम्पत्सिद्धिः तथात्वप्रकाशः तस्याः सम्यगवाप्तिर्यस्याः प्रत्यभिज्ञाया हेतुः सा तथोक्ता तस्य महेश्वरस्य प्रत्यभिज्ञा प्रतिमाभिमुख्येन ज्ञानम् ।

लोके हि स एवायं चैत्र इति प्रतिसन्धानेनाभिमुखीभूते वस्तुनि ज्ञानं प्रत्यभिज्ञेति व्यवह्रियते । इहापि प्रसिद्धपुराणसिद्धागमानुमानादिज्ञातपरिपूर्णशक्तिके परमेश्वरे सति स्वात्मन्यभिमुखीभूते तच्छक्तिप्रतिसन्धानेन ज्ञानमुदेति नूनं स एवेश्वरोहमिति । तामेतां प्रत्यभिज्ञामुपपादयामि । उपपत्तिः सम्भवः सम्भवतीति तत्समर्थाचरणेन प्रयोजनव्यापारेण सम्पादयामीत्यर्थः । यदीश्वरस्वभाव एवात्मा प्रकाशते तर्हि किमनेन प्रत्यभिज्ञाप्रदर्शनप्रयासेनेति चेत् तत्रायं समाधिः स्वप्रकाशतया सततमवभासमानेऽप्यात्मनि मायावशाद्भागेन प्रकाशने पूर्णतावभाससिद्धये दृक्क्रियात्मकशक्त्याविष्करणेन प्रत्यभिज्ञा प्रदर्श्यते । तथा च प्रयोगः अयमात्मा परमेश्वरो भवितुमर्हति ज्ञानक्रिया शक्तिमत्त्वात् यो यावति ज्ञाता कर्त्ता च स तावतीश्वरः प्रसिद्धेश्वरवत् राजवद्वा आत्मा च विश्वज्ञाता कर्त्ता च तस्मादीश्वरोऽयमिति अवयवपञ्चकस्याश्रयणं मायावादेन नैयायिकमतस्य कक्षीकारात् ॥ ८ ॥

जो हो; इसप्रकार षष्ठीसमास करनेपर पक्षमें प्रयोजन निर्दिष्ट होनेपर, अधुना बहुव्रीहि समास पक्षमें प्रयोजन निर्दिष्ट होता है । जैसे, समस्त सम्पत पानेके लिये, । उसका बहुव्रीहिसमासमे अर्थ यह हुआ जो, सम्पूर्ण सम्पत पानाही जिसका हेतु, तादृशी प्रत्यभिज्ञा । यहां सम्पूर्णबाह्य और आभ्यन्तर भेदसे जो कुछ नित्यसुखादि उसकी । सम्पत् सिद्धिहै अर्थात् उसके स्वरूपमें प्रकाश है, उसीकी सम्यक् प्राप्ति है, यही प्रत्यभिज्ञाका हेतु है वह प्रत्यभिज्ञा इसवाक्यके अन्तर्गत तत शब्दसे महेश्वर उसीकी प्रत्यभिज्ञा समझनी चाहिये । प्रत्यभिज्ञा शब्दसे प्रतिमाभिमुख्यज्ञान सो यह चैत्र, इत्यादि । प्रतिसन्धान द्वारा अभिमुखीभूत वस्तुमें जो ज्ञान, उसीका नाम लोकव्यवहारमें प्रत्यभिज्ञा है । यहां भी प्रसिद्ध पुराण और सिद्ध आगम एवं अनुमानादिद्वारा जिसकी परिपूर्णशक्ति परिज्ञात होजाती है, वही परमेश्वर स्वात्मामें अभिमुख होनेपर, उसकी शक्तिके सन्धानद्वारा इसप्रकार ज्ञानका उदय होता है, मैं निश्चय ही वही ईश्वर हूं । वह इस प्रत्यभिज्ञाको उपपादित करती है उपपत्ति शब्दसे सम्भव होता है, कहनेसे, उसके समर्थका आचरण प्रयोजन व्यापा-

रकी सहायतासे सम्पादन करती है । यही उपपादितका अर्थ है । यदि कहो कि, ईश्वर स्वभावही आत्मा प्रकाशित होता है । सुतरां प्रत्यभिज्ञा दिख लानेरूप परिश्रम करनेसे प्रयोजन क्या ? इसका समाधान यह है । जो, आत्मा स्वतः सिद्ध प्रकाश सम्पन्न है । सुतरां, सतत प्रकट होनेपरभी मायावशात् भागशः प्रकाशित होता है, पूर्णता प्रकट नहीं होसकता । उसी पूर्णताका अभावसे सिद्धिही दृक् क्रियात्मक शक्तिका आविष्करणसे प्रत्यभिज्ञा प्रदर्शन किया जाता है । उसी प्रकार इसका प्रयोग यह है जो यह आत्मा ज्ञान क्रिया शक्तिसम्पन्न कहनेसे ईश्वर हो सकता है । इसके दृष्टान्त प्रसिद्ध ईश्वर या राजा है । आत्मा विश्वका ज्ञाता और कर्त्ता है सुतरां यहां ईश्वर है । इत्यादि मायावादसे नैयायिक मत स्वीकार करनेपर अनुरूप अवयवपञ्चकका आश्रय होता है । इस प्रकार एक आत्मा मायावशात् पांच प्रकारके आकार परिग्रह करनेपर प्रत्यभिज्ञाके विना उसका स्वरूप निर्देशको साध्यक्या ? इसीकारण प्रत्यभिज्ञाप्रदर्शन करें आयास माननेका प्रयोजन है ॥ ८ ॥

तदुक्तमुदयकरसूनुना—

कर्त्तरि ज्ञातरि स्वात्मन्यादिसिद्धे महेश्वरे ।

अजडात्मा निषेधं वा सिद्धिं वा विदधीत कः ॥ ९ ॥

उदयकरण सूनुनेभी कहा है—जो कर्त्ता, ज्ञाता, स्वात्मा और अनादि सिद्ध उस महेश्वरमें कौन बुद्धिमान व्यक्ति विधि वा निषेध आरोप करसकताहै ॥ ९ ॥

किन्तु मोहवशादस्मिन्दृष्टेऽप्यनुपलक्षिते ।

शक्त्याविष्करणेनेयं प्रत्यभिज्ञोपदर्श्यते ॥ १० ॥

किन्तु मोहवशसे इसको देखकर भी देखा नहीं जाता । इसीकारण शक्तिका आविष्करण पूर्वक यह प्रत्यभिज्ञा उपदर्शित होती है ॥ १० ॥

तथाहि—

सर्वेषामिह भूतानां प्रतिष्ठा जीवदाश्रया ।

ज्ञानं क्रिया च भूतनां जीवतां जीवनं मतम् ॥ ११ ॥

उसी प्रकार समुदाय भूतगणकी प्रतिष्ठाही आश्रय एवं साक्षात् जीवनदायिनी । ज्ञान और क्रियाही जीवितभूतगणका जीवन कहकर परिगणित होता है ॥ ११ ॥

तत्र ज्ञानं स्वतःसिद्धं क्रिया कर्त्राश्रिता सती ।

परैरप्युपलक्ष्येत तयान्यज्ज्ञानमुच्यत इति ॥ १२ ॥

इनमें ज्ञान स्वतःसिद्ध और क्रिया इसके आश्रित है ॥ १२ ॥

या चैषां प्रतिभा तत्तत्पदार्थक्रमरूषिता ।
अक्रमानन्दचिद्रूपः प्रमाता स महेश्वर इति च ॥ १३ ॥

इनसबकी प्रतिभा उस २ पदार्थके क्रमरूपसे आविर्भूत होता है। किन्तु महेश्वर प्रमाता एवं सर्व्वप्रकार क्रमरहित, आनन्दस्वरूप साक्षात् चिद्रूप है ॥ १३ ॥

सोमानन्दनाथपादैरपि–
सदा शिवात्मना वेत्ति सदा वेत्ति सदात्मना इत्यादि ॥१४॥

सोमानन्दनाथपादनेभी कहा है,–सर्व्वदा शिवात्मद्वारा अवगत होता है एवं सर्व्वदा सदात्मकद्वारा विदित होता है अर्थात लोकमे शिवस्वरूप और साक्षात् महेश्वर स्वरूप होनेपर भी, सदा सब विषय परिज्ञात होता है ॥ १४ ॥

ज्ञानाधिकारपरिसमाप्तावपि ।
तदैक्येन विना नास्ति संविदां लोकपद्धतिः ।
प्रकाशैक्यात्तदेकत्वं मातैकः स इति स्थितः ॥ १५ ॥

ज्ञानाधिकार परिसमाप्तिमें भी कहाहै, उस महेश्वरके साथ एकत्व न घटनेपर, संवित कभी स्वप्रकाश मात्र वा प्रस्फुरित होकर अपने विषयग्रहणमें समर्थ नही होता। वही महेश्वरही एकमात्र प्रमाता है। प्रकाशकी एकता होनेपर उसका एकत्व घटता है ॥ १५ ॥

स एवार्थभृशत्वेन नियतेन महेश्वरः ।
विमर्श एव देवस्य शुद्धे ज्ञानक्रिये यत इति ॥ १६ ॥

वही महेश्वर नियत सर्व्वार्थमय है । सर्व्वथा शुद्धस्वरूप ज्ञान और क्रिया उसीका विमर्शस्वरूप है ॥ १६ ॥

विवृतं चाभिनवगुप्ताचार्य्यैः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभातीति श्रुत्या प्रकाशचिद्रूपमहिमा सर्वस्य भावजातस्य भासकत्वमभ्युपेयते । ततश्च विषयप्रकाशस्य नीलप्रकाशः पीतप्रकाश इति विषयोपरागभेदाद्भेदः । वस्तुतस्तु देशकालाकारसङ्कोचवैकल्यादभेद एव स एव चैतन्यरूपः प्रकाशः प्रमातेत्युच्यते ॥ १७ ॥

शभाव पाया है, इत्यादिवाक्यानुसार, प्रकाशचिद्रूप महिमाकी सहायतासे सब सृष्टि उत्पन्न पदार्थका भासकत्व अभ्युपेत होता है । अर्थात्, वह प्रकाश स्वरूप, और चिद्रूप । उसीसे सम्पूर्ण संसारकी प्रकाशकता सम्पन्न होती है, यह स्पष्टही जानाजाता है । पुनः, उसीसे-नीलप्रकाश और पीतप्रकाश इत्यादि विषयोपरागभेदसे भिन्न २ प्रकारका विषय प्रकाश संघटित होता है । वस्तुतः, देश, काल, आकार, इन सबके संकोचकी वैकल्पतासे उसमें कोई प्रकार भेद वा द्वैतभाव नही । वही साक्षात् चैतन्य, साक्षात् प्रकाश और साक्षात् प्रमाता कहकर परिगणित होता है ॥ १७ ॥

तथा च पठितं शिवसूत्रेषु "चैतन्यमात्मेति" । तस्य चिद्रूपत्व मनवच्छिन्नविमर्शत्वमन्योन्मुखत्वमानन्दैकघनत्वं माहेश्वर्य्य-मिति पर्य्यायः स एव ह्ययं भावात्मा विमर्शः शुद्धे पारमार्थिक्यौ ज्ञानक्रिये । तत्र प्रकाशरूपता ज्ञानं स्वतो जगन्निर्मातृत्वं क्रिया। तच्च निरूपितं क्रियाधिकारे-

एष चानन्दशक्तित्वादेवमाभासयत्यमून् ।
भावानिच्छावशादेषा क्रियानिर्मातृताऽस्य सेति ॥ १८ ॥

शिवसूत्रमें कहाहै, जो आत्मा चैतन्यस्वरूप है, यहां आत्मा शब्दसे महेश्वर चिद्रूपत्व, अनवच्छिन्न विमर्शत्व, अनन्योन्मुखत्व एवं आनन्दैकघनत्वही महेश्वरत्व है । वही भावात्मा, अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टपदार्थका स्वरूप है । वही विमर्श स्वरूपहै । वही परम निर्म्मल और पारमार्थिक ज्ञान और क्रिया इन दो प्रकारका स्वरूप है । उनमें ज्ञानशब्दसे प्रकाशरूपता एवं क्रियाशब्दसे अन्यदीय सहाय निरपेक्ष होकर, संसार निर्म्माण कर्तृत्व है । क्रियाधिकारमें भी निरूपण कियाहै,-वह आनन्द शक्तिस्वरूप है । उसके प्रभावसे इच्छाक्रमसे भुवनादि समुदाय भावजात अवभासित करता है । यही उसकी निर्म्मातृ क्रिया है ॥ १८ ॥

उपसंहारेऽपि-

इत्थं तथा घटपटाद्याकारजगदात्मना ।
तिष्ठासोरेवमिच्छैव हेतुकर्तृकृता क्रियेति ॥ १९ ॥

उपसंहारमें कहाहै जो, इस प्रकार सुप्रसिद्ध घटपटादिके आकारविशिष्ट जगत् स्वरूपसे अवस्थिति करनेके लिये उसकी इच्छा होती है । यही हेतुकर्तृता क्रियाहै ॥ १९ ॥

तस्मिन् सतीदमस्तीति कार्य्यकारणतापि या ।
सा व्यपेक्षाविहीनानां जडानां नोपपद्यते ॥ २० ॥

वही सत्स्वरूप महेश्वरमें इसप्रकार जो कार्य्य करणता विद्यमान है, वह अपेक्षा विहीन जड़गणमें कभी उपपादित नही होती ॥ २० ॥

इति न्यायेन यतो जडस्य कारणता न वा अनीश्वरस्य चेतनस्यापि तस्मात्तेन तेन जगद्गतजन्मस्थित्यादिभावविकारतत्तद्भेदक्रियासहस्ररूपेण स्थातुमिच्छोः स्वतन्त्रस्य भगवतो महेश्वरस्येच्छैवोत्तरोत्तरमुच्चस्वभावा क्रिया विश्वकर्तृत्वं वोच्यत इति । इच्छामात्रेण जगन्निर्माणमित्यत्र दृष्टान्तोऽपि स्पष्टं निर्दिष्टः ।

योगिनमिपि मृद्बीजे विनैवेच्छावशेन यत् ।
घटादि जायते तत्तत् स्थिरस्वार्थक्रियाकरमिति ॥ २१ ॥

इत्यादि न्यायानुसार, जिसकारण; जड़गणका और अनीश्वरचेतनका जिसप्रकार कारणता-नही, उसीकारण, स्वतन्त्रस्वरूप भगवान्महेश्वर उस उस जगद्गत जन्म स्थिति प्रभृतिभाव-विकारका उस २ भेदक्रियामें हजारों प्रकारसे अवस्थिति करनेके लिये इच्छुक होनेपरभी, उसकी उस इच्छाको उत्तरोत्तर उच्चस्वभाव क्रिया या विश्वकर्तृत्व कहते हैं इच्छामात्रसे इस-प्रकार जो जगत्का निर्माण होजाताहै, उसका दृष्टान्तभी स्पष्ट निर्दिष्ट हुआ है:—योगियोंकी इच्छावशसे मृत्तिका और बीज विना घटादि उत्पन्न होजाताहै । इसीका नाम इच्छानुसारिणी-क्रियाशक्ति है ॥ २१ ॥

यदि घटादिकं प्रति मृदाद्येव परमार्थतः कारणं स्यात् तर्हि कथं योगीच्छामात्रेण घटादिजन्म स्यात् । अथोच्यते अन्य एव मृद्बीजादिजन्मा घटाङ्कुरादयो योगेच्छाजन्यास्त्वन्या एवेति । तत्रापि बोध्यसे सामग्रीभेदात्तावत् कार्य्यभेद इति सर्वजनप्रसिद्धम् । ये तु वर्णयन्ति नोपादानं विना घटाद्युत्पत्तिरिति ॥ योगी त्विच्छया परमाणून् व्यापारयन् सङ्घट्टयतीति तेऽपि बोधनीयाः । यदि परिदृष्टकार्य्यकारणभावविपर्य्ययो न लभ्येत तर्हि घटमृद्दण्डचक्रादिदेह स्त्रीपुरुषसंयोगादिसर्वमपेक्षेत तथा च योगीच्छासमनन्तरसञ्जातघटदेहादिसम्भवो दुःसमर्थ एव स्यात् चेतन एव तु तथा भाति भगवान् भूरिभूमा महा-

देवो नियत्यनुवर्त्तनोल्लङ्घनतरस्वान्तन्त्र्य इति पक्षे न काचि-दनुपपात्तिः । अत एवोक्तं वसुगुप्ताचार्य्यैः—

निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते ।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कालाश्लाघ्याय शूलिन इति ॥ २२ ॥

यदि घटादिके उत्पत्तिमतिमृत्तिकादि परमार्थतः कारणहोता है, तो किसप्रकार योगीकी इच्छामात्रसे घटादिकी उत्पत्ति होजासकती ? यदि कहोकि मृत्तिका और बीजादिजनितघट और अंकुरादि, योगीकी इच्छाजनित है उस २ घटादिसे सम्पूर्ण भिन्नपदार्थ ऐसे होनेपरभी बुझना होगा कि सामग्री भेदसे कार्य्यप्रभेदहोजाता है; यह सर्व्वजनप्रसिद्ध है । पुनः जो लोग कहते हैं जो, उपादानके बिना घटादिकी उत्पत्ति नहीं होती । योगीकी इच्छावशतः परमाणु-सबको व्यापारितकर संघटितकरते हैं, उनकी यह बात बुझना उचित है, यदि दृश्यमान कार्य्यकारणभाव विपर्य्यय नहीं होता, तो घट और मृद्दण्डचक्रादि देहमें सबप्रकारका व्यापारअपेक्षित होता है । और योगीकी इच्छामात्रसे समुद्भूतघटादि सम्भव दुःसमर्थ होजाता है । इसप्रकार चैतन्यस्वरूप भगवान् भूरिभगमहादेव नियतिका अनुवर्त्तन अतिक्रमकरके, निरवच्छिन्न स्वातन्त्र्यसहकारसे विहार करते हैं इसविषयमें किसीप्रकार अनुपपत्ति नहीं । इसी कारण वसुगुप्ताचार्य्यने कहा है—जो किसीप्रकार उपादान सम्भार ग्रहण न करके अभित्तिहीमें यह जगद्रूपचित्र अङ्कित करते हैं, उस भगवान्महादेवको नमस्कार करताहूं ॥ २२ ॥

ननु प्रत्यगात्मनः परमेश्वराभिन्नत्वे संसारसम्बन्धः कथं भवे-दिति चेत्तत्रोक्तमागमाधिकारे—

एष प्रमाता मायान्धः संसारी कर्मबन्धनः ।
विद्यादिज्ञापितैश्वर्यश्चिद्घनो मुक्त उच्यत इति ॥ २३ ॥

यदि कहो कि प्रत्यगात्मा परमेश्वरसे अभिन्न है तो उसका संसारबन्ध किसप्रकारहोताहै? आगमाधिकारमें इसविषयका समाधान किया है--यही प्रमाता मायावशसे मोहाच्छन्न होनेहीसे, कर्म्मबन्धनग्रस्त और उसका निर्बन्धनसंसारीहोते हैं । और जब विद्यादि सहायतासे ऐश्वर्य्य-परिज्ञात और निरवच्छिन्न चित्तसत्तामे आविष्ट होते हैं. तब मुक्त होजाते हैं ॥ २३ ॥

ननु प्रमेयस्य प्रमातृभिन्नत्वे बन्धमुक्त्योः प्रमेयं प्रति को विशेषः अत्राप्युत्तरमुक्तं तत्त्वार्थसंग्रहाधिकारे—

मेयं साधारणं मुक्तः स्वात्माभेदेन मन्यते ।
महेश्वरो यथा बद्धः पुनरत्यन्तभेदवादिति ॥ २४ ॥

यदि कहोकि, प्रमेय प्रमातासे अभिन्न है। सुतरां, प्रमेयके प्रतिबन्धमुक्तिका विशेष क्या? तत्त्वार्थसंग्रहाधिकारमें इसविषयमें भी उत्तरदियाहै:—आत्मा और मुक्तस्वरूप महेश्वर साधारण प्रमेयको अभेदसे ज्ञानकरता है। किन्तु जब उक्तरूपसे बद्धहोते हैं, तब पुनः अत्यन्त भेद तुल्य करते हैं ॥ २४ ॥

नन्वात्मनः परमेश्वरत्वं स्वाभाविकं चेन्मार्थः प्रत्यभिज्ञाप्रार्थनया न हि बीजमप्रत्यभिज्ञातं सति सहकारिसाकल्ये अङ्कुरं नोत्पादयति। तस्मात् कस्माद्धात्मप्रत्यभिज्ञाने निर्बन्ध इति चेदुच्यते। शृणु तावदिदं रहस्यं, द्विविधा ह्यर्थक्रिया बाह्याङ्कुरादिका प्रमातृविश्रान्तिचमत्कारसारा प्रीत्यादिरूपा च। तत्राद्या प्रत्यभिज्ञानं नापेक्षते, द्वितीया तु तदपेक्षत एव। इहाप्यहमीश्वर इत्येवम्भूतचमत्कारसारा परापरसिद्धिलक्षणजीवात्मैकत्वशक्तिविभूतिरूपार्थक्रियेति स्वरूपप्रत्यभिज्ञानमपेक्षणीयम् ॥२५॥

यदि कहो कि; आत्माका परमेश्वरत्व स्वभाव सिद्ध है। सुतरां प्रत्यभिज्ञा प्रार्थनाका प्रयोजन नहीं है, अप्रत्यभिज्ञातबीज क्या सहकारी सबको समवायसे अंकुर उत्पादन नहीं करता? अतएव किसलिये आत्मप्रत्यभिज्ञानमें निर्बन्ध? यह बात सत्यतो है। किन्तु इसप्रसङ्गमें रहस्य है। सो सुनो। अर्थ क्रिया दोप्रकारकी है प्रथम, बाह्यांकुरादिका और द्वितीय, प्रमातृ विश्रान्ति चमत्कार सारा और प्रीत्यादिरूपा है। उनमें प्रथम, प्रत्यभिज्ञानकी किसप्रकार अपेक्षा नहीं रखती। किन्तु द्वितीय, सर्व्वथा उसकी अपेक्षा करती। मैं भी वही ईश्वर इत्याकारमें एवं भूत जो चमत्कार सारा अर्थक्रिया परापर सिद्धरूप जीव और आत्मा दोनोंकी ऐक्यशक्ति विभूतिस्वरूप, उसमें प्रत्यभिज्ञान सर्व्वथा अपेक्षणीय होता है ॥ २५ ॥

ननु प्रमातृविश्रान्तिसारार्थक्रिया प्रत्यभिज्ञानेन विना दृष्टा सती तस्मिन् दृष्टेति क दृष्टम्। अत्रोच्यते, नायकगुणगणसंश्रवणप्रवृद्धानुरागा काचन कामिनी मदनविह्वला विरहक्लेशमसहमाना मदनलेखावलम्बं ननु स्वावस्थानिवेदनानि विधत्ते तथा वेगात्तन्निकटमटत्यपि तस्मिन्नवलोकितेऽपि तदवलोकनं तदीयगुण परामर्शाभावे जनसाधारणत्वं प्राप्त हृदयङ्गमभावं न लभते। यदा तु मूर्त्तिवचनात् तदीयगुणपरामर्शं करोति तदा तत्क्षणमेव पूर्णभावमत्येति। एवं स्वात्मनि विश्वेश्वरात्मना भासमानेऽपि

तन्निर्भासनं तदीयगुणपरामर्शविरहसमयं पूर्णं भावं न सम्पादयति यदा तु गुरुवचनादिना सर्वज्ञत्वसर्वकर्तृत्वादिलक्षणपरमेश्वरोत्कर्षपरामर्शो जायते तदा तत्क्षणमेव पूर्णात्मतालाभः । तदुक्तं चतुर्थे विमर्शे—

तैस्तैरप्युपयाचितैरुपनतस्तस्याः स्थितोऽप्यन्तिके
कान्तो लोकसमान एवमपरिज्ञातो न रन्तुं यथा ।
लोकस्यैष तथानपेक्षितगुणः स्वात्मापि विश्वेश्वरो
नवायं निजवैभवाय तदियं तत्प्रत्यभिज्ञोदिता इति ॥२६॥

यदि कहोकि, प्रमातृ विश्रान्तिसारा अर्थ क्रिया प्रत्यभिज्ञान विना नही दीखता यह कहां देखा और कैसे जाना ? इसका उत्तर यह है जो नायकके गुणागुण सविशेष सुनकर अनुराग अत्यन्त बढकर कोई कामिनी मदन विह्वलाहो विरहक्लेश न सहनकर मदनलेखन अवलम्बन कर, अपनी अवस्थाका निवेदन करती है । एव वह नायक दृष्टिविषयमे उपस्थित होकर, मनके वेगसे उसके निकटमें भी भ्रमणकरताहै । किन्तु यदि नायकके गुणश्रवणका अभाव होता है, तो उसका अवलोकन जनसाधारणत्व प्राप्त होजाताहै, उसकामिनीका हृदयङ्गमभाव नही पासकता है । इसप्रकार स्वात्मा विश्वेश्वरात्मद्वारा भासमान होनेपरभी वह निर्भासन, उल्लिखित विश्वेश्वरात्माका गुणपरामर्श विरहसमयमे पूर्णभावसे परिणतनही होताहै। किन्तु जिससमय गुरुवचनादिद्वारा परमेश्वरका सर्व्वज्ञत्वभी सर्व्वकर्तृत्वादि स्वरूपउत्कर्ष परामृष्ट होताहै उससमय तत्क्षण पूर्णात्मताप्राप्त होती है । चतुर्थविमर्शमे यह विषय कहाहैः—नायकका गुण यदि जाना न जावे तो, सो साधारणलोकमें गण्य होजानेसे उस २ उपयाचितद्वारा उपनीत और निकटमें अवस्थित होनेसे भी, कामिनीके मनोरञ्जनमें समर्थ नही होता, इसप्रकार महेश्वर स्वात्मस्वरूप होनेपरभी गुणपरामर्श विरहसे लोकके निकट निजवैभवप्रकाशपूर्वक उसका हृदयाकर्षण नहीं करता । इसीकारण प्रत्यभिज्ञाकी अवतारणा हुई है ॥ २६ ॥

अभिनवगुप्तादिभिराचार्य्यैर्विहितप्रतानोऽपि अयमर्थः संग्रहमुपक्रममाणैरस्माभिर्विस्तरभिया न प्रतानित इति सर्वं शिवम् ॥२७॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे प्रत्यभिज्ञादर्शनं समाप्तम् ॥ ८ ॥

अभिनवगुप्तादि आचार्यगणने इसविषयमें सविस्तार वर्णनकिया है । हमलोग केवल संग्रहमें प्रवृत्त हैं । इसकारण विस्तारभयसे इसविषयको अधिक न बढाकर यहीं समाप्त किया ॥२७॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें प्रत्यभिज्ञादर्शन समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

अथ रसेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥

अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनोऽपि पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिः सेत्स्यतीत्यास्थाय पिडस्थैर्योपायं पारदादिपदवेदनीयं रसमेव सङ्गिरन्ते । रसस्य पारदत्वं संसारपरपारप्रमाणहेतुत्वेन । तदुक्तम्—

संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृत इति ॥ १ ॥

कोई २ माहेश्वरसम्प्रदायवाले परमेश्वरके तादात्म्यको मानकरभी, पिण्डस्थैर्यमें अर्थात् इसदेहको यदि किसीप्रकार अविकृत अवस्थामें रक्खाजाता, तो सब लोगोंके अभिमत जीवन्मुक्ति मिलसकती है, इस सहारेसे, पारदआदि शब्दवेद्य रसकोही पिण्डस्थैर्यका उपाय कहकर निर्देश करते हैं । क्योंकि, रस संसारका परपारप्राप्तिका कारण है । इसकारण उसका नाम पारद हुआ है उसीप्रकार कहा है:—संसारका परपार प्रदानकरता है, इसकारण पारद कहते हैं ॥ १ ॥

रसार्णवेऽपि—

पारदो गदितो यस्मात्परार्थं साधकोत्तमैः ।
सुप्तोऽयं मत्समो देवि मम प्रत्यङ्गसम्भवः ॥ २ ॥

रसार्णवमें कहा है:-- देवि ! यह मेरे समान एवं मेरेप्रत्यङ्गसे समुद्भूत हुआ है । इसलिये साधक श्रेष्ठ सुप्तस्वभाव इसको पारद कहते हैं ॥ २ ॥

मम देहरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते इति ॥ ३ ॥

अधिक क्या, यहमेरे देहका रसहै । इसी कारण इसको रसभी कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रकारान्तरेणापि जीवन्मुक्तिरुक्ता नेयं वाच्या मुक्तिर्मुक्तिमतीति चेन्न षट्स्वपि दर्शनेषु देहपातानन्तरं मुक्तेरुक्ततया तत्र विश्वासानुपपत्त्या निर्विचिकित्सप्रवृत्तेरनुपपत्तेः । तदप्युक्तं तत्रैव—

षड्दर्शनेऽपि मुक्तिस्तु दर्शिता पिण्डपातने ।
करामलकवत्सापि प्रत्यक्षा नोपलभ्यते ।
तस्मात्तं रक्षयेत्पिण्डं रसैश्चैव रसायनैरिति ॥ ४ ॥

यदि कहो कि, अन्यप्रकारसे भी जीवन्मुक्ति [illegible], यह बात युक्तियुक्त नहीं होसकती । विशेषतः षड्दर्शनोंमें भी देहपातके पीछे मुक्तिकी बात कही गई है । [illegible]

उसमें अविश्वास होजाता एवं इसीकारण किसीकी उसमें निःसन्देह प्रवृत्तिभी नहीं होसकती है। उसीमें यहभी कहागया है, छः दर्शनोंमें शरीरत्यागके पीछे मुक्तिका होना कहा है। यह मुक्ति हस्तामलककी नाई प्रत्यक्ष होनेपरभी, नहीं प्राप्त होती। इसी लिये रस और रसायनकी सहायतासे पिण्डकी रक्षा करनी ॥ ४ ॥

गोविन्दभगवत्पादाचार्य्यैरपि–

इति धनशरीरभोगान्मत्वा नित्यान्सदैव यतनीयम्।
मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे इति ॥ ५ ॥

गोविन्दभगवत्पादाचार्य्यने भी कहाहै इसप्रकार धन, शरीर, भोग, सब नित्य जानकर सदा ही मुक्तिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ यह मुक्ति ज्ञानद्वारा प्राप्त कियी जाती है। ज्ञान अभ्याससे मिलता है। देह स्थिरभाव मिलनेही पर यह, अभ्याससंग्रह होता है ॥ ५ ॥

ननु विनश्वरतया दृश्यमानस्य देहस्य कथं नित्यत्वमनुमीयत इति चेन्मैवं मंस्थाः षाट्कौशिकस्य शरीरस्यानित्यत्वे रसाभ्रकपदाभिलप्यहरगौरीसृष्टिजातस्य नित्यत्वोपपत्तेः । तथा च रसहृदये–

ये चात्यक्तशरीरा हरगौरीसृष्टिजान्तरं प्राप्ताः।
वन्द्यास्ते रससिद्धा मन्त्रगणः किङ्करो येषामिति ॥ ६ ॥

यदि कहो कि, सम्पूर्ण संसारही विनश्वर है। तो ऐसा कहनेसे यह दृश्यमान देह नित्य-कहकर, किस प्रकार मानाजावे ! ऐसा कभी नहीं समझना। षट्कौशिक इसदेहके अनित्य होनेपर भी, रसाभ्रकपदवाच्य हरगौरी सृष्टिजातका नित्यत्व उपपन्न होता है । और इसी प्रकार रसहृदयमें कहा है,–जिन लोगोंने इस शरीरसे हरगौरीका सृष्टि जान्तर पाया है वे ही लोग रससिद्ध है। एवं इसीकरण सब लोगोंको वन्दनीय है। सबही मंत्र उनके किङ्कर है ॥ ६ ॥

तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमं दिव्यतनुर्विधेया। हरगौरीसृष्टिसंयोगजनितत्वञ्च रसस्य हरजत्वेनाभ्रकस्य गौरीसम्भवत्वेन तत्तदात्मकत्वमुक्तम्।

अभ्रकस्तव बीजन्तु मम बीजन्तु पारदः।
अनयोर्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनमिति ॥ ७ ॥

इसकारण जीवन्मुक्तके अभीलाषी योगीपुरुष दिव्य देह विधान करेंगे । हरसे रस उत्पन्न और गौरीसे अभ्रक उत्पन्न हुआ है। इसीकारण दोनोंको हरगौरीके सृष्टिके संयोगसे उत्पन्न और उसको निबन्धन तदात्मक कहकर निर्दिष्ट हुआ है, जैसे-- हे देवि ! अभ्रक तुम्हारा रज और पारद मेरा बीज है । इन दोनोंका मिलन मृत्यु और दरिद्रताको दूर करता है ॥ ७ ॥

अत्यल्पमिदमुच्यते देवदैत्यमुनिमानवादिषु बहवो रससामर्थ्याद्दिव्यं देहमाश्रित्य जीवन्मुक्तिमाश्रिताः श्रूयन्ते । रसेश्वरसिद्धान्ते—

देवाः केचिन्महेशाद्या दैत्याः कंसपुरःसराः ।
मुनयो वालखिल्याद्या नृपाः सोमेश्वरादयः ॥ ८ ॥

यह तो सामान्य बात है । देव, दैत्य, मुनि, मनुष्यादिमेंभी अनेक लोगोंने रसके प्रभावसे दिव्यदेह धरकर जीवन्मुक्ति पायी है, रसेश्वर सिद्धान्तमें सुनाजाता है कि, महेशादि कोई २ देवगण, कंसादि दैत्यगण, वालखिल्यादि ऋषिगण, सोमेश्वरादि राजागण ॥ ८ ॥

गोविन्दभगवत्पादाचार्य्यो गोविन्दनायकः ।
चर्वटिः कपिलो व्यालिः कापालिः कन्दलायनः ॥ ९ ॥

गोविन्द भगवत पादाचार्य, गोविन्दनायक, चर्व्वटि, कपिल, व्यालि, कापालि, कन्दलायन ॥ ९ ॥

एतेऽन्ये बहवः सिद्धा जीवन्मुक्ताश्चरन्ति हि ।
तनुं रसमयीमाप्य तदात्मककथाचणा इति ॥ १० ॥

ये लोग एवं अन्यान्य अनेक व्यक्ति सिद्ध और जीवन्मुक्त होकर, रसमय शरीर पाकर विचरण करते हैं ॥ १० ॥

अयमेवास्यार्थः परमेश्वरेण परमेश्वरीं प्रति प्रपञ्चितः ।

कर्मयोगेन देवेशि प्राप्यते पिण्डधारणम् ।
रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा स्मृतः ॥ ११ ॥

मूर्च्छितो हरति व्याधीन्मृतो जीवयति स्वयम् ।
बद्धः खेचरतां कुर्य्याद्रसो वायुश्च भैरवीति ॥ १२ ॥

रस और वायु मूर्छित होनेपर व्याधि सब हरण करते हैं, स्वयं मरनेपर, जीवनदान करते हैं, बद्धहोनेसे खेचरत्व सम्पादन करते हैं ॥ १२ ॥

मूर्च्छितस्वरूपमप्युक्तम्–
नानावर्णो भवेत्सूतो विहाय घनचापलम् ।
लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्छितं तं वदन्ति हि ॥ १३ ॥

मूर्च्छितका स्वरूपभी कहा है;--जिसका घनत्व और चपलत्व नहीं, इसप्रकार अनेकवर्णके रसको मूर्छित कहते है ॥ १३ ॥

आर्द्रत्वञ्च घनत्वञ्च तेजो गौरवचापलम् ।
यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्वान्मृतसूतकमिति ॥ १४ ॥

आर्द्रत्व और घनत्व और तेज गौरव चपलत्व ये सब जिसमें नही देखाजावे उसका नाम मृतसूतक, जानना ॥ १४ ॥

अन्यत्र बद्धस्वरूपमप्यभ्यधायि–
अक्षतश्च लघुद्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः ।
स्फोटनं पुनरावृत्तौ बद्धसूतस्य लक्षणमिति ॥ १५ ॥

अन्यत्र बद्धका रूपभी कहा है:, अक्षत, लघुद्रावी, तेजोविशिष्ट, निर्म्मल और गुरु, यही बद्धसूतकका लक्षण है ॥ १५ ॥

ननु हरगौरीसृष्टिसिद्धौ पिण्डस्थैर्य्यमास्थातुं पार्य्यते तत्सिद्धिरेव कथमिति चेन्न अष्टादशसंस्कारवशात्तदुपपत्तेः ।
तदुक्तमाचार्य्यैः–
तस्य हि साधनविधौ सुधियां प्रति कर्म निर्मलाः प्रथमम् ।
अष्टादश संस्कारा विज्ञातव्याः प्रयत्नेनेति ॥ १६ ॥

यदि कहो कि. महादेव और पार्वतीके सृष्टि सिद्धि होनेपर, पिण्डस्थैर्य कियाजासकता । इसपर यह कहते हैं कि. वह सिद्धि किसप्रकार सम्पन्न होसकती है ! इसका उत्तर यह है कि, १८ संस्कार वशतः उसकी उत्पत्ति होजाती है । आचार्यगणने सब कहा है-- उसके साधन करनेपर सुधीगण, यत्नसे प्रथम १८ संस्कारको जानें ॥ १६ ॥

ते च संस्कारा निरूपिताः--

स्वेदनमर्दनमूर्च्छनस्थापनपातननिरोधनियमाश्च ।
दीपनगमनग्रासप्रमाणमथ जारणा पिधानम्
गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिक्षारणसरागसारणाश्चैव ।
क्रामणवेधौ भक्षणमष्टादशधेति रसकर्मेति ॥ १७ ॥

उन संस्कारको विषयमें कहाजाता है:--स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, स्थापन, पातन, निरोधन, दीपन, गमन, ग्रसन, प्रमाण, जारण, पिधान, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, क्षारण, क्रमण, वेध, भक्षण, ये प्रकार रसकर्म्मके हैं ॥ १७ ॥

तत्प्रपञ्चस्तु गोविन्दभगवत्पादाचार्य्यसर्वज्ञरामेश्वरभट्टारकप्रभृतिभिः प्राचीनैराचार्य्यैर्निरूपित इति ग्रन्थभूयस्त्वभयादुदास्यते॥ न च रसशास्त्रं धातुवादार्थमेवेति मन्तव्यं देहवेधद्वारा मुक्तेरेव परमप्रयोजनत्वात् । तदुक्तं रसार्णवे-

लोहवेधस्त्वया देव यद्दत्तः परमीशितः ।
त्वं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात् खेचरी गतिः ॥ १८ ॥

गोविन्दभगवत्पादाचार्य और सर्वज्ञ रामेश्वर भट्टारक प्रभृति प्राचीन आचार्योंने इसका सविस्तर वर्णनकिया है । ग्रन्थविस्तारभयसे यहां अधिक नहीं लिखागया । रसशास्त्रको केवल धातुवादार्थ समझना उचित नहीं क्योंकि इसकेद्वारा देहवेधपूर्वक मुक्तिरूप परमप्रयोजन सिद्धहोता है । रसार्णवमें कहा है;--हे देव । जिसके द्वारा खेचरीगति सिद्ध होती है, उसी देहवेधका कीर्तन करें ॥ १८ ॥

यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सता ॥ १९ ॥

जिसप्रकार लोहेमें उसीप्रकारदेहमें सूतकप्रयोगकरना साधुलोगोंको कर्त्तव्य है ॥ १९ ॥

समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः ।
एवं लोहे परीक्षेत पश्चाद् देहे प्रयोजयेदिति ॥ २० ॥

गलितानल्पविकल्पः सर्वाध्वविवक्षितश्चिदानन्दः ।
स्फुरितोऽप्यस्फुरिततनोः करोति किं जन्तुवर्गस्येति॥२१॥

यदि कहोकि, सच्चिदानन्दमय परतत्वके विस्फुरणद्वारा, मुक्तिसिद्धहोती है ।सुतरां दिव्यशरीर सम्पादनके निमित्त परिश्रमका क्या प्रयोजन? इसका उत्तर यह है जो, यह वर्तमानदेह अवार्त्त अर्थात् मट्टीकीनाई सर्व्वथा स्फूर्तिशून्य है । सुतरां मृत्तिकादिमें सूर्य्यकिरण किसीप्रकार प्रतिफलितनहीं होती, यह जड़देहमेंभी उसीप्रकार चैतन्यज्योतिकी प्रस्फुरण सम्भावना नहीं । रसहृदयमें भी कहाहै:--सर्वविध सम्प्रदायही जो परम अभीष्ट रूपसे उल्लिखित हुआ है । एव जिसमे किसीप्रकार लेशमात्र विकल्पभी नहीं, वही चिदानन्द स्फुरित होनेपरभी अस्फुरित देहविशिष्ट जन्तुगणका क्या करसकता ? ॥ २१ ॥

यं जरया जर्जरितं काशश्वासादिदुःखविशदश्च ।
योग्यं तं न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियप्रसरम् ॥ २२ ॥

विशेषतः, जो व्यक्ति बुढाया कारण एकमात्र जर्जरित, कासश्वासादि दुःखसे अवसादित उसके कारणसे समाधिसाधनमें सर्व्वथा अनुपयुक्त, एवं सर्व्वथा बुद्धि और इन्द्रिय प्रसार विवर्जित हुआहै, चिदानन्द उसका क्या करसकते ? ॥ २२ ॥

बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलम्पटः परतः ।
यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिमिति च ॥२३॥

बालक, अथवा विषय रसास्वादमें नितान्त कामुकचित्त १६ वर्षका युवा या विवेक बहिष्कृत बुढाही किस प्रकार मुक्ति पावेगा ? इसीकारण, दिव्यदेहकी आवश्यकताहै, ॥२३॥

ननु जीवत्वं नाम संसारित्वं तद्विपरीतत्वं मुक्तत्वं तथाच परस्परविरुद्धयोः कथमेकायतनत्वमुपपन्नं स्यादिति चेत्तदनुपपन्नं विकल्पानुपपत्तेः । मुक्तिस्तावत् सर्वतीर्थकरसम्मता । सा किं ज्ञेयपदे निविशते न वा चरमे शशविषाणकल्पा स्यात् प्रथमे न जीवनंवर्जनीयमजीवतो ज्ञातृत्वानुपपत्तेः । तदुक्तं । रसेश्वरसिद्धान्ते—

रसाङ्कमेयमार्गोक्तो जीवमोक्षोऽस्त्यधोमनाः ।
प्रमाणान्तरवादेषु युक्तिभेदावलम्बिषु ॥

ज्ञानज्ञेयमिदं विद्धि सर्वमन्त्रेषु सम्मतम् ।
न जीवन् ज्ञास्यति ज्ञेयं यदतोऽस्त्येव जीवनमिति ॥ २४ ॥

यदि कहो कि, जीवशब्दसे संसारी; और मुक्तशब्दसे उसके विपरीत । अतएव परस्पर विरुद्ध दो पदार्थ किस प्रकार एकस्थानमें रहसकते हैं ? इसका उत्तर यह है जो, मुक्ति जब शास्त्रमें और सब सम्प्रदायमें एकवाक्यसे मानाहै, तो सन्देहके अभाव वशात, इसप्रकार पूर्वपक्षभी नहीं हो सकता । इस समय पूछना यही है, जो वह मुक्ति क्या ज्ञेयपदमें विनिविष्ट या चरममें शशविषाण अर्थात् खरहेके सींगकी नाईं सर्व्वथा कल्पनामात्र होता है । ज्ञेय पदमें विनिविष्ट होनेसे, जीवन छोडना उचित नहीं क्यों कि, अजीवितका ज्ञातृत्व सर्वथा असम्भवहै । रसेश्वर सिद्धान्तमें कहा है-- भिन्न २ प्रमाणवाद भिन्न २ युक्तिसम्पन्न सब प्रकारके तन्त्रही उसप्रकार ज्ञात ज्ञेय प्रतिपादित हुआ है । इसमें किसीका मतभेद नहीं । फलता जीवित न रहनेसे, ज्ञेय विषय विदित नहीं होता इसीकारणजीवनका प्रयोजन है ॥ २४ ॥

न चेदमदृष्टचरमिति ॥ मन्तव्यं विष्णुस्वामिमतानुसारिभिः नृपञ्चास्य शरीरस्य नित्यत्वोपपादनात् । तदुक्तं साकारसिद्धौ—

सच्चिन्नित्यनिजाचिन्त्यपूर्णानन्दैकविग्रहम् ।
नृपञ्चास्यमहं वन्दे श्रीविष्णुस्वामिसम्मतमिति ॥ २५ ॥

इसप्रकार जीवन्मुक्तित्व अदृष्टचरहोनेपरभी मन्तव्य नहीं । विष्णुस्वामीके मतानुसार गणने हारे शरीरके नित्यत्व उपपादित किया है साकारसिद्धिमें कहा है जो सत्स्वरूप, नित्यरूप, नित्यस्वरूप, एवं नित्य अचिन्त्यपूर्ण आनन्दही जिसका एकमात्र विग्रह श्रीविष्णुस्वामि सम्मत इसीपर देखना और उसके रूपकी वन्दना करता हूं ॥ २५ ॥

नन्वेतत् सावयवं रूपमवभासमानं नृकण्ठीरवाङ्गं सदिति न सङ्गच्छत इत्यादिनाक्षेपपुरःसरं सहस्रशीर्षा पुरुष इत्यादिश्रुतिः, तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंख-गदाद्युदायुधमित्यादिपुराणलक्षणेन प्रमाणत्रयेण सिद्धं नृपञ्चा-ननाङ्गं कथमसत् स्यादिति । गदादीनि विशेषणानि सर्वं श्री-कान्तमिश्रैः विष्णुस्वामिचरणपरिणतान्तःकरणैः प्रतिपादि-तानि । तस्मादस्मदिष्टदेहनित्यत्वमनवद्यमिदं न भवतीति पुरु-षार्थकामुकैः पुरुषैरेष्टव्यम् ।

अतएवोक्तम्—

आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकमिति ॥ २६ ॥

सहस्रशीर्षापुरुष इत्यादि श्रुति अनुसार स्पष्टही जाना जासकता है कि, सनकने उसको प्रत्यक्ष किया था पुराणमेंभी कहा है, वह शंख गदा आदि आयुध भूषित; चतुर्भुज विशिष्ट कमललोचन, अद्भुताकृतिबालकको इत्यादि इन सब प्रमाणोंसे उक्तवाक्य किसप्रकार मिथ्या होसकता है ? विष्णुस्वामीके चरणपरिणतान्तःकरणगर्भ श्रीकान्तमिश्रने उल्लिखित सच्चित-प्रभृति विशेषण सब प्रतिपादित किया है । इन कारणोंसे हमारा अभीष्ट देह नित्यत्व अत्यन्त अदृष्ट नही है । अतएव, पुरुषार्थ प्रार्थी पुरुष वर्ग इसकी अवश्य कामना और सन्धानादि करेंगे । इसीलिये कहा है कि,-- एकमात्र अजरामर शरीरको त्यागकर, अन्य और ऐसा क्या है. जो सब विद्याओंका घर, धर्म्म अर्थ काम और मोक्षका मूल एवं परमश्रेयस्वरूप हो सकता है ॥ २६ ॥

अजरामरीकरणसमर्थश्च रसेन्द्र एव । तदाह—
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुत इति ॥ २७ ॥

रसेन्द्रही केवल इसप्रकार अजरामर करनेमें समर्थ है । उन्होंने भी कहा है:-- एकमात्र यह रसराजही शरीरको अजर और अमर करता है ॥ २७ ॥

किं वर्ण्यते रसस्य माहात्म्यं दर्शनस्पर्शनादिनापि महत्फलं भवति ।

तदुक्तं रसार्णवे—
दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य भक्षणात् स्मरणादपि ।
पूजनाद्रसदानाच्च दृश्यते षड्विधं फलम् ॥ २८ ॥

इसका माहात्म्य और क्या कहा जावेगा ? इसका दर्शन और स्पर्शनादिद्वारा महाफल [illegible] सकता है । रसार्णवमेंभी कहा है,— रसका स्पर्शन; दर्शन, भक्षण और स्मरण एवं पूजन और रस दान करनेपरभी छः प्रकार फल लाभ होता है ॥ २८ ॥

केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनादित्यादिना ॥२९॥

[illegible] केदारादि जो सब लिङ्ग हैं उनके दर्शनसेभी रसदर्शनकाफल अधिक है [illegible] ॥ २९ ॥

अन्यत्रापि—

काश्यादिसर्वलिङ्गेभ्यो रसलिंगार्चनं शिवम्।
प्राप्यते येन तल्लिङ्गं भोगारोग्यामृतामरमिति ॥ ३० ॥

अन्यत्र कहा भी है,--केदार आदि सबप्रकारलिङ्ग अपेक्षा रसलिङ्गका अर्चनकरनाही परममङ्गल कारक है। यहलिङ्ग मिलनेपर, भोग, आरोग्य, अमृत और अमरत्व लाभ होता है ॥ ३० ॥

रसनिन्दायाः प्रत्यवायोऽपि दर्शितः।
प्रमादाद्रसनिन्दायाः श्रुतावेनं स्मरेत् सुधीः।
द्राक् त्यजेन्निन्दकं नित्यं निन्दया पूरितोऽशुभमिति ॥ ३१ ॥

रसकी निन्दा करनेपर पाप होता है। वहभी दिखलाया है:,--प्रमादवशतः रसकी निन्दा सुननेसे, पण्डित लोग इसका स्मरण और उसीक्षण निन्दकको त्याग करना चाहिये। ऐसी निन्दासे निंदक अशुभ परम्परासे पूर्ण होजाता है ॥ ३१ ॥

तस्मादस्मदुक्तया रीत्या दिव्यं देहं सम्पाद्य योगाभ्यासवशात् परतत्त्वे दृष्टे पुरुषार्थप्राप्तिर्भवति। तदा—

भ्रूयुगमध्यगतं यत् शिखिविद्युत्सूर्य्यवज्जगद्भासि।
केषाञ्चित् पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं ज्योतिः ॥ ३२ ॥

इसलिये हमारी कही हुई रीत्यनुसारणपूर्वक दिव्यदेह सम्पादनकर, योगाभ्यासके पर तत्वके दर्शन होनेसे, पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। तब--जो दोनों भौंके बीच होकर, अग्नि-बिजुली, और सूर्य्यकी नाई सम्पूर्ण जगत, आभासित करता है, कोई [illegible] महात्मा पुण्यात्मा आदिके दृष्टि गोचर चिन्मय ज्योति उन्मीलित होती है ॥ ३२ ॥

परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिः स्वभावमविकल्पम्।
विगलितसकलक्लेशज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम् ॥ ३३ ॥

इन परमज्योतिमें परमानन्द एकमात्र रसरूपसे विराजते हैं। यह स्वभावतः निर्विकल्प है उसके प्रभावसे सबही क्लेश विगलित होजाता है वह स्वसंवेद्य और शान्त [illegible] अवश्य जानने योग्य है ॥ ३३ ॥

तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत् पश्यन्।
उत्सन्नकर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोतीति ॥ ३४ ॥

इसमें मन लगाकर, परमस्फूर्ति विशिष्ट, और यह चिन्मय जगत [illegible] कर्मबन्धन छेदनपूर्वक इस लोकमें ब्रह्मत्व पाता है ॥ ३४ ॥

श्रुतिश्च–

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दो भवतीति ॥ ३५ ॥

श्रुतिमें कहाहै, वह रसस्वरूप है । यह रसलाभ करनेपर, आनन्दी होजाता है ॥३५॥

तदित्थं भवेदन्यदुःखभरतरणोपायो रस एवेति सिद्धम् ।

तथा च रसस्य परब्रह्मणा साम्यमिति प्रतिपादकः श्लोकः ।

यः स्यात् प्रावरणाविमोचनधियां साध्यः प्रकृत्या पुनः
सम्पन्नो सहते न दीव्यति परं वैश्वानरे जाग्रति ।
जातो यद्यपरं न वेदयति च स्वस्मात् स्वयं द्योतते
यो ब्रह्मैव स दैन्यसंसृतिभयात् पायादसौ पारद इति ॥३६॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे रसेश्वरदर्शनं समाप्तम् ॥ ९ ॥

इसप्रकार रस जो दुःखभारपरिहार विषयका उपाय है, सो सिद्ध हुआ । और परब्रह्मके, साथ रसका साम्य प्रतिपादनकर श्लोकभी लिखा है–यह पारा वा पारद साक्षात ब्रह्म है । दैन्य और संसृति भयसे रक्षा करता । यह ब्रह्मकी नाई स्वयंही विद्योतित है । स्थूलदेहरूपी आवरणको हटानेकी अभिलाषा करनेवाले लोग ब्रह्मकी नाई इसकी साधना करें । फिर, यह ब्रह्मकी नाई प्रकृतिसम्पन्न होता है । वैश्वानरकी जाग्रत् अवस्थामें उसकेसाथ ब्रह्मकी नाई क्रीडा करता है ॥ ३६ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें रसेश्वरदर्शन समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

अथौलूक्यदर्शनम् ॥ १० ॥

इह खलु निखिलप्रज्ञावन्निसर्गप्रतिकूलवेदनीयतया निखिलात्मसंवेदनसिद्धं दुःखं जिहासुस्तद्धानोपायं जिज्ञासुः परमेश्वरसाक्षात्कारमुपायमाकलयति ।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयन्तीह मानवाः ।

परमेश्वर साक्षात्कारकोही वह उपाय कहकर वर्णन किया है । जैसे--मनुष्यगण आकाशको, चामकी नाई वेष्टनकर शिवज्ञानशून्य होनेपर, इन लोगोंको दुःखका नाश न होगा ॥ १ ॥

इत्यादिवचननिचयप्रामाण्यात् परमेश्वरसाक्षात्कारश्च श्रवणमननभावनाभिर्भावनीयः । यदाह–

आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासबलेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तममिति ॥ २ ॥

आगम, अनुमान, और ध्यानके अभ्यासके बलसे, इन तीन उपायोसे प्रज्ञा प्रकल्पित करसकनेहीसे, उत्कृष्टयोग होता है ॥ २ ॥

तत्र मननमनुमानाधीनं, अनुमानञ्च व्याप्तिज्ञानाधीनं, व्याप्तिज्ञानञ्च पदार्थविवेकसापेक्षम्–
अतः पदार्थषट्कम् । अथातो धर्मं व्याख्यास्याम इत्यादिकायां दशलक्षण्यां कणभक्षेण भगवता व्यवस्थापि । तत्राह्निकद्वयात्मके प्रथमेऽध्याये समवेताशेषपदार्थकथनमकारि । तत्रापि प्रथमाह्निके जातिमन्निरूपणं, द्वितीयाह्निके जातिविशिष्टयोर्निरूपणम्, आह्निकद्वययुक्ते द्वितीयेऽध्याये द्रव्यनिरूपणम् । तत्रापि प्रथमाह्निके भूतविशेषणलक्षणं, द्वितीये दिक्कालप्रतिपादनम् । आह्निकद्वययुक्ते तृतीये आत्मान्तःकरणलक्षणम् । तत्राप्यात्मलक्षणं प्रथमे द्वितीये अन्तःकरणलक्षणम्, आह्निकद्वययुक्ते चतुर्थे शरीरतदुपयोगिविवेचनम् । तत्रापि प्रथमे तदुपयोगिविवेचनं, द्वितीये शरीरविवेचनम् । आह्निकद्वयवति पञ्चमे कर्मप्रतिपादनम् । तत्रापि प्रथमे शरीरसम्बन्धिकर्मचिन्तनं, द्वितीये मानसकर्मचिन्तनम् । आह्निकद्वयशालिनि षष्ठे श्रौतधर्मनिरूपणम् । तत्रापि प्रथमे दानप्रतिग्रहधर्मविवेकः, द्वितीये चातुराश्रम्योचितधर्मनिरूपणम् । तथाविधे सप्तमे गुणसमवायप्रतिपादनम् । तत्रापि प्रथमे बुद्धिनिरपेक्षगुणप्रतिपादनं, द्वितीये तत्सापेक्षगुणप्रतिपादनं, समवायप्रतिपादनञ्च । अष्टमे निर्वि-

कल्पकसविकल्पकप्रत्यक्षप्रमाणचिन्तनम् । नवमे बुद्धिविशेषप्रतिपादनम् । दशमे अनुमानभेदप्रतिपादनम् ॥ ३ ॥

उनमें मनन अनुमानके आधीन, अनुमान व्याप्तिज्ञानके आयत्त एवं व्याप्तिज्ञानपदार्थ विवेकके सापेक्षहै इसीकारण भगवान् कणादने, अनन्तर इसकारण धर्म्मव्याख्या करूंगा, इत्यादि कहकर'-उगलक्षणीमे छःप्रकार पदार्थोंको व्यवस्थापित किया है । उनमें दो आन्हिकवाले पहिले अध्यायमें सम्पूर्ण समवेत पदार्थोंका कथन कियाहै । इसमें पहिले आन्हिकमें जातिनिरूपण और द्वितीय आन्हिकमें जाति और विशेष दोनोका निरूपण कियाहै। दो आन्हिकवाले द्वितीय अध्यायमें सब द्रव्योंका निरूपण उसमें पहिले आन्हिकमें भूतविशेषलक्षण, द्वितीयमें दिशाकालका प्रतिपादन कियाहै । आन्हिकवाले तृतीय अध्यायमें आत्मा और अन्तःकरणका लक्षण उनमें प्रथम आन्हिकमे आत्माके लक्षण और द्वितीयमें अन्तःकरणका लक्षण निरूपित हुआ है । दो आह्निकयुक्त चौथे अध्यायमें शरीर और उसके उपयोगी विवेचन उनमें प्रथम आह्निकमे उसके उपयोगी विवेचन और द्वितीयमेंशरीरका विवेचन किया है । दो आह्निकयुक्त पञ्चम अध्यायमें कर्म्म प्रतिपादन, उनमें प्रथम आन्हिकमें शरीरसम्बन्धी चिन्तन और द्वितीय आह्निकमे मनः सम्बन्धी कर्म चिन्तन किया है । आन्हिकद्वययुक्त छठा अध्यायमें श्रौतधर्म्म निरूपण उनमें प्रथम अध्यायमें दान और प्रतिग्रह धर्म्मविवेक, द्वितीय अध्यायमें चार आश्रमोंका विहित धर्म्मनिरूपण, इसप्रकार आन्हिकद्वययुक्त सप्तम अध्यायमें गुणसमवायप्रतिपादन उनमें प्रथम अध्यायमें बुद्धि निरपेक्ष गुणप्रतिपादन और द्वितीय अध्यायमें बुद्धिसापेक्ष गुणप्रतिपादन और समवाय प्रतिपादन किया है । अष्टम अध्यायमें निर्विकल्प और प्रत्यक्षप्रमाण चिन्तन नवम अध्यायमें बुद्धिविशेषप्रतिपादन और दशम अध्यायमें अनुमानभेद प्रतिपादन कहा है ॥ ३ ॥

तत्र उद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति त्रिविधास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः । ननु विभागापेक्षया चातुर्विध्ये वक्तव्ये कथं त्रैविध्यमुक्तमिति चेन्मैवं तस्याः विभागस्य विशेषोद्देश एवान्तर्भावात् । तत्र द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाया भावा इति षडेव ते पदार्था इत्युद्देशः ॥ ४ ॥

किमत्र क्रमनियमे कारणम् उच्यते समस्तपदार्थायतनत्वेन प्रधानस्य द्रव्यस्य प्रथममुद्देशः। अनन्तरं गुणत्वोपाधिना सकलद्रव्यवृत्तेर्गुणस्य तदनु सामान्यवत्त्वसाम्यात् कर्मणः पश्चात्त्रितयाश्रितस्य सामान्यस्य तदनन्तरं समवायाधिकरणस्य विशेषस्य अन्ते अवशिष्टस्य समवायस्येति क्रमनियमः॥ ५॥

यहां क्रमनियमका कारण क्या?वह कहाजाता है। द्रव्य, सब पदार्थोंका आयतन होनेसे प्रधान है। इसकारण प्रथमही उसका उद्देशकर, अनन्तर सब द्रव्यवृत्तिका गुणत्व उपाधि है इसीकारण गुणका उद्देश्य किया है। इसके पीछे सामान्यवत्त्व साम्यवशतः कर्मका, पीछे उक्त तीनके आश्रित सामान्यका, तदनन्तर समवायाधिकरण विशेष अन्तमें अवशिष्ट समवायका उद्देश किया गया। यही क्रमनियमका कारण है॥ ५॥

ननु षडेव पदार्थाः इति कथं कथ्यते अभावस्यापि सद्भावादिति चेन्मैवं वोचः नञर्थानुल्लिखितधीविषयतया भावरूपतया षडेवेति विवक्षितत्वात्। तथापि कथं षडेवेति नियम उपपद्यते विकल्पानुपपत्तेः। तथाहि नियमव्यवच्छेद्यं प्रमितं न वा प्रमितत्वे कथं निषेधः अप्रमितत्वे कथन्तरां, न हि कश्चित् प्रेक्षावान् मूषिकाविषाणं प्रतिषेद्धुं यतते। ततश्चानुपपत्तेर्नो नियम इति चेन्मैवं संपीपिष्ठाः सप्तमतया प्रमिते अन्धकारादौ भावत्वस्य भावतया प्रमिते शक्तिसंख्यादौ सप्तमत्यस्य च निषेधादिति कृतं विस्तरेण॥ ६॥

येही छः पदार्थ हैं, यह किसप्रकार कहा जासकता क्योंकि, अभावकाभी सद्भाव है। किन्तु ऐसा नहीं कहसकते। इसका कारण यह है जो नञ् अर्थसे अनुल्लिखित बुद्धिविषयतामें छःही इत्यादिविवक्षित हुआ है। अर्थात् इन सबकी बुद्धिविषयताका अभाव नहीं। लोकमें सहजही बुझसकते हो, इसकारण विशेषरूपसे निर्धारण किया गयाहै। तथापि, किसप्रकार छःही इसप्रकार नियम किया जासकता। ऐसे करनेपर, सन्देहही और उत्पत्ति नहीं। इसीप्रकार, जिस नियमके विषयीभूत, उसके प्रमित क्या, अप्रमित? प्रमित होनेपर किसप्रकार निषेध होसकता? और अप्रमित होनेहीपर किसप्रकार निषेध सम्भवपर होता?

कौन बुद्धिमान् पुरुष मूषिकके विषाण (सींग) को प्रतिषेध करनेके लिये यत्न करता ? इसकारण अनुपपत्तिवशात् नियम नही किया जासकता । किन्तु ऐसा नही कहसकते । उसका कारण यह है जो सप्तम कहकर परिगणित अन्धकारादिमें भावत्वका भावत्व है । उसकेद्वारा प्रमित शक्तिसंख्यादिमे सप्तमत्वका निषेध होता है । विस्तारसे प्रयोजन नहीं॥ ६॥

तत्र द्रव्यादित्रितयस्य द्रव्यत्वादिजातिर्लक्षणम् । द्रव्यत्वं नाम गगनारविन्दसमवेतत्वे सति नित्यगन्धासमवेतम् । गुणत्वं नाम समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नसमवेतसत्तासाक्षाद्व्याप्य-जातिः । कर्मत्वं नाम नित्यसमवेतत्वसहितसत्तासाक्षाद्व्या-प्यजातिः । सामान्यन्तु प्रध्वंसप्रतियोगित्वरहितमनेकसम-वेतम् । विशेषो नामान्योन्याभावविरोधिसामान्यरहितः समवेतः । समवायस्तु समवायरहितः सम्बन्ध इति षण्णां लक्षणानि व्यव-स्थितानि ॥ ७ ॥

द्रव्यत्वादि जाति उल्लिखित द्रव्यादि त्रितयका लक्षण अर्थात् जिसमें द्रव्यत्व है, उसका नाम द्रव्य है जिसमें गुणत्व है, उसका नाम गुण एवं जिसमें कर्म्मत्व है, उसका नाम कर्म्म है, द्रव्यत्वशब्दसे आकाश और पद्मका समवेतत्व है। नित्यगन्धमें सो नहीं । अर्थात् अनित्य पदार्थही सुतरां पद्मका गन्ध कहनेसे पद्मका द्रव्यत्व नही समझना । इसप्रकार समवायिकारण. असमवायिकारण भिन्न समवेत सत्ताद्वारा जो साक्षात् सम्बन्धमें व्याप्त है, उसका नाम गुण है । कर्म्मत्व कहनेसे. यही समझना चाहिये, नित्यसमवेतत्व सत्ता साक्षात्व्याप्यजाति है । जिसमें प्रध्वंसकी प्रतियोगिता नही इसप्रकार अनेक समवेतत्वका नाम सामान्य है । विशेषशब्दसे परस्परका अभावहीन सामान्य विहीन समवेत समवाय शब्दसे जिसमे समवाय नही इसप्रकार सम्बन्ध इसप्रकार छः पदार्थका लक्षण व्यवस्थित हुआ है ॥ ७ ॥

द्रव्यं नवविधं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसीति । तत्र पृथिव्यादिचतुष्टयस्य पृथिवीत्वादिजातिर्लक्षणम् । पृथिवीत्वं नाम पाकजरूपसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः । अप्त्वं नाम सरित्सागरसमवेतत्वे सति सलिलसमवेतं सामान्यम् तेजस्त्वं नाम चन्द्रचामीकरसमवेतत्वे सति ज्वलनसमवेतं सामान्यम् । वायुत्वं नाम [illegible]

द्रव्याप्यजातिः । आकाशकालदिशामेकैकत्वादपरजात्यभावे पारिभाषिक्यस्तिस्रः संज्ञा भवन्ति, आकाशः कालो दिगिति। संयोगाजन्यजन्यविशेषगुणसमानाधिकरणविशेषाधिकरणमाकाशम्। विभुत्वे सति दिगसमवेतपरत्वासमवायिकारणाधिकरणः कालः। अकालत्वे सत्यविशेषगुणा महती दिक्। आत्ममनसोरात्मत्वमनस्त्वे। आत्मत्वं नाम अमूर्त्तसमवेतद्रव्यत्वापरजातिः। मनस्त्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वरहिताणुसमवेतद्रव्यत्वापरजातिः ॥ ८ ॥

द्रव्य नव ९ प्रकारका है, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, और मन। उनमें पृथिवीत्वादि जाति पृथिवी प्रभृति चतुष्टयका लक्षण अर्थात, जिसमे पृथिवीत्व है, उसका नाम पृथिवी है पृथिवीत्व शब्दसे पाकजरूप समानाधिकरण द्रव्यत्वद्वारा साक्षात् सम्बन्धमें व्याप्यजाति समझना चाहिये पाकज शब्दसे हांड़ी प्रभृति ॥ जो सरित सागरादिमें सलिलरूपसे समवेत हुआ है, उसका नाम आप्त्व है । इस प्रकार तेजत्व कहनेसे, यह समझना चाहिये जो चन्द्रमा और स्वर्णादितेजः पदार्थोंमें ज्वलनाकारसे समवेत हुआ है ॥ वायुत्व शब्दसे त्वक् इन्द्रियके द्वारा अनुभूत होता है, इसप्रकार द्रव्यव्याप्य जाति है आकाश काल और दिशा इनका एकत्ववशात अपरजाति नहीं । सुतरां, इनकी पारिभाषिक संज्ञा तीन प्रकारकी होती है । जैसे, आकाश, काल और दिशा। उनमे जिस किसी प्रकार पदार्थके संयोगसे उत्पन्न नहो, इसप्रकार जन्यविशेष एव जिसमें गुणसमानाधिकरण और विशेषाधिकरण है, उसका नाम आकाश है । जो विभुत्व सम्पन्न जो राय दिशाओंमें समवेत नही एवं जिसमें असमवायिकारणका अधिकरण हो उसका नाम काल है। जिसका कालत्व नहीं और विशेषगुणभी नहीं उसका नाम दिशाहै। जिसका आत्मत्व है, उसका नाम आत्मा एवं जिसका मनस्त्व है, उसका नाम मन है। उनमें आत्मत्व शब्दसे अमूर्त समवेत द्रव्यत्व नहीं, अर्थात् जो मूर्त्तिहीन है, वही आत्मा है इसप्रकार जिसमें द्रव्यत्व समवायिकारणत्व नहीं, इसप्रकार अणुसमवेत द्रव्यत्व अर्थात मन कहनेसे यह समझना चाहिये, समवायिकारणत्व विरहित अणुरूप पदार्थकोही मन कहते है ॥ ८ ॥

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च कण्ठोक्ताः सप्तदश च शब्दसमुच्चिताः गुरुत्वद्रव्यत्वस्नेहसंस्कारादृष्टशब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्वि-

शतिर्गुणाः । तत्र रूपादिशब्दान्तानां रूपत्वादिजातिर्लक्षणम् । रूपत्वं नाम नीलसमवेतगुणत्वापरजातिः । अनया दिशा शिष्टानां लक्षणानि द्रष्टव्यानि ॥ ९ ॥

उनमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रव्यत्व, स्नेह, संस्कार, अदृष्ट, शब्द येही २४ गुण पदार्थ है ॥ उनमे रूपसे शब्द पर्य्यन्त पदार्थका रूपत्वादि जाति ही लक्षण है अर्थात् जिसका रूपत्व है उसका नाम रूप । इसप्रकार रसत्व है उसका नाम रस इत्यादि उनमें रूपशब्दसे नील समवेत गुणत्वापरजाति । इसका भावार्थ यह है कि नील पीतादि वर्णसे जो समवेत है, जो न रहनसे उस २ वर्णकी प्रतिमा नही होती, उसका नाम रूपत्व है । इसी प्रकार इत्यादि अन्यान्य पदार्थोंका लक्षण करलेना ॥ ९ ॥

कर्म पञ्चविधम् उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनभेदात् । भ्रमणरेचनादीनां गमन एवान्तर्भावः । उत्क्षेपणादीनामुत्क्षेपणत्वादिजातिर्लक्षणम् । तत्र उत्क्षेपणं नाम ऊर्द्ध्वदेशसंयोगासमवायिकारणप्रमेयसमवेतकर्मत्वापरजातिः । एवमवक्षेपणादीनां लक्षणं कर्त्तव्यम् ॥ १० ॥

कर्म्म पांचप्रकारके हैं, जैसे उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन, भ्रमण और रेचनादि व्यापार सब गमनके अन्तर्भूत हैं । इसकारण उन सबका भिन्न २ उल्लेख नहीं हुआ उनमें जिसमें उत्क्षेपणत्व है । उसका नाम उत्क्षेपण है । उत्क्षेपणत्व कहनेसे यह समझना चाहिये जो ऊर्द्धदेशसंयोग । वह असमवायि कारणद्वारा प्रमित होता है । इसप्रकार अवक्षेपणादि लक्षण करना चाहिये ॥ १० ॥

सामान्यं द्विविधं परमपरञ्च । परं सत्ता द्रव्यगुणसमवेता गुणकर्मसमवेता वा, अपरं द्रव्यत्वादितल्लक्षणं प्रागेवोक्तम् । विशेषाणामनन्तत्वात् समवायस्य चैकत्वाद्विभागो न सम्भवति । तल्लक्षणञ्च प्रागेवावादि ॥ ११ ॥

सामान्य दो प्रकारका पर और अपर । उनमें जो द्रव्यगुणसे समवेत या जो गुणकर्म्मसे समवेत होते हैं, उसीसत्ताका नाम पर है । एवं अपरशब्दसे द्रव्यत्वादि । उसका लक्षण पूर्वही कहा गया है । विशेष उसका अन्त नही । एव समवायका भी द्वितीयत्व नही । वह एकमात्र समवाय । इसीकारण इन दोनोंका विभागसम्भव नही । इनका लक्षण पहिले कहागया ॥ ११ ॥

द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे ।
यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुरिति ॥ १२ ॥

द्वित्व, पाकजोत्पत्ति, विभागजविभाग, इन सबमें जिसकी बुद्धि स्खलित नहीं होती, उसीको वैशेषिक कहते हैं ॥ १२ ॥

अभाणकस्य सद्भावात् द्वित्वाद्युत्पत्तिप्रकारः प्रदर्श्यते । तत्र प्रथममिन्द्रियार्थसन्निकर्षस्तस्मादेकत्वसामान्यज्ञानं, ततोऽपेक्षाबुद्धिः, ततो द्वित्वोत्पत्तिस्ततो द्वित्वसामान्यज्ञानं तस्माद्द्वित्वगुणज्ञानं ततः संस्कारः ॥ १३ ॥

द्वित्वप्रभृतिका उत्पत्तिका प्रकार दिखलाया जाता है । उनमें पहिले इन्द्रियविषयका सन्निकर्ष, उससे एकत्वसामान्यका ज्ञान, अनन्तर अपेक्षाबुद्धि पीछे द्वित्वोत्पत्ति, उसके अनन्तर द्वित्वसामान्यज्ञान उससे द्वित्वगुणज्ञान अनन्तर संस्कार उत्पन्नहोता है ॥ १३ ॥

तदाह—

आदाविन्द्रियसन्निकर्षघटनादेकत्वसामान्यधी-
रेकत्वोभयगोचरा मतिरतो द्वित्वं ततो जायते ।
द्वित्वत्वप्रमितिस्ततोऽनुपरतो द्वित्वप्रमानन्तरं
द्वे द्रव्ये इति धीरियं निगदिता द्वित्वोदयप्रक्रियेति ॥ १४ ॥

उसीप्रकार कहा भी है,—आदिमें इन्द्रियसन्निकर्षघटनासे एकत्व सामान्य बुद्धिकी घटनाका उदय होता है । उसके परकालमें एकत्वका उभयगोचर ज्ञान उत्पन्न होता है । उससे द्वित्वकी उत्पत्ति होती है । अनन्तर द्वित्वत्व प्रमिति, पश्चात् द्वित्वप्रमा अनन्तर, दो पदार्थ, इसप्रकार बुद्धिका उदय होता है । इसीका नाम द्वित्वोदय प्रक्रिया है ॥ १४ ॥

द्वित्वादेरपेक्षाबुद्धिजन्यत्वे किं प्रमाणम् । अत्राहुराचार्याः—
अपेक्षाबुद्धिर्द्वित्वादेरुत्पादिका भवितुमर्हति व्यञ्जकत्वानुपपत्तेः ।
तेनानुविधीयमानत्वात् शब्दं प्रति संयोगवदिति ॥ १५ ॥

द्वित्वादि जो अपेक्षा बुद्धिजनित है, इसविषयका प्रमाण क्या ? इसके उत्तरमें आचार्योंने कहा है कि, अपेक्षा बुद्धिही द्वित्वादिकी उत्पादिकाहै इसका कारण यह है जो उसमें व्यञ्जकत्व की उत्पत्ति है । शब्द जिसप्रकार दो वस्तुओंके संयोगसे उत्पन्न होता उसीप्रकार द्वित्वादि अपेक्षा बुद्धिके संयोगसे समुद्भूत होता है । हमारे मतमें अनेकाश्रित गुणत्वजनकः [illegible]

पार्थक्यादिका प्रकाश होता है अर्थात् पृथक् कहनेहीसे जैसे अनेकके आश्रित रहकर प्रतीति उत्पन्न होती है । उसी प्रकार दो कहनेसे, दो एकका ज्ञान होता है । यह ज्ञान नित्य है । अर्थात् चिरकालही दो एकसे दो होता है, इसप्रकार बुद्धिका उदय होता है ॥ १५ ॥

वयन्तु ब्रूमः द्वित्वादिकमेकत्वद्वयविषयानित्यबुद्धिव्यङ्ग्यं न भवति अनेकाश्रितगुणत्वात् पृथक्त्वादिवादिति ।

निवृत्तिक्रमो निरूप्यते । अपेक्षाबुद्धित एकत्वसामान्यज्ञानस्य द्वित्वोत्पत्तिसमकालं निवृत्तिः अपेक्षाबुद्धेर्द्वित्वसामान्यज्ञानात् द्वित्वगुणबुद्धिसमसमयं द्वित्वस्यापेक्षाबुद्धिनिवृत्तेर्द्रव्यबुद्धिसमकालं गुणबुद्धेः द्रव्यबुद्धितः संस्कारोत्पत्तिसमकालं द्रव्यबुद्धेस्तदनन्तरं संस्कारादिति तथा च संग्रहश्लोकाः ।

आदावपेक्षाबुद्ध्या हि नश्येदेकत्वजातिधीः ।
द्वित्वोदयसमं पश्चात् सा च तज्जातिबुद्धितः ॥ १६ ॥

इससमय निवृत्तिका क्रम निरूपित होता है । अपेक्षाबुद्धिसे द्वित्वोत्पत्तिका समकालमें ही सामान्यतः एकत्व ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । उसीप्रकार सामान्यतः द्वित्वज्ञान उत्पन्न होनेसे द्वित्वगुण बुद्धिकी समकालहीमें अपेक्षाबुद्धि निवृत्त हो जाती है । अपेक्षा बुद्धि निवृत्त होनेपर, ज्योंही द्रव्यबुद्धिका उदय होता है, उसके तुल्यही कालमें द्वित्वका लय होता है । द्रव्यबुद्धिसे संस्कारोत्पत्तिके समकालमें गुणबुद्धिकी निवृत्ति होती है संग्रहश्लोकमें यों कहाहै, जैसे आदिमें अपेक्षाबुद्धिसे एकत्व जातिबुद्धिका विनाश होता है । पश्चात् द्वित्वोदयके सम समयमें तज्जातिबुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका लय होताहै ॥ १६ ॥

द्वित्वाख्यगुणधीकाले ततो द्वित्वं निवर्त्तते ।
अपेक्षाबुद्धिनाशेन द्रव्यधीजन्मकालतः ॥ १७ ॥

द्वित्वनामक गुणबुद्धिके उदयसमयमें द्वित्वकी निवृत्ति होती है । द्रव्यबुद्धिके जन्म समयमें अपेक्षाबुद्धिका नाश होनेपर ऐसा संघटित होता है ॥ १७ ॥

गुणबुद्धिर्द्रव्यबुद्ध्या संस्कारोत्पत्तिकालतः ॥
द्रव्यबुद्धिश्च संस्कारादिति नाशक्रमो मत इति ॥ १८ ॥

द्रव्यबुद्धिसे [illegible] संस्कारोत्पत्तिके समयमें गुणबुद्धिका विनाश होता है । अनन्तर संस्कारसे [illegible] द्रव्यबुद्धिकी निवृत्ति होजातीहै । यही निवृत्तिका क्रम है ॥ १८ ॥

१२

बुद्धेर्बुद्ध्यन्तरविनाश्यत्वे संस्कारविनाश्यत्वे च प्रमाणं विवादाध्यासितानि ज्ञानानि उत्तरोत्तरकार्य्यविनाश्यानि क्षणिकविभुविशेषगुणत्वात् शब्दवत् । द्रव्यारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनककर्मसमकालमेकत्वसामान्यचिन्तया आश्रयनिवृत्तेरेव द्वित्वनिवृत्तिः कर्मसमकालमपेक्षाबुद्धिचिन्तनादुभाभ्यामिति संक्षेपः ।

अपेक्षाबुद्धिर्नाम विनाशकविनाशप्रतियोगिनी बुद्धिरिति बोद्धव्यम् ॥ १९ ॥

अपरबुद्धिको हृदय और संस्कारके आविर्भावसे जो बुद्धिका विनाश होता है, उसविषयमें परस्पर विरुद्धज्ञान सबहीप्रमाणहै। वह२ज्ञान उत्तरोत्तर कार्य्यद्वारा विनष्ट होताहै । इसविषयमें शब्दही दृष्टान्तहै शब्दही आकाशका गुण विशेषहै । वह क्षणिकहै । क्योंकि, एकशब्दके परे और एकशब्दकी उत्पत्ति होनेहीसे, प्रथमोत्पन्न शब्दका विनाश होताहै । उसप्रकार एकविषयके ज्ञानके परे अपरविषयके ज्ञान होनेपर प्रथम ज्ञानका नाश होता है । विभागजनक कर्म्ममात्रही द्रव्यारम्भक संयोगका प्रतिद्वन्द्वी है । इसकर्म्मके समकालमें एकत्वसामान्य चिन्ताद्वारा आश्रयका विनाश एवं अपेक्षाबुद्धिकी चिन्ता इन दोनोंप्रकारके कारणोंसे द्वित्वकी विनिवृत्ति होती है । संक्षेपमें इसीप्रकार कहा जाता है । विनाशक और विनाश्य इन दोनोंकी प्रतियोगिनी बुद्धिका नाम अपेक्षा बुद्धिहै । अर्थात् जिस बुद्धिसे विनाशक और विनाश्य दोनोंका पृथक् आकारसे ज्ञान हो उसीको अपेक्षाबुद्धि कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ द्व्यणुकनाशमारभ्य कतिभिः क्षणैः पुनरन्यद्द्व्यणुकमुत्पद्य रूपादिमद्भवतीति जिज्ञासायामुत्पत्तिप्रकारः कथ्यते । नोदनादिक्रमेण द्व्यणुकनाशः, नष्टे द्व्यणुके परमाणावग्निसंयोगात् श्यामादीनां निवृत्तिः, निवृत्तेषु श्यामादिषु पुनरन्यस्मादग्निसंयोगाद्रक्तादीनामुत्पत्तिः उत्पन्नेषु रक्तादिषु अदृष्टवदात्मसंयोगात् परमाणौ द्रव्यारम्भणाय क्रिया, तया पूर्वदेशाद्विभागः, विभागेन पूर्वदेशसंयोगनिवृत्तिः, तस्मिन्निवृत्ते परमाण्वन्तरेण संयोगोत्पत्तिः, संयुक्ताभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकारम्भः, आरब्धे द्व्यणुके कारणगुणादिभ्यः कार्य्यगुणादीनां रूपादीनामुत्पत्ति-

रिति यथाक्रमं नव क्षणाः । दशक्षणादिप्रकारान्तरं विस्तरभयान्नेह प्रतन्यते । इत्थं पीलुपाकप्रक्रिया पीठपाकप्रक्रिया तु नैयायिकधीसम्मता ॥ २० ॥

इससमय द्व्यणुकके विनाशसे पुनः अन्य द्व्यणुककी उत्पत्ति होती है । रूपादिका आविर्भाव होता है । ऐसे प्रश्नकी अपेक्षामें उत्पत्ति प्रकार कहा जाता है । परस्पर संचालनादि क्रमसे द्व्यणुकका नाश होता है । अर्थात् दो अणु एकत्र होकरहै । सो किसीप्रकार चालित होनेपर, परस्पर वियुक्त होताहै । उसीमें द्व्यणुकका नाश होता है द्व्यणुकके नष्ट होनेपर, परमाणुमें अग्निके संयोगवशतः श्यामादिकी निवृत्ति होती है । श्यामादिकी निवृत्ति होनेपर, फिर अन्यप्रकार अग्निसंयोगसे रक्तादिकी उत्पत्ति होती है । रक्तादि उत्पन्न होनेपर अदृष्टकी नाईं आत्मसंयोगवशसे परमाणुमें द्रव्यकी आरम्भजन्य उत्पत्ति होतीहै । उसीके द्वारा पूर्व्व देशसे विभाग होताहै । विभागके द्वारा पूर्वदेशके संयोगकी निवृत्ति होती है । संयोगनिवृत्त होनेपर, अन्यपरमाणुकी सहायतासे संयोगकी और उत्पत्ति होतीहै । इसप्रकार दो प्रमाणुके संयोगसे द्व्यणुकका आरम्भ होताहै । द्व्यणुकके आरम्भ होनेसे कारणगुणादिसे कार्य्यगुणादि रूपादिकी उत्पत्ति होतीहै । येही नवक्षणहैं । अर्थात् इसप्रकार नवक्षणहीमें रूपादिका उद्भव होताहै । इसके अतिरिक्त, कोई २ देश क्षणादि प्रकारभेद निर्देश करते हैं । बाहुल्यभयसे उसका विस्तारनही किया गया । एवं प्रकार अणु और द्व्यणुककी सिद्धि प्रक्रियाही नैयायिकोंकी बुद्धिसम्मत है ॥ २० ॥

विभागजविभागो द्विविधः कारणमात्रविभागजः कारणाकारणविभागजश्च । तत्र प्रथमः कथ्यते । कार्य्यव्याप्ते कारणे कर्मोत्पन्नं यदावयवान्तराद्विभागं विधत्ते न तदाकाशादिदेशाद्विभागः यदा त्वाकाशादिदेशाद्विभागः न तदावयवान्तरादिति स्थितिनियमः कर्मणो गगनविभागाकर्तृत्वस्य द्रव्यारम्भकसंयोगाविरोधिविभागारम्भकत्वेन धूमस्य धूमध्वजवर्गेणैव व्यभिचारानुपलम्भात् ततश्चावयवकर्म अवयवान्तरादेव विभागं करोति नाकाशादिदेशात् तस्माद्विभागाद्द्रव्यारम्भकसंयोगनिवृत्तिः । ततः कारणाभावात् कार्य्याभाव इति न्यायादवयविनिवृत्तिः, निवृत्तेऽवयविनि तत्कारणयोरवयवयोर्वर्त्तमानो विभागः कार्य्यविनाशविशिष्टं कालं स्वतन्त्रं वावयवमपेक्ष्य सक्रियस्यैवावयव-

स्य कार्य्यसंयुक्तादाकाशदेशाद्विभागमारभते न निष्क्रियस्य कारणाभावात् ॥ २१ ॥

विभागज विभाग दो प्रकारका है कारणमात्र विभागज है और कारणाकारणविभागज है। उनमें पहिले कारणमात्र विभागजका विवरण किया जाता है कारण कार्य्यव्याप्त होनेपर, कर्म्म उत्पन्न होकर जिससमय अवयवान्तरसे विभाग विधान करता है, उस समय आकाशादि देशका विभाग नहीं होता। समझोकि, एकपात्र, उसको तोड़कर विभागकरनेपर उसके अवयवहीका परस्पर वियोग होता है। किन्तु उसके भीतर जो आकाश है—उसका विभाग नहीं होता वह जैसाका तैसा रहताहै। जिससमय आकाशादि देशसे विभाग होताहै, उस समय अवयवान्तरादिसे विभाग नहीं होता। यही स्थितिका नियमहै। आकाश विभाग जिस कर्म्मका कर्त्ता नहीं है उस पक्षमें किसी प्रकार अन्यथाभाव नहीं है। इस कर्म्मके द्वारा जो द्रव्यसमुत्पादक संयोगका व्याघात साधक विभाग संघटित होताहै, उसीसे प्रमाणित होताहै। अनन्तर अवयवकर्म्म अवयवान्तरसे विभाग विधान करताहै, अकाशादिदेशसे नहीं। उल्लिखित विभागसेही द्रव्यान्तरके संयोगकी निवृत्ति होतीहै। अनन्तर "कारणके अभावसे कार्य्यका अभाव होता है" इत्यादिन्याय अनुसार अवयवीकी निवृत्ति होती है। अवयवीकी निवृत्ति होनेपर, उसका कारणस्वरूप दोनों अवयवोंका वर्त्तमान विभाग समुत्पादित होता है। उसीसे कार्य्यविनाश विशिष्ट और कालसे स्वतन्त्र अवयवकी अपेक्षा कर, क्रियायुक्त अवयवका कार्य्यसंयुक्त आकाशदेशसे विभाग विहित होता है। कारण के अभावसे क्रियाहीन अवयवका विभाग नहीं होता ॥ २१ ॥

द्वितीयस्तु हस्ते कर्मोत्पन्नमवयवान्तराद्विभागं कुर्वत् आकाशादिदेशेभ्यो विभागानारभते। ते कारणाकारणविभागाः कर्म यां दिशं प्रति कार्य्यारम्भाभिमुखं तामपेक्ष्य कार्य्याकार्य्यविभागमारभते यथा हस्ताकाशविभागाच्छरीराकाशविभागः। न चासौ शरीरक्रियाकार्य्यस्तदा तस्य निष्क्रियत्वात् नापि हस्तक्रियाकार्य्यः व्यधिकरणस्य कर्मणो विभागकर्तृत्वानुपपत्तेः। अतः पारिशेष्यात् कारणाकारणविभागस्य कारणत्वमङ्गीकरणीयम् ॥ २२ ॥

अधुना दूसरा प्रकार कहा जाता है। हस्तमें कर्म्म उत्पन्न होकर अवयवान्तरसे विभाग विधान करते हुए आकाशादि देशसे विभाग सबका समाधान करता है, उन्हीं सबका नाम कारणाकारण विभाग है, कर्म्म जो दिशाके प्रतिकार्य्यके आरम्भनमें सन्मुख होता है, उसी

अपेक्षा कर, कार्य्याकार्य्यविभाग संसाधित करताहै, जिस प्रकार, हाथके आकाश विभागसे शरीराकाश विभाग । वह शरीर क्रियाका कार्य्य नहीं । क्योंकि, तत्काल उसकी किसी प्रकार क्रिया नहीं रहती । और वह हस्तक्रिया कार्य्य नहीं है क्योंकि, अधिकरणशून्य, कर्म्मका विभागकर्तृत्व कहां ? अतएव परिशेष्यसे कारणाकारणविभागके कारणत्व अवश्य मानने योग्यहैं ॥ २२ ॥

यद्वादि अन्धकारादौ भावत्वं निषिध्यत इति तदसङ्गतं तत्र चतुर्द्धाविवादसम्भवात् । तथाहि द्रव्यंतम इति भट्टाः वेदान्तिनश्च भणन्ति आरोपितं नीलरूपमिति श्रीधराचार्य्याः आलोकज्ञानभाव इति प्रभाकरैकदेशिनः आलोकाभाव इति नैयायिकादयः इति चेत्तत्र द्रव्यत्वपक्षो न घटते विकल्पानुपपत्तेः द्रव्यं भवदन्धकारं द्रव्याद्यन्यतममन्यद्वा नाद्यः यत्रान्तर्भावोऽस्य तस्य यावन्तो गुणास्तावद्गुणकत्वप्रसङ्गात् न च तमसो द्रव्यबहिर्भाव इति साम्प्रतं निर्गुणस्य तस्य द्रव्यत्वासम्भवेन द्रव्यान्तरत्वस्य सुतरामसम्भवात् ॥ २३ ॥

अन्धकारादि, भाव पदार्थ नहीं है, वह अभाव पदार्थ है, इसप्रकार जो कहा गया है, सो सङ्गत नहीं इसमें चारप्रकारका विवाद सम्भव होताहै । उसी प्रकार, भट्ट और वेदान्तियोंके मतसे अन्धकार द्रव्यहै । श्रीधर आचार्यगणने आरोपित नीलरूप कहा है । प्रभाकर एकदेशियोंके मतसे आलोकज्ञानका अभाव अन्धकार है । नैयायिकादिके मतसे आलोकका अभावही अन्धकार है। अन्धकार कभी द्रव्य नहीं होसकता । क्योंकि, ऐसा होनेसे विकल्पकी अनुपपत्ति होती है । अन्धकार द्रव्य होनेपर, वह द्रव्यादिसे अन्यतम या अन्य इसप्रकार प्रश्नकी सम्भावना होजाती है । इसके उत्तरमें अन्यतम नहीं कहा जा सकता । क्योंकि, यह अन्धकार जिसके भीतर रहता है । उसका सब गुण इसमें संसक्त रहता है । दूसरे पक्षमें अन्धकारसे द्रव्य बाहर नहीं । क्योंकि, वह निर्गुण है । सुतरां वह द्रव्य हो नहीं सकता । जो द्रव्य नहीं, उसकी और द्रव्यान्तरकी सम्भावना कहां? ॥ २३ ॥

ननु तमालश्यामलत्वेनोपलभ्यमानं तमः कथं निर्गुणं स्यादिति नीलं नभः इतिवत् भ्रान्तिरेवेत्यलं वृद्धवीवधया । अतएव नारोपितरूपं तमः अधिष्ठानप्रत्ययमन्तरेणारोपायोगात् बाह्यालोकसहकारिरहितस्य चक्षुषो रूपारोपे सामर्थ्यानुपलम्भाच्च । न चायमचाक्षुषः प्रत्ययः तदनुविधानस्यानन्यथासिद्धत्वात् । न च विधिप्रत्ययवेद्यत्वायोगो भावे इति साम्प्रतं प्रलयविनाशा-

वधानादिषु व्यभिचारात् । अतएव नालोकज्ञानाभावः अभावस्य प्रतियोगिग्राहकेन्द्रियग्राह्यत्वनियमेन मानसत्वप्रसङ्गात् । तस्मादालोकाभाव एव तमः न चाभावे भावधर्माध्यारोपो दुरुपपादः दुःखाभावे सुखत्वारोपस्य संयोगाभावे विभागत्वाभिमानस्य च दृष्टत्वात् ॥ २४ ॥

यदि कहो कि, तमालवृक्षकी श्यामलता द्वारा जब अन्धकारकी उपलब्धि होती है तो वह किसप्रकार निर्गुणहो सकता ? इसका उत्तर यह है कि, नील आकाश, इसकी नाई वह भ्रान्तिमात्र है । अर्थात् आकाशका कोई रङ्ग नहीं । भ्रमहीसे उसमें नील, पीतादि वर्णका आरोप किया जाता है । उसीप्रकार तमालवृक्षकी श्यामलता द्वारा अन्धकारकी उपलब्धिभी भ्रममात्रहै इसलिये अन्धकार आरोपितरूप नहीं है क्योंकि, अधिष्ठान प्रत्ययके विना आरोपका योग नहीं होता एवं बाह्यालोक सहकारि रहित होनेसे चक्षुके रूपारोपमें समर्थ नहीं रहता । यह अचाक्षुष प्रत्यय नहीं है । ऐसा होनेसे, वह अनुविधान अन्यथा होता है । और, अभावपदार्थमें विधिप्रत्ययवेद्यत्वका संयोग है । सुतरां प्रलय विनाश और अवधानादिमें व्यभिचार होता है । अतएव आलोकज्ञानका अभाव अन्धकार नहीं । क्योंकि, अभावका प्रतियोगिग्राहक इन्द्रियग्राह्यत्व नियमानुसार उसका मानसत्व प्रसङ्ग होता है ॥ २४ ॥

न चालोकाभावस्य घटाद्यभाववद्रूपवदभावत्वेनालोकसापेक्षचक्षुर्जन्यज्ञानविषयत्वं स्यादित्येपितव्यं यद्ग्रहे यदपेक्षं चक्षुस्तदभावग्रहेऽपि तदपेक्षत इति न्यायेनालोकग्रहे आलोकापेक्षाया अभावेन तदभावग्रहेऽपि तदपेक्षाया अभावात् । न चाधिकरणग्रहणावश्यम्भावः अभावप्रतीतावधिकरणग्रहणावश्यम्भावानङ्गीकारादपरथा निवृत्तः कोलाहल इति शब्दप्रध्वंसप्रत्यक्षो न स्यादिति अप्रमाणिकं तव वचनम् । परं तत्सर्वमभिसन्धाय भगवान् कणादः प्रणिनाय सूत्रं, द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभावस्तम इति प्रत्ययवेद्यत्वेनापि निरूपितम् ॥२५॥

इसलिये आलोकका अभावभी अन्धकार नहीं । क्योंकि, अभावमें भावधर्मका अध्यारोप करना दुःसाध्य है । दुःखके अभावमें सुखत्वका आरोप और संयोगके अभावमें विभागत्वाभिमानका आरोप दुर्घट है यह देखपडता है । घटादिके अभावकी नाई आलोकाभावके रूपवत् अभावत्व आलोकसापेक्ष चक्षुर्जनित ज्ञानका विषयीभूत नहीं होसकता, ऐसाभी नहीं

कहा जाता क्योंकि, चक्षु जिसके ग्रहणमें जिसकी अपेक्षा करता उसको अभावग्रहणसमयमेंभी उसीका अपेक्षा होती है इसप्रकार न्यायानुसार आलोकग्रहणकालमें अभावद्वारा उसके अभावग्रहणसमयमेंभी उसकी अपेक्षाका भी अभाव होता है और, अभाव प्रतीति समयमें अधिकरण ग्रहणकी अवश्यम्भाविता अनङ्गीकृत होजानेसे अधिकरण ग्रहणकी अवश्यम्भाविता भी नही । कोलाहल निवृत्त होनेपर, शब्दका एककालमें ध्वंस होजाता है, यह कभी प्रत्यक्ष नही होता । सुतरां, तुम्हारी बात प्रमाण सिद्ध नहीं । ये सब अभिसन्धान करकेही भगवान् कणादने द्रव्य, गुण, कर्म्मे निष्पत्तिके साथ सादृश्य न रहनेसे, अन्धकार अभाव पदार्थ है, इसप्रकार प्रत्यय पर-वशातानुसारसे सूत्र प्रणयन किया है ॥२५॥

अभावस्तु निषेधमुखप्रमाणगम्यः सप्तमो निरूप्यते । स चासमवायत्वे सत्यसमवायः संक्षेपतो द्विविधः संसर्गाभावान्योन्याभावभेदात् । संसर्गाभावोऽपि त्रिविधः प्राक्प्रध्वंसात्यन्ताभावभेदात् । तत्रानित्यो अनादितमः प्रागभावः उत्पत्तिमान् । विनाशी प्रध्वंसः प्रतियोग्याश्रयोऽभावोऽत्यन्ताभावः अत्यन्ताभावव्यतिरिक्तत्वे सत्यनवधिरभावोऽन्योन्याभावः ॥ २६ ॥

निषेधमुख प्रमाणद्वारा जिसका बोध हो उसका नाम अभाव है, वह सप्तम कहकर निरूपित हुआ है । वह संक्षेपतः दो प्रकारका है संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव उनमें, अनित्य और अनित्यतम अभाव प्रागभाव, उत्पत्तिमान् विनाशी प्रध्वंसाभाव एवं प्रतियोग्याश्रय अभाव अत्यन्ताभाव । अत्यन्ताभावसे व्यतिरिक्तता घटनेपर, अनवधि अभावको अन्योन्याभाव कहते हैं ॥ २६ ॥

नन्वन्योन्याभाव एवात्यंताभाव इति चेत् अहो राजमार्ग एव भ्रमः । अन्योन्याभावो हि तादात्म्यप्रतियोगिकः प्रतिषेधः यथा घटः पटात्मा न भवतीति संसर्गप्रतियोगिकः प्रतिषेधोऽत्यन्ताभावः यथा वायौ रूपसम्बन्धो नास्तीति । न चास्य पुरुषार्थौपयिकत्वं नास्तीत्याशङ्कनीयं दुःखात्यन्तोच्छेदापरपर्य्यायनिःश्रेयसरूपत्वेन परमपुरुषार्थत्वात् ॥ २७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे औलूक्यदर्शनं समाप्तम् ॥ १० ॥

अन्योन्याभावकोही अत्यन्ताभाव क्यों नही कहा जावे ? अरो राजमार्गहीमें भ्रम ? अन्योन्याभावका नाम तादात्म्यप्रतियोगिक प्रतिषेध है । जिसप्रकार, घट, पटात्मा नहीं, इत्यादि ।

जो संसर्गप्रतियोगिक प्रतिषेध, उसका नाम अत्यन्ताभाव है । जिसप्रकार वायुमें रूप सम्बन्ध नहीं, इसकी पुरुषार्थ उपयोगिता नहीं, इसप्रकार आशङ्का नहीं किई जासकती । क्योंकि, जिसका दूसरा नाम दुःखका अत्यन्त उच्छेद है, वही निःश्रेयसरूपत्ववशात् यह परम पुरुषार्थस्वरूप है ॥ २७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें औलूक्यदर्शन समाप्त हुआ ॥ १० ॥

अथाक्षपाददर्शनम् ॥ ११ ॥

तत्त्वज्ञानाद्दुःखात्यन्तोच्छेदलक्षणं निःश्रेयसम्भवतीति समानतन्त्रेऽपि प्रतिपादितं तदाह सूत्रकारः प्रमाणप्रमेयेत्यादितत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम इति । इदं न्यायशास्त्रस्यादिमं सूत्रं न्यायशास्त्रञ्च पञ्चाध्यायात्मकं, तत्र प्रत्यध्यायस्याह्निकद्वयम् । तत्र प्रथमाध्यायस्य प्रथमाह्निके भगवता गोतमेन प्रमाणादिपदार्थनवकलक्षणनिरूपणं विधाय द्वितीये वादादिसप्तपदार्थलक्षणनिरूपणं कृतम् । द्वितीयस्य प्रथमे संशयपरीक्षणं प्रमाणचतुष्टयाप्रामाण्यशङ्कानिराकरणञ्च । द्वितीये अर्थापत्त्यादेरन्तर्भावनिरूपणम् । तृतीयस्य प्रथमे आत्मशरीरेन्द्रियार्थपरीक्षणं, द्वितीये बुद्धिमनःपरीक्षणम् । चतुर्थस्य प्रथमे प्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गपरीक्षणं, द्वितीये दोषनिमित्तकत्वनिरूपणं अवयव्यादिनिरूपणञ्च । पञ्चमस्य प्रथमे जातिभेदनिरूपणं, द्वितीये निग्रहस्थानभेदनिरूपणम् ॥ १ ॥

तत्त्वज्ञानसे दुःखका अत्यन्त उच्छेदरूप निःश्रेयस होता है, यह सामान्यशास्त्रमें कहा गया है । सूत्रकारने भी यही कहा है । जैसे, प्रमाण प्रमेय इत्यादि एवं तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति होती है, इत्यादि । यही न्यायशास्त्रका पहिलासूत्र है । न्यायशास्त्र पांच अध्यायोंमें विभक्त है, उनमें प्रत्येक अध्यायमें दो २ आह्निक हैं । इन सबमें पहिले अध्यायके प्रथम आह्निकमें भगवान् गौतमने प्रमाणादि पदार्थके नव लक्षण निरूपणकर

द्वितीय अध्यायमें वादादि सात पदार्थोंका लक्षण निरूपण किया है। पहिलेमें संशय परीक्षा एवं प्रमाणचतुष्टयका अप्रमाण्य शङ्कानिराकरण, द्वितीयमें अर्थापत्त्यादिका अन्तर्भाव निरूपण, तृतीय अध्यायके पहिलेमें आत्मा, शरीर और इन्द्रियार्थकी परीक्षा और द्वितीय आह्निकमें बुद्धि और मनकी परीक्षा- चतुर्थअध्यायके पहिले आह्निकमें प्रवृत्तिदोष प्रेत्यभाव-फल दुःख और अपवर्गपरीक्षा और द्वितीयमें दोष निमित्तकत्व निरूपण और अवयविप्रभृतिका निर्धारण एवं पञ्चम अध्यायके प्रथम आह्निकमें जातिभेदनिरूपण और द्वितीयमें निग्रह स्थानभेदनिरूपण किया है ॥ १ ॥

मानाधीना मेयसिद्धिरिति न्यायेन प्रमाणस्य प्रथममुद्देशे तद-नुसारेण लक्षणस्य कथनीयतया प्रथमोद्दिष्टस्य प्रमाणस्य-प्रथमं लक्षणं कथ्यते ॥ २ ॥

मेयसिद्धिमानके अधीन है, इत्यादिन्यायानुसार प्रथमही प्रमाणका उद्देश होनेसे, तदनुसार लक्षण कथनीय है। यह जानकर प्रथमोद्दिष्ट प्रमाणका पहिले लक्षण कहा जाता है ॥ २ ॥

साधनाश्रयाव्यतिरिक्तत्वे सति प्रमाव्याप्तं प्रमाणम् । एवञ्च प्रति-तन्त्रसिद्धान्तसिद्धपरमेश्वरप्रामाण्यं संगृहीतं भवति । यदक-थयत् सूत्रकारः मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रा-माण्यादिति ॥ ३ ॥

साधनाश्रयका व्यतिरिक्तत्व घटनेसे, प्रमाण प्रमेय प्राप्त होता है । इसप्रकार प्रतितन्त्र-सिद्धान्तद्वारा सिद्धपरमेश्वर प्रामाण्य संगृहीत होता है। सूत्रकारनेभी कहा है शास्त्र और आयुर्वेदप्रामाण्यकी नाईं, आप्त प्रामाण्यसे तदीयप्रामाण्य सिद्ध होता है ॥ ३ ॥

तथाच न्यायपारावारपारदृश्वा विश्वविख्यातकीर्तिरुदयनाचा-र्योऽपि कुसुमाञ्जलौ चतुर्थ स्तबके-

मितिः सम्यक्परिच्छित्तिस्तद्वत्ता च प्रमातृता ।
तदयोगव्यवच्छेदः प्रामाण्यं गौतमे मते इति ॥ ४ ॥

न्यायपारावारदर्शी विश्वविख्यातकीर्त्ति उदयनाचार्य्यने भी कुसुमाञ्जलिके चतुर्थ स्तवकमें कहा है, मिति शब्दसे सम्यक्प्रकार परिच्छेद, प्रमातृ शब्दसे तद्वत्ता एवं प्रामाण्य शब्दसे तदयोग व्यवच्छेद । यही गौतमका मत है ॥ ४ ॥

साक्षात्कारिणि नित्ययोगिनि परद्वारानपेक्षस्थितौ
भूतार्थानुभवे निविष्टनिखिलप्रस्ताविवस्तुक्रमः ।

लेशादृष्टिनिमित्तदुष्टिविगमप्रभ्रष्टशङ्कातुषः
शङ्कोन्मेषकलङ्किभिः किमपरैस्तन्मे प्रमाणं शिव इति च५॥

जो सबका प्रत्यक्ष, जिसका क्षय नहीं, जो स्वयं सिद्ध, तादृश यथार्थ अनुभवसे जिनने निखिल प्रस्तावि वस्तुक्रम सन्निविष्ट किया है, जिसमें लेशादृष्टि निबन्धन दोषका अपगम प्रयुक्त शङ्कारूप तुषका भ्रंश हुआ है। वही शिव मेरा प्रमाण। सन्देहके आविर्भावरूप कलङ्कयुक्त अन्यदेवतासे मुझे प्रयोजन नहीं ॥ ५ ॥

तच्चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्। प्रमेयं द्वादशप्रकारं आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गभेदात् ॥ ६ ॥

प्रमाण ४ प्रकारका है। जैसे, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। प्रमेय १२ प्रकारका है। जैसे, आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, विषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभावफल, दुःख और अपवर्ग है ॥ ६ ॥

अनवधारणात्मकं ज्ञानं संशयः स त्रिविधः साधारणधर्मासाधारणधर्मविप्रतिपत्तिलक्षणभेदात् ॥ ७ ॥

अनवधारणात्मक ज्ञानका नाम संशय है। वह तीन प्रकारका है। जैसे, साधारणधर्म्म असाधारणधर्म्म और विप्रतिपत्ति ॥ ७ ॥

यमधिकृत्य प्रवर्त्तन्ते पुरुषास्तत्प्रयोजनम्। तद्द्विधं दृष्टादृष्टभेदात् ॥ ८ ॥

लोग जिसका अधिकारकर, प्रवृत्त होते हैं उसका नाम प्रयोजन है। वह दो प्रकारका है। जैसे, दृष्ट और अदृष्ट ॥ ८ ॥

व्याप्तिसंवेदनभूमिर्दृष्टान्तः। स द्विविधः साधर्म्यवैधर्म्यभेदात्॥९॥

व्याप्ति संवेदन भूमिका नाम दृष्टान्त है वह दो प्रकारका है, साधर्म्य और वैधर्म्य॥९॥

प्रामाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः सिद्धान्तः। स चतुर्विधः सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमभेदात् ॥ १० ॥

जो विषय प्रामाणिक कहकर स्वीकार किया जावे उसका नाम सिद्धान्त है। वह चार प्रकारका। सर्व्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम ॥ १० ॥

परार्थानुमानवाक्यैकदेशोऽवयवः। स पञ्चविधः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनभेदात् ॥ ११ ॥

परार्थानुमान वाक्यके एकदेशको अवयव कहते हैं। वह पांच प्रकारका है । जैसे प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगम ॥ ११ ॥

व्याप्यारोपे व्यापकारोपस्तर्कः। स चैकादशविधः व्याघातात्माश्रयेतरेतराश्रयचक्रकाश्रयानवस्थाप्रतिबन्धिकल्पनालाघवकल्पनागौरवोत्सर्गापवादवैजात्यभेदात् ॥ १२ ॥

व्याप्यारोपमें व्यापकारोपका नाम तर्क है। वह ११ प्रकारका है। जैसे, व्याघात आत्माश्रय, इतरेतराश्रय, चक्रकाश्रय, अनवस्था, प्रतिबन्धि कल्पना, लाघव कल्पना, गौरव उत्सर्ग, अपवाद और वैजात्य ॥ १२ ॥

यथार्थानुभवपर्य्याया प्रमितिर्निर्णयः। स चतुर्विधः साक्षात्कृत्यनुमित्युपमितिशाब्दभेदात् ॥ १३ ॥

यथार्थानुभवनाम्नी प्रमितिका नाम निर्णय है । वह ४ प्रकारका है, साक्षात्कृति, अनुमिति, उपमिति और शाब्द ॥ १३ ॥

तत्त्वनिर्णयफलः कथाविशेषो वादः ॥ १४ ॥

जिसमें तत्त्वनिर्णयरूप फल है, ऐसी कथा विशेषका नाम वाद है ॥ १४ ॥

उभयसाधनवती विजिगीषुकथा जल्पः ॥ १५ ॥

उभय साधनवती विजिगीषुका नाम जल्प है ॥ १५ ॥

स्वपक्षस्थापनाहीनः कथाविशेषो वितण्डा ॥ १६ ॥

स्वपक्षस्थापनाहीन कथाविशेषका नाम वितण्डा है ॥ १६ ॥

कथा नाम वादिप्रतिवादिनोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः ॥ १७ ॥

वादी और प्रतिवादी इन दोनोंके पक्ष प्रतिपक्ष परिग्रहका नाम कथा है ॥ १७ ॥

असाधको हेतुत्वेनाभिमतो हेत्वाभासः। स पञ्चविधः सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमातीतकालभेदात् ॥ १८ ॥

जो असाधक और हेतु कहकर अभिमत उसका नाम हेत्वाभास है। वह पांच प्रकारका है। जैसे सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरण, समसाध्य और समातीतकाल ॥ १८ ॥

शब्दावृत्तिव्यत्ययेन प्रतिषेधहेतुश्छलम्। तत्त्रिविधमभिधानतात्पर्य्योपचारव्यत्ययवृत्तिभेदात ॥ १९ ॥

शब्दवृत्तिके व्यत्ययद्वारा प्रतिषेधहेतुका नाम छल है। वह तीन प्रकारका है। जैसे-अभिधानतात्पर्य, उपचार, व्यत्यय और वृत्ति ॥ १९ ॥

स्वव्याघातकमुत्तरं जातिः सा चतुर्विंशतिविधा साधर्म्यवैधर्म्यो-त्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यप्राप्तिप्रसङ्गप्रतिदृष्टान्ता-नुत्पत्तिसंशयप्रकरणाहेत्वर्थापत्तिविशेषापत्त्युपलब्ध्यनुपलब्धि-नित्यानित्यकार्य्यसमभेदात् ॥ २० ॥

स्वव्याघातक उत्तरका नाम जाति है । वह २४ प्रकारकी है । जैसे साधर्म्य, वैधर्म्य-उत्कर्ष, अपकर्ष, वर्ण्य, अवर्ण्य, विकल्प, साध्य, प्राप्ति, अप्राप्ति, प्रसङ्ग, प्रतिदृष्टान्त, अनुत्पत्ति, संशय, प्रकरण, हेत्वर्थापत्ति, विशेषोपपत्ति, उपलब्धि, अनुपलब्धि, नित्य, नित्यकार्य्य, सम ॥ २० ॥

पराजयनिमित्तं निग्रहस्थानम् । तद्द्वाविंशतिप्रकारं प्रतिज्ञाहा-निप्रतिज्ञान्तरप्रतिज्ञाविरोधप्रतिज्ञासन्न्यासहेत्वन्तरार्थान्तर-निरर्थकाविज्ञातार्थापार्थकाप्राप्तकालन्यूनाधिकपुनरुक्तानुभाष-णाज्ञानाप्रतिभाविक्षेपमतानुज्ञापर्य्यनुयोज्योपेक्षणनिरनुयो-ज्यानुयोगापसिद्धान्तहेत्वाभासभेदात् ॥ २१ ॥

पराजयनिमित्तका नाम निग्रह स्थान है । वह २२ प्रकारका है । जैसे, प्रतिज्ञाहानि प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञासंन्यास, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक अप्राप्तकालन्यूनाधिक, पुनरुक्त, अनुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्य, उपेक्षण, निरनुयोज्य, अनुयोग, अपसिद्धान्त और हेत्वाभास ॥ २१ ॥

अत्र सर्वान्तर्गणिकस्तु विशेपस्तत्र शास्त्रे विस्पष्टोऽपि विस्तर-भिया न प्रस्तूयते ॥ २२ ॥

इसप्रकार उल्लिखित शास्त्रमें अतीवस्पष्टतया भिन्न २ आकारसे ये सब विषय वर्णित हुआ । विस्तारभयसे और उल्लेख नहीं किया गया ॥ २२ ॥

ननु प्रमाणादिपदार्थषोडशके प्रतिपाद्यमाने कथमिदं न्यायशास्त्र मिति व्यपदिश्यते सत्यं तथाप्यसाधारण्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायेन न्यायस्य परार्थानुमानापरपर्य्यायस्य सकलविद्या-नुग्राहकतया सर्वकर्मानुष्ठानसाधनतया प्रधानत्वेन तथा व्यप-देशो युज्यते ॥ २३ ॥

प्रमाणादि १६ पदार्थ प्रतिपादित होनानेसे, इसका नाम किसप्रकार न्यायशास्त्र होसकता ? यह बात सत्यनोहै । तथापि असाधारण्य अनुसारही व्यपदेश होताहै । इसयुक्तिमें परार्थानुमान

जिसका अन्यतर नाम वही न्यायशास्त्र है, सब विद्याओंका अनुग्राहक और सर्वविध कर्म्मा-नुष्ठानका साधक कहकर सबमें प्रधान है । सुतरां इसप्रकार व्यपदेश सङ्गत होता है ॥ २३॥

तथाभाणि सर्वज्ञेन, सोऽयं परमो न्यायः विप्रतिपन्नपुरुषप्रतिपादकत्वात् तथा प्रवृत्तिहेतुत्वाच्चेति ॥ २४ ॥

सर्व्वज्ञनेभी कहा है, विप्रतिपन्नपुरुषका प्रतिपादक और प्रवृत्तिके हेतु कहकर वह २ न्याय शास्त्र सबमें श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

पक्षिलस्वामिना च सेयमान्वीक्षिकी विद्या प्रमाणादिभिः पदार्थैः प्रविभज्यमाना—

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे परीक्षितेति ॥ २५ ॥

पक्षिलस्वामीनेभी कहा है कि यह आन्वीक्षिकी विद्या प्रमाणादि पदार्थ परम्परासे प्रविभक्त होनेसे, सब विद्याओंका प्रदीपस्वरूप सबकर्म्मोंका साधकस्वरूप और सबधर्म्मका आश्रय-स्वरूप है ॥ २५ ॥

ननु तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्भवतीत्युक्तं तत्र किं तत्त्वज्ञानादनन्तरमेव निःश्रेयसं सम्पद्यते नेत्युच्यते किन्तु तत्त्वज्ञानाद्दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभाव इति ॥ २६ ॥

तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस प्राप्ति होती है । इसविषयमें जिज्ञास्य यह है जो, तत्त्वज्ञानके अव्यवहित परेही प्राप्त होजाता या नही ? इसका उत्तर यह है जो, तत्त्वज्ञानका उदय होनेसे दुःखजन्मप्रभृतिदोष मिथ्याज्ञान इनसबका उत्तरोत्तर विनाश होता है । सुतरां,तत्त्वज्ञानके परेही कहा नही जाता ॥ २६ ॥

तत्र मिथ्याज्ञानं नामानात्मनि देहादावात्मबुद्धिः तदनुकूलेषु रागः तत्प्रतिकूलेषु द्वेषः वस्तुतस्त्वात्मनः प्रतिकूलमनुकूलं वा न किञ्चित्समस्ति । परस्परानुबन्धत्वाच्च रागादीनां मूढो रज्यति रक्तो मुह्यति मूढः कुप्यति कुपितो मुह्यतीति । ततस्तैर्दोषैः प्रेरितः प्राणी प्रतिषिद्धानि शरीरेण हिंसास्तेयादीन्याचरति वाचा अनृतादीनि मनसा परद्रोहादीनि सेयं पापरूपा प्रवृत्तिरधर्मसाधनीति ॥ २७॥

उनमें मिथ्याज्ञानशब्दसे अनात्म देहादिमें आत्मबुद्धि उसकी अनुकूल विषयमें आसक्ति और प्रतिकूल वस्तुमें द्वेष। वस्तुतः आत्माका प्रातिकूल और अनुकूल कुछभी नहीं। परस्पर अनुबन्धवशात् मूढ़लोकमें रागादिमें आसक्ति होतीहै। रागादियुक्त होनेसे, मोहका वश होता है मोहके वश होनेहीसे कुपित होता है एवं कुपित होनेहीसे मोहमें आच्छन्न होताहै। अनन्तर प्राणिगण उस २ दोषकी प्रेरणापरतन्त्र होकर शरीरद्वारा हिंसा और चौर्यादिप्रतिषिद्ध व्यापारका अनुष्ठान करता है वाक्यद्वारा अनृतप्रभृति और मनद्वारा परद्रोहादि निषिद्धकार्य्यमें प्रवृत्त होता है। इसप्रकार यह पापरूपा प्रवृत्ति अधर्म्मको उत्पन्न करती है ॥ २७ ॥

शरीरेण प्रशस्तानि दानपरपरित्राणादीनि वाचा हितसत्यादीनि मनसा अहिंसादीनि सेयं पुण्यरूपा प्रवृत्तिधर्मः ॥ २८ ॥

शरीरद्वारा दान और पररक्षणादि वाक्यद्वारा हित सत्यादि और मनद्वारा अहिंसादिका अनुष्ठान करनेको पुण्यरूपा प्रवृत्ति कहते हैं यही धर्म्म नामसे कथित ॥ २८ ॥

सेयमुभयी वृत्तिः ततः स्वानुरूपं प्रशस्तं निन्दितं वा जन्म पुनः शरीरादेः प्रादुर्भावः। तस्मिन् सति प्रतिकूलवेदनीयतया वासनात्मकं दुःखं भवति। त इमे मिथ्याज्ञानादयो दुःखान्ता अविच्छेदेन प्रवर्त्तमानाः। संसारशब्दार्थो घटीचक्रवन्निरवधिरनुवर्त्तते ॥ २९ ॥

इसप्रकारमें दोषप्रकारकी प्रवृत्ति है। इसीसे स्वानुरूप प्रशस्त या निन्दित जन्म और पुनःशरीरादिका प्रादुर्भाव होता है इसप्रकार प्रादुर्भावघटनेपर प्रतिकूलशब्दसे कहा हुआ वासनात्मक दुःख समुत्पन्न होता है। मिथ्याज्ञानसे दुःखपर्य्यन्त, वही धर्मसमुदाय अविच्छेदसे ँम। एवं संसारशब्दार्थ घटीचक्रकी नाईं निरवधि उनका अनुगामी होता है ॥ २९ ॥

कश्चित् पुरुषधौरेयः पुराकृतसुकृतपरिपाकवशादाचार्य्योपदेशेन सर्वमिदं दुःखायतनं दुःखानुषक्तञ्च पश्यति तदा तत्सर्वं हेयत्वेन बुध्यते। ततस्तन्निवर्त्तकमविद्यादि निवर्त्तयितुमिच्छति, तन्निवर्त्तनोपायश्च तत्त्वज्ञानमिति ॥ ३० ॥

कस्यचिच्चतसृभिर्विद्याभिर्विभक्तं प्रमेयं भावयतः सम्यग्दर्शनपदवेदनीयतया तत्त्वज्ञानं जायते, तत्त्वज्ञानान्मिथ्याज्ञानमपैति मिथ्याज्ञानापाये दोषाः अपयान्ति, दोषापाये प्रवृत्तिरपैति-प्रवृत्त्यपाये जन्मापैति, जन्मापाये दुःखमत्यन्तं निवर्त्तते, सात्यन्तिकी निवृत्तिरपवर्गः । निवृत्तेरात्यन्तिकत्वं नाम निवर्त्यं सजातीयस्य पुनस्तत्रानुत्पाद इति ॥ २१ ॥

इसतत्त्वज्ञानका दूसरा नाम सम्यग् दर्शन है । विद्याचतुष्टयसे परिच्छिन्न प्रमेय भावना करते २ किस व्यक्तिका तत्वज्ञान उपस्थित होता है।तत्वज्ञानके उदयसे मिथ्याज्ञानका अपसारण होता है। मिथ्याज्ञानके अपसारणसे सब दोष दूर होते हैं दोषोंके दूर होनेपर प्रवृत्ति निराकृत होती है । प्रवृत्तिके नाश होनेपर जन्मका क्षय होता है । जन्मके क्षय होनेपर दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है । इसी आत्यन्तिक निवृत्तिका नाम अपवर्ग वा मोक्ष है । निवृत्तिका आत्यन्तिकत्व कहनेसे, यह समझना चाहिये कि, निवृत्त सजातीयका फिर उसमें उद्भव नहीं होता ॥ २१ ॥

तथाच पारमर्षं सूत्रं, दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्ग इति ॥ २२ ॥

सूत्रकारनेभी कहा है कि, दुःखजन्मप्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञान इनसबके उत्तरोत्तर नाश होनेपर तदनन्तर अभाववशात् मोक्ष लाभ होता है ॥ २२ ॥

ननु दुःखात्यन्तोच्छेदोपवर्ग इत्येतदद्यापि कफोणिगुडायितं वर्त्तते तत्कथं सिद्धवत्कृत्य व्यवह्रियत इति चेन्मैवं सर्वेषां मोक्षवादिनामपवर्गदशायामात्यन्तिकीदुःखनिवृत्तिरस्तीत्यस्यार्थस्य सर्वतन्त्रसिद्धान्तसिद्धतया घण्टापथत्वात् । नह्यप्रवृत्तस्य दुःखं प्रत्यापद्यते इति कश्चित् प्रपद्यते । तथा हि आत्मोच्छेदो मोक्ष इति माध्यमिकमते दुःखोच्छेदोऽस्तीत्येतावत्तावदविवादम् ॥ २३ ॥

[illegible] दुःखके अत्यन्तच्छेदका नाम अपवर्ग है यह विषय अद्यापि नितान्त प्रच्छन्न है । [illegible] इसको सिद्धवत् करके व्यवहार किया जावे ? ऐसा नहीं कहा जासकता [illegible] अपवर्ग दशामें [illegible] दुःखनिवृत्ति होती है । इसविषयमें

सबही शास्त्रमें सविशेष मीमांसाद्वारा प्रमाणित हुआ है । अप्रवृत्तका कभी दुःखप्रत्यापत्तिकी सम्भावना नहीं । माध्यमिक लोग कहते हैं, आत्माका उच्छेद मोक्ष है दुःखका उच्छेदही उसका अर्थ है यह सर्व्वथा विवादशून्य है ॥ ३३ ॥

अथ मन्येथाः शरीरादिवदात्मापि दुःखहेतुत्वादुच्छेद्य इति तन्न सङ्गच्छते विकल्पानुपपत्तेः ॥ ३४ ॥

शरीरादिकी नाईं आत्माभी दुःखका हेतु सुतरां उसका उच्छेद करना आवश्यक है। विकल्पकी अनुपपत्तिवशात् इसप्रकार समझना कदापि सङ्गत नहीं ॥ ३४ ॥

किमात्मा ज्ञानसन्तानो विवक्षितः तदतिरिक्तो वा। प्रथमे न विप्रतिपत्तिः । कः खल्वनुकूलमाचरति प्रतिकूलमाचरेत् । द्वितीये तस्य नित्यत्वे निवृत्तिरशक्यविधानैव । प्रवृत्त्यनुपपत्तिश्चाधिकं दूषणं, न खलु कश्चित् प्रेक्षावानात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियंभवतीति सर्वतः प्रियतमस्यात्मनः समुच्छेदाय प्रयतते। सर्वो हि प्राणी मुक्त इति व्यवहराति ॥ ३५ ॥

यहां जिज्ञास्य यह है कि, यह आत्मा परम्परास्वरूप या उसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ ? ज्ञानपरम्परा कहनेसे किसी प्रकार विप्रतिपत्ति सम्भव नहीं । क्योंकि, कोई व्यक्ति अनुकूल आचरण करके प्रतिकूल आचरणमें प्रवृत्त होता है । उसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ कहनेसे तदीय नित्यत्व वशतः निवृत्ति जिस प्रकार अशक्य नहीं, प्रवृत्तिकी भी उसी प्रकार अनुपपत्ति नहीं । आत्माकेही सुखके लिये सम्पूर्ण प्रिय होता है, इसकारण यह सर्व्वथा प्रियतम है। कौन प्रज्ञानवान् पुरुष तादृश आत्माके समुच्छेदसाधनमें यत्नवान् होता है सबही प्राणी मुक्त, इसप्रकार व्यवहार प्रचरित है ॥ ३५ ॥

ननु धर्मिनिवृत्तौ निर्मलज्ञानोदयो महोदय इति विज्ञानवादिवादे सामग्र्यभावः सामानाधिकरण्यानुपपत्तिश्च भावनाचतुष्टयं हि तस्य कारणमभीष्टम् । यच्च क्षणभङ्गपक्षे स्थिरैकाधारासम्भवात् लङ्घनाभ्यासादिवदनासादितप्रकर्षं न स्फुटमभिज्ञानमभिजनयितुं प्रभवति सोपप्लवस्य ज्ञानसन्तानस्य बद्धत्वे निरुपप्लवस्य च मुक्तत्वे यो बद्धः स एव मुक्त इति सामानाधिकरण्यं न सङ्गच्छते ॥ ३६ ॥

धर्म्मिके निवृत्त होनेपर निमल ज्ञानोदयरूप महोदय समाहित होता है । विज्ञानवादिगणका इस मतवादमे सामर्थ्यभाव और सामानाधिकरण्यकी अनुपपत्ति लक्षित होती है । भावना चतुष्टयही इसका कारण है । क्षणभङ्गपक्ष स्वीकार करनेपर स्थिरैकाधारके असम्भवप्रयुक्त लङ्घन और अभ्यासादिकी नाईं वह प्रकर्ष प्राप्त नहीं होता । उपप्लवयुक्तज्ञानसन्ततिही बद्ध एवं उससे भिन्नही मुक्त है । ऐसा होनेसे जो बद्ध, सो मुक्त इसप्रकार सामानाधिकरण्य नहीं होता ॥ २६ ॥

आवरणमुक्तिर्मुक्तिरिति जैनजनाभिमतोऽपि मार्गो न निर्गतो निरर्गलः । अङ्ग भवान् पृष्टो व्याचष्टां किमावरणं, धर्माधर्मभ्रान्तय इति चेत् इष्टमेव । अथ देहमेवावरणं तथाच तन्निवृत्तौ पञ्जरान्मुक्तस्य शुकस्येवात्मनः सततोर्ध्वगमनं मुक्तिरिति चेत्तदा वक्तव्यं किमयमात्मा मूर्त्तोऽमूर्त्तो वा । प्रथमे निरवयवः सावयवो वा । निरवयवत्वे निरवयवो मूर्त्तःपरमाणुरिति परमाणुलक्षणापत्त्या परमाणुधर्मवदात्मधर्माणामतीन्द्रियत्वं प्रसज्येत् ॥ २७ ॥

आवरणमुक्तिही मुक्ति जैन लोगोंके अभिमत यह मार्ग निर्गल नही । अच्छा आपहीको पूछता हूं आवरणशब्दका अर्थ क्या ? धर्म्माधर्मभ्रान्तिही आवरण । ऐसा होनेसे अनिष्टापत्ति नहीं किन्तु देह आवरण और उसकी निवृत्तिमें पञ्जरसे मुक्त शुककी नाई आत्माका सदैव ऊपरको जानेका नाम मुक्ति है यदि ऐसा होताहै तो जिज्ञास्य यह आत्मा मूर्त्त है या अमूर्त्त? मूर्त्त होनेसे निरवयव या सावयव ? निरवयव होनसे परमाणु निरवयव मूर्त्तपदार्थ । इसप्रकार परमाणु लक्षणापत्तिद्वारा परमाणुधर्म्मकी नाई आत्मधर्म्मका अतीन्द्रियत्व प्रसक्त होता है ॥ २७ ॥

सावयवत्वे यत्सावयवं तदनित्यमिति प्रतिबन्धबलेनानित्यत्वापत्तौ कृतप्रणाशाकृताभ्यागमौ निष्प्रतिबन्धौ प्रसरेताम् ॥ ३८ ॥

सावयव होनेसे जो सावयव वही अनित्य इत्यादि प्रतिबन्धबलसे अनित्यत्वकी उपपत्ति होती है । ऐसाहोनेसे कृतप्रणाश और कृताभ्यागम ये दो दोष निष्प्रतिबन्धरूपसे प्रसृत होता है ॥ २८ ॥

अमूर्त्तत्वे गमनमनुपपन्नमेव चलनात्मिकायाः क्रियायाः मूर्त्त प्रतिबन्धात् ॥ ३९ ॥

और अमूर्त्त होनेसे, गमन नही सिद्ध होता । क्योंकि, चलनात्मिका क्रियामें मूर्ति प्रतिबन्ध होती है ॥ २९ ॥

पारतन्त्र्यं बन्धः स्वातन्त्र्यं मोक्ष इति चार्वाकपक्षेऽपि स्वातन्त्र्यं दुःखनिवृत्तिश्चेदविवाद ऐश्वर्य्यं चेत्सातिशयतया सदृक्षतया च प्रेक्षावतां नाभिमतम् ॥ ४० ॥

परतन्त्रताही बन्ध और स्वतन्त्रताही मोक्ष है, इत्यादि चार्व्वाक पक्षमें यदि स्वतन्त्रताही दुःखनिवृत्ति होती है, तो इससे कोई आपत्ति नहीं । किन्तु ऐश्वर्य्य जाननेसे सातिशयता और सदृशता वशात् वह कभी विद्वानोंको अनुमोदनके योग्य नहीं होसकता ॥४०॥

प्रकृतिपुरुषान्यत्वख्यातौ प्रकृत्युपरमे पुरुषस्य स्वरूपेणावस्थानं मुक्तिरिति साङ्ख्याख्यातेऽपि पक्षे दुःखोच्छेदोऽभ्युपेयते ॥४१॥

प्रकृति पुरुशन्यत्व वादसे, प्रकृतिके उपरम होनेसे पुरुषके स्वरूपमें अवस्थानको मुक्ति कहते हैं यह सांख्यसिद्धान्त होनेपरभी एक पक्षमे दुःखनाश प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

विवेकज्ञानं पुरुषाश्रयं प्रकृत्याश्रयं वेति एतावदवशिष्यते । तत्र पुरुषाश्रयमिति न श्लिष्यते पुरुपस्य कौटस्थात् स्थाननिरोधापातान्नापि प्रकृत्याश्रयः अचेतनत्वात्तस्याः ॥ ४२ ॥

विवेकज्ञान पुरुषके आश्रित, या प्रकृतिके आश्रित है ? ऐसे प्रश्नमें यही कहा जासकता पुरुषके आश्रित नहीं । क्योंकि, पुरुप कूटस्थ है और प्रकृति अचेतन । सुतरां, उसके आश्रित भी नही कहा जासकता ॥ ४२ ॥

किञ्च प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा निवृत्तिस्वभावा वा । आद्ये अनिर्मोक्षः स्वभावस्यानपायात् । द्वितीये सम्प्रति संसारोऽस्तमियात् ॥ ४३ ॥

प्रकृति प्रवृत्तिस्वभाववाली है या निवृत्तिस्वभाववाली ? प्रवृत्तिस्वभाववाली कहनेसे स्वभावके अनपाय वशात् मोक्ष लाभ नहीं होता निवृत्तिस्वभाववाली कहनेसे, संसार अस्तमित हो जाता है ॥ ४३ ॥

नित्यनिरतिशयसुखाभिव्यक्तिर्मुक्तिरिति । भट्टसर्वज्ञाद्यभिमतेऽपि दुःखनिवृत्तिरभिमतैव । परन्तु नित्यसुखं न प्रमाणपद्धतिमध्यास्ते ॥ ४४ ॥

भट्ट सर्वज्ञप्रभृतिने कहा है कि, नित्य, निरतिशय सुखाभिव्यक्ति ही मुक्ति । इसकाभी प्रकृत अर्थ दुःखनिवृत्ति । परन्तु, नित्यसुख प्रमाण पद्धतिका अतीत विषय है ॥ ४४ ॥

श्रुतिस्तत्र प्रमाणमिति चेन्न योग्यानुपलब्धिबाधिते तदनवकाशादवकाशे वा ग्रावप्लावेऽपि तथाभावप्रसङ्गात् ॥ ४५ ॥

श्रुति इसविषयका प्रमाण नहीं होसकती, जहां, योग्यानुपलब्धिका बाध घाटताहै, वहां श्रुतिका प्रवेशाधिकार नहीं । प्रवेशाधिकार होनेसे, जलके ऊपर पत्थरभी तैरसकता है कहा जावे ॥ ४५ ॥

ननु सुखाभिव्यक्तिर्मुक्तिरिति पक्षं परित्यज्य दुःखनिवृत्तिरेव मुक्तिरिति स्वीकारः क्षीरं विहायारोचकग्रस्तस्य सौवीररुचिमनुभवतीति चेत्तदेतन्नाटकपक्षपतितं त्वद्वच इत्युपेक्ष्यते ॥ ४६ ॥

सुखाभिव्यक्ति मुक्ति, यह पक्ष छोड़कर दुःखनिवृत्तिही मुक्ति है इसप्रकार स्वीकार करना अरोचकग्रस्तका दुध छोड़कर सौवीर (बैर) के रुचिका अनुभव करना, ये दोनों बराबर है, तुम्हारी यह बात नाटक पक्षपतित; इसकारण उपेक्षा कियी गयी ॥ ४६ ॥

सुखस्य सातिशयतया प्रत्यक्षतया बहुप्रत्यनीकाक्रान्ततया साधनप्रार्थनापरिक्लिष्टतया च दुःखाविनाभूतत्वेन विषानुषक्तमधुवत् दुःखपक्षनिक्षेपात् ॥ ४७ ॥

सुखकी जिसप्रकार अतिशयता और प्रत्यक्षता है, उसीप्रकार वह बहुत विघ्नोंसे विच्छिन्न और साधन प्रार्थनासे परिपीडित, और विना दुःखके वह नहीं मिलसकता, इस कारण विषलिप्त मधुके तुल्य, वह दुःखपक्षमें निक्षिप्त है ॥ ४७ ॥

नन्वेवमनुसन्धितस्सतोऽपरं प्रच्यवते इति न्यायेन दुःखवत् सुखमित्युच्छिद्यत इति अकाम्योऽयं पक्ष इति चेन्मैवं मंस्थाः । सुखसम्पादने दुःखसाधनबाहुल्यानुषङ्गनियमेन तप्तायःपिण्डे तपनीयबुद्ध्या प्रवर्त्तमानेन साम्यापातात् । तथाहि न्यायोपार्जितेषु विषयेषु कियन्तः सुखखद्योताः कियन्ति दुःखदुर्दिनानि अन्यायोपार्जितेषु तु यद्भविष्यति तन्मनसापि चिन्तयितुं न शक्यमित्येतत् स्वानुभवमप्रच्छादयन्तः सन्तो विदांकुर्वन्तु विदांवराः भवन्तः ॥ ४८ ॥

एक विषयमें अनुसन्धान करनेवालेको, दूसरा विषय प्रभ्रष्ट होजाता है, इसयुक्तिके अनुसार दुःखकी नाईं, सुखका उच्छेदन किया जावे; इत्यादि पक्षभी अकाम्य, इसप्रकार

नहीं समझना । सुख सम्पादन समयमें दुःखसाधनकी बहुलताका प्रसङ्ग घटता है । उक्त नियमानुसार तपेहुये लोहपिण्डमें स्वर्ण समझकर प्रवृत्त होनेपर, साम्यापात संघटित होता है । उसी प्रकार, न्यायोपार्जित विषयसमूहमें कितनी सुखस्फूर्त्ति और कितना दुःखदुर्दिन प्रादुर्भूत होता है, अन्यायोपार्जित विषयमें जो घटता है, सो मनमें भी चिन्ता नहीं कियी जासकती । आप स्वयं ज्ञान विज्ञान पारदर्शी, इस विषयमें अपने आप अनुसंधान करें ॥ ४८ ॥

तस्मात् परिशेषात् परमेश्वरानुग्रहवशाच्छ्रवणादिक्रमेणात्मतत्त्वसाक्षात्कारवतः पुरुषधौरेयस्य दुःखनिवृत्तिरात्यन्तिकी निःश्रेयसमिति निरवद्यम् ॥ ४९ ॥

इसकारण अन्तमें परमेश्वरके अनुग्रहवशात् श्रवणादि क्रमसे आत्मतत्त्वका साक्षात्कार संघटित होनेपर पुरुषप्रवरका आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिरूप निःश्रेयस होता है, यह सर्वथा विवादशून्य है ॥ ४९ ॥

नन्वीश्वरसद्भावे किं प्रमाणं प्रत्यक्षमनुमानमागमो वा न तावदत्र प्रत्यक्षं क्रमते रूपादिरहितत्वेनातीन्द्रियत्वात्, नाप्यनुमानं तद्व्याप्तिलिङ्गाभावात्, नागमः विकल्पासहत्वात् ॥ ५० ॥

ईश्वर है, इसविषयमें प्रमाण क्या है, प्रत्यक्ष, अनुमान या आगम ? प्रत्यक्ष प्रमाण हो नहीं सकता । क्योंकि, वह रूपादिसे रहित है, सुतरां, इन्द्रियका अतीत है । अर्थात् इन्द्रियद्वारा ग्राह्य नहीं । अनुमान प्रमाण भी नहीं होसकता । क्योंकि, उसकी व्याप्ति लिङ्गका अभाव घटता है । विकल्पके असहत्ववशात् आगमभी प्रमाण कहकर ग्रहण नहीं होसकता ॥ ५० ॥

किं नित्योऽवगमयत्यनित्यो वा । आद्ये अपसिद्धान्तापातः । द्वितीये परस्पराश्रयापातः । उपमानादिकमशक्यशङ्कं नियतविषयत्वात् ॥ ५१ ॥

ईश्वर नित्यहै वा अनित्य ? नित्य होनेसे अपसिद्धान्तापातदोष आता है । अनित्य होनेसे परस्पराश्रयापात दोष आपतित होताहै । नियतविषयत्वकहकर उपमानादि, अशक्य शङ्का हो जाताहै अर्थात् ईश्वर चिरकालहीसे है । सुतरां सांसारिक किसी वस्तुके साथ उसीकी उपमा नहीं दी जासकती ॥ ५१ ॥

तस्मादीश्वरः शशविषाणायते इति चेत्तदेतन्न चतुरचेतसां चेतसि चमत्कारमाविष्करोति । विवादास्पदं नगसागरादिकं सकर्तृकं

कार्य्यत्वात् कुम्भवत् न चायमसिद्धो हेतुः सावयवत्वेन तस्य सुसाधनत्वात् ॥ ५२ ॥

तो ईश्वर, खरहेके सींगकी नाईं अलीक पदार्थ ठहरा । यह बात कहनेसे, चतुर चेतालोगोंके चित्तमें चमत्कार आविष्कार नहीं किया जाता । क्योंकि पर्व्वत और सागरादि विवादास्पद पदार्थ मात्र ही कुम्भकी नाईं, कार्य्यस्वरूप, सुतरां उनका कर्त्ताहै, मानना होगा । यह कदापि असिद्ध हेतु नहीं । क्योंकि, ये सब पदार्थ सावयव हैं । इसी कारण उनका सुखसाधनत्व लक्षित होताहै ॥ ५२ ॥

ननु किमिदं सावयवत्वम् अवयवसंयोगित्वं अवयवसमवायित्वं वा । नाद्यं गगनादौ व्यभिचारात् । न द्वितीयं तन्तुत्वादावनैकान्त्यात् । तस्मादनुपपन्नमिति चेन्मैवं वादीः । समवेतद्रव्यत्वं सावयवत्वमिति निरुक्तेर्वक्तुं शक्यत्वात् । अवान्तरमहत्त्वेन वा कार्य्यत्वानुमानस्य सुकरत्वात् नापि विरुद्धो हेतुः साध्यविपर्य्ययव्याप्तेरभावात् । नाप्यनैकान्तिकः पक्षादन्यत्र वृत्तेरदर्शनात् । नापि कालात्ययापदिष्टः बाधकानुपलम्भात् । नापि सत्प्रतिपक्षः प्रतिभटादर्शनात् ॥ ५३ ॥

यहां जिज्ञास्य यह है जो, सावयवत्व शब्दसे अवयवसंयोगित्व या अवयवसमवायित्व ? अवयवसंयोगित्व कहनेसे, आकाशादिमें व्यभिचार घटताहै । और अवयवसमवायित्व कहनेसे तन्तुप्रभृतिमें अनेकान्तत्व आपतित होताहै । इसलिये इसको अनुपपन्न नहीं कहसकते । समवेत द्रव्यत्व सावयत्व, ऐसे अर्थमें ऐसा कहा जासकता । और अवान्तर महत्त्ववशात् कार्य्यत्वानुमान सुकर होताहै । और विरुद्ध हेतुभी नहीं होसकता । क्योंकि, साध्य विपर्य्ययका अभाव नहीं और अनैकान्तिकभी नहीं होसकता । क्योंकि पक्षभिन्न अन्यविध वृत्ति नहीं दीख पड़ती । और, कालात्ययापादिष्टभी नहीं होसकता । क्योंकि, किसीप्रकार बाधकका उपलम्भ नहीं और सत्प्रतिपक्षभी नहीं होसकता । क्योंकि, किसी प्रकार, प्रतियोगी नहीं दीख पड़ता ॥ ५३ ॥

ननु नगादिकमकर्तृकं शरीराजन्यत्वात् गगनवदिति चेन्नैतत्परीक्षाक्षमर्मीक्ष्यते । न हि कठोरकण्ठीरवस्य कुरङ्गशावः प्रतिभटो भवति अजन्यत्वस्यैव समर्थतया शरीरविशेषणवैयर्थ्यात् ॥ ५४ ॥

शरीरकर्तृक अजन्य कहकर आकाशकी नाईं पर्वतादिका किसी प्रकार कर्त्ता नहीं । [illegible] नहीं कही जासकती । क्योंकि, यह विषय परीक्षा सह, कहकर नहीं दीखपड़ता ।

कुरङ्गशावका कभी कठोर कण्ठीरव प्रतियोगी नहीं होता । अजन्यत्वकी समर्थतावशात् शरीर विशेषण विफल होताहै ॥ ५४ ॥

तर्ह्यजन्यत्वमेव साधनमिति चेन्नासिद्धेः । नापि सोपाधिकत्व-शङ्काकलङ्कांकुरः सम्भवी अनुकूलतर्कसम्भवात् । यद्ययमक-र्तृकः स्यात् कार्य्यमपि न स्यादिह जगति नास्त्येव तत्कार्यं नाम यः कारकचक्रमवधीर्य्यात्मानमासादयेदित्येतदविवादम् ॥ ५५ ॥

तब अजन्यत्वही साधन । सोभी नहीं । क्योंकि उसमें सिद्धिका अभाव होताहै । और अनुकूल तर्कके सम्भववशात् सोपाधिक स्वरूप शङ्का कलङ्कांकुरकीभी सम्भावना नहीं । यदि यह कर्त्ता शून्य होता, तो कार्य्यभी नहीं होता । क्योंकि, इस जगतमें ऐसा कार्य्य नहीं है जो कारकचक्र परिहारकर स्वयंही सिद्ध होजावे, यह विषय सर्व्वथा विवादशून्य है ॥ ५५ ॥

तच्च सर्वं कर्तृविशेषोपहितमर्य्यादं कर्तृत्वं चेतरकारकाप्रयोज्यत्वे सति सकलकारकप्रयोक्तृत्वलक्षणं ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारत्वम् ५६

अत एव समस्तही कर्तृविशेष कर्तृक उपहित हुआ है, उसी कर्तृविशेषका किसी प्रकार मर्य्यादा अर्थात् इयत्तादि नहीं । एवं वह अन्य किसी कारककाभी प्रयोजन नहीं स्वयंसिद्ध शक्तिसम्पन्न है । सुतरां, वह अन्यान्य कारक सबका प्रयोक्ता । एवं ज्ञान-चिकीर्षा और प्रयत्नका आधार ॥ ५६ ॥

एवञ्च कर्तृव्यावृत्तेस्तदुपहितसमस्तकारकव्यावृत्तावकारणककार्य्योत्पादप्रसङ्ग इति स्थूलः प्रमादः ॥ ५७ ॥

इसप्रकार कर्तृव्यावृत्तिवशतः उसकी उपहत सब कारक व्यावृत्ति जब सिद्ध हुई, तब विना कारण कार्य्य उत्पन्न होता है, ऐसा प्रसङ्ग करना स्थूल प्रमादभिन्न अन्य कुछ नहीं ॥ ५७ ॥

तथा निरटंकि शंकरकिंकरेण ।

अनुकूलेन तर्केण सनाथे सति साधने ।

साध्यव्यापकताभङ्गात पक्षे नोपाधिसम्भव इति ॥ ५८ ॥

शङ्करकिङ्करनेभी कहा है कि साधन अनुकूल तर्कसहित संमिलित होनेपर, साध्य व्यापकताका अभङ्गवशात, पक्षमें कभी उपाधिसम्भव नहीं होता ॥ ५८ ॥

यदीश्वरः कर्त्ता स्यात्तर्हि शरीरी स्यादित्यादिप्रतिकूलतर्कजातं जागर्त्तीति चेदीश्वरसिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातः ॥ ५९ ॥

यदि ईश्वर कर्त्ता हो तो वह शरीरी, इत्यादि प्रतिकूल तर्क सब जगजानेसे उसके सिद्ध्यसिद्धिमें व्याघात होता है ॥ ५९ ॥

तदुदितमुदयनेन ।

आगमादेः प्रमाणत्वे बाधनादनिषेधनम् ।
आभासत्वे तु सैव स्यादाश्रयासिद्धिरुद्धतेति ॥ ६० ॥

उदयनाचार्य्यने भी कहा है कि, आगमादिका प्रमाणत्व सत्वमें बाधवशात् निषेधक सम्भावना नहीं ॥ ६० ॥

न च विशेषविरोधः शक्यशङ्कः ज्ञातत्वाज्ञातत्वविकल्पपराहतत्वात् ॥ ६१ ॥

विशेष विरोधशङ्काभी नहीं कियी जासकती ज्ञातत्त्व और अज्ञातत्त्व विकल्पद्वारा वा पराहत होता है ॥ ६१ ॥

तदेतत्परमेश्वरस्य जगन्निर्माणे प्रवृत्तिः किमर्था स्वार्था परार्था वा आद्येऽपीष्टप्राप्त्यर्था अनिष्टपरिहारार्था वा । नाद्यः अवाप्तसकलकामस्य तदनुपपत्तेः अत एव न द्वितीयः ॥ ६२ ॥

परमेश्वरको जगत्की सृष्टि करनेमें प्रवृत्त होनेका प्रयोजन क्या, स्वार्थ, नहीं परमार्थ संघटन ? स्वार्थ संघटन कहनेसे, यह पूछना है कि, इष्टप्राप्तिके लिये नहीं, अनिष्ट परिहारके निमित्त ? इष्टप्राप्तिके लिये नही कह सकते । क्योंकि, ईश्वर आप्तकाम है । उसके और क्या इष्ट ? सुतरां यह कभी सम्भव नहीं होसकता ॥ ६२ ॥

द्वितीये प्रवृत्त्यनुपपत्तिः कः खलु पदार्थे प्रवर्त्तमानं प्रेक्षावानित्याचक्षीत ॥ ६३ ॥

द्वितीय अर्थात् परार्थसंघटन कहनेसे, प्रवृत्तिकी अनुपपत्ति होती है । ६३ ॥

अथ करुणया प्रवृत्त्युपपत्तिरित्याचक्षीत कश्चित्तं प्रत्याचक्षीत तर्हि सर्वान् प्राणिनः सुखिन एव सृजेदीश्वरः न दुःखशबलान् करुणाविरोधात् । स्वार्थमनपेक्ष्य परदुःखप्रहरणेच्छा हि कारुण्यम् । तस्मादीश्वरस्य जगत्सर्जनं न युज्यते ॥ ६४ ॥

यदि कोई कहे कि, करुणावशतः ही उत्पत्ति होती है । उसको पूछ सकते हो कि ऐसा होनेसे वह सब प्राणियोंको सुखी कर सृष्टि करते, दुःखयुक्त नहीं । क्योंकि, दुःखमिश्रि

करनेसे, करुणाका विरोध घटता है । स्वार्थकी उपेक्षाकर परदुःख दूर करनेकी इच्छा करनेका नाम करुणा है । अत एव ईश्वरकी जगत् सृष्टि संगत नहीं ॥ ६४ ॥

तदुक्तं भट्टाचार्य्यैः—

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते ।
जगच्चासृजतस्तस्य किं नाम न कृतं भवेदिति ॥ ६५ ॥

भट्टाचार्य्योंनेभी कहा है प्रयोजन न समझकर नितान्त मूढभी किसीकार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होता । जगत्की सृष्टि करनेसे उसका क्या नहीं किया होता है ॥ ६५ ॥

नास्तिकशिरोमणे तावदीर्ष्याकषायिते चक्षुषी निमील्य परिभावयतु भवान् करुणया प्रवृत्तिरस्त्येव न च निसर्गतः सुखमयसर्गप्रसंगः सृज्यप्राणिकृतसुकृतदुष्कृतपरिपाकविशेषाद् वैषम्योपपत्तेः । न च स्वातन्त्र्यभंगः शङ्कनीयः स्वांगं स्वव्यवधायको न भवतीति न्यायेन प्रत्युत तन्निर्वाहात् एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे इत्यादिरागमस्तत्र प्रमाणम् ॥ ६६ ॥

अयि नास्तिकशिरोमणे ! ईर्ष्याकषायित चक्षुर्द्वय बन्दकर चिन्ता कर देखो करुणावशतः ही ईश्वरकी जगत्सर्जनमें प्रवृत्ति है । सृज्यप्राणियोंका कृतसुकृत दुष्कृतका फल विशेषवशतः वैषम्यकी उपपत्ति घटती है, स्वभावतः सुखमय सृष्टिप्रसङ्ग सम्भव नहीं । इसमें ईश्वरकी स्वतन्त्रता भङ्गकी सम्भावना नहीं । स्वाङ्ग कभी स्वव्यवधायक नहीं हो सकता इसप्रकार युक्तिमें प्रत्युत उसमें स्वतन्त्रता ही की रक्षा होतीहै । रुद्र एकही द्वितीय नहीं इत्यादि आगम इसविषयका प्रमाण है ॥ ६६ ॥

यद्येवं तर्हि परस्पराश्रयबाधव्याधिं समाधत्स्वेति चेत् तस्यानुत्थानात् किमुत्पत्तौ परस्पराश्रयः शंक्यते ज्ञप्तौ वा नाद्यः आगमस्येश्वराधीनोत्पत्तिकत्वेऽपि परमेश्वरस्य नित्यत्वेनोत्पत्तेरनुपपत्तेः । नापि ज्ञप्तौ परमेश्वरस्य आगमाधीनज्ञप्तिकत्वेऽपि तस्यान्यतोऽवगमात् । नापि तदनित्यत्वज्ञप्तौ आगमाऽनित्यत्वस्य तीव्रादिधर्मोपेतत्वादिना सुगमत्वात् ॥ ६७ ॥

यदि इसप्रकार होता है तो परस्पराश्रय बाधव्याधिका समाधान करो । किन्तु उसकी सम्भावना नहीं । उत्पत्तिमें परस्पराश्रय शङ्का करते हो या ज्ञप्तिमें ? उत्पत्तिमें नहीं । क्योंकि आगमईश्वरके अधीन उत्पन्न होनेपरभी, वह नित्य, इसकारण उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं ।

ज्ञप्तिमेंभी परस्पराश्रयकी शङ्का नहीं कियी जासकती। क्योंकि, ईश्वरज्ञान आगमाधीन होनेपर भी, वह आगम व्यतीत अन्यप्रकारसेभी जानाजासकता है ॥ ६७ ॥

तस्मान्निर्वर्त्तकधर्मानुष्ठानवशादीश्वरप्रसादसिद्धावभिमतेष्टसिद्धिरिति सर्वमवदातम् ॥ ६७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे अक्षपाददर्शनं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अतएव निवर्त्तकधर्म्मानुष्ठानवशात् ईश्वर प्रसन्न होनेपर अभिमत इष्टसिद्धि संघटित होती है। यह सर्व्वथा विवादशून्य है ॥ ६८ ॥

इति सर्व्वदर्शनसंग्रहमें अक्षपाददर्शन समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

अथ जैमिनीयदर्शनम् ॥ १२ ॥

ननु धर्मानुष्ठानवशादभिमतधर्मसिद्धिरिति जेगीयते भवता। तत्र धर्मः किं लक्षणकः किं प्रमाणक इति चेत् उच्यते श्रूयतामवधानेन। अस्य प्रश्नस्य प्रतिवचन प्राच्यां मीमांसायां प्रादर्शि जैमिनिना मुनिना ॥ १ ॥

तुमने जो कहा कि, धर्म्मानुवशतःही अभिमतधर्म्मसिद्धि होजाती है, उस धर्म्मका लक्षण क्या, या प्रमाणही क्या? अवधानपूर्वक सुनो, कहता हूं जैमिनिमुनिने मीमांसामें इसप्रश्नका प्रतिवचन अर्थात् उत्तर दिया है ॥ १ ॥

सा हि मीमांसा द्वादशलक्षणी। तत्र प्रथमेऽध्याये विध्यर्थवादमन्त्रस्मृतिनामधेयार्थकस्य शब्दराशेः प्रामाण्यम् ॥ २ ॥

वह पूर्व्वमीमांसा द्वादशलक्षणी। उसमें प्रथम अध्यायमें विधि, अर्थवाद, मन्त्रस्मृति, नामधेयार्थक शब्दराशिका प्रामाण्य स्थापित हुआ है ॥ २ ॥

द्वितीये कर्मभेदोपोद्घातप्रमाणापवादप्रयोगभेदरूपोऽर्थः ॥ ३ ॥

द्वितीयमें कर्म्मभेद, उपोद्घात, प्रमाण, अपवाद और प्रयोगभेदरूप अर्थनिरूपण किया है ॥ ३ ॥

तृतीये श्रुतिलिंगवाक्यादिविरोधप्रतिपत्तिकर्मानारभ्याधीतबहुप्रधानोपकारकप्रयाजादियाजमानाचिन्तनम् ॥ ४ ॥

तृतीयमें श्रुतिलिङ्ग वाक्यादिविरोधप्रतिपत्ति, कर्म्मअनारभ्य अधीत बहुप्रधानोपकारक प्रयाजादि याजमानचिन्तन विनिविष्ट हुआ है ॥ ४ ॥

चतुर्थे प्रधानप्रयोजकत्वाप्रधानप्रयोजकत्वजुहूपर्णतादिफलराजसूयगतजघन्याक्षद्यूतादिचिन्ता ॥ ५ ॥

चतुर्थमें प्रधानप्रयोजकत्व अप्रधानप्रयोजकत्व जुहूपर्णतादि फल राजसूयगतजघन्याङ्ग अक्षद्यूतादि आलोचना कियी है ॥ ५ ॥

पञ्चमे श्रुत्यादिक्रमतद्विशेषवृद्ध्यवर्द्धनप्राबल्यदौर्बल्यचिन्ता ॥६॥

पञ्चमम श्रुत्यादिक्रम तद्विशेषवृद्धि, अवर्द्धन प्राबल्य और दौर्बल्य चिन्तानिरूपित हुईहै ॥६॥

षष्ठे अधिकारितद्धर्मद्रव्यप्रतिनिध्यर्थलोपनप्रायश्चित्तसत्रदेयवह्निविचारः ॥ ७ ॥

छठामें अधिकारी उसका धर्म्मद्रव्यप्रतिनिध्यर्थ लोपका प्रायश्चित्त और सत्रदेय अग्निविचार संनिवेशित किया है ॥ ७ ॥

सप्तमे प्रत्यक्षावचनातिदेशेषु नामलिंगातिदेशविचारः ॥ ८ ॥

सप्तममें नाम लिङ्गातिदेश विचारित हुआ है ॥ ८ ॥

अष्टमे स्पष्टास्पष्टप्रबललिंगातिदेशापवादविचारः ॥ ९ ॥

अष्टममें स्पष्ट, अस्पष्ट और प्रबल लिङ्गातिदेशापवाद विचार किया है ॥ ९ ॥

नवमे ऊहविचारारम्भसामोहमन्त्रोहतत्प्रसंगागतविचारः॥ १० ॥

नवममें ऊह (तर्क) विचारका आरम्भ सामोह, मन्त्रोह और उसका प्रसङ्गगत विचार व्यवस्थित हुआ है ॥ १० ॥

दशमे बाधहेतुद्वारलोपविस्तारबाधकारणकार्य्यैकत्वग्रहादिसामप्रकीर्णनञर्थविचारः ॥ ११ ॥

दशममें बाधहेतुद्वार लोपविस्तार बाधका कारण और कार्य्यका एकत्व ग्रहादि सामप्रकीर्ण नञर्थविचार किया है ॥ ११ ॥

एकादशे तन्त्रोपोद्घाततन्त्रावापतन्त्रप्रपञ्चनावापप्रपञ्चनचिन्तनानि ॥ १२ ॥

ग्यारहवेंमें तन्त्रोपोद्घात तन्त्रावाप, तन्त्रप्रपञ्चन और अवापप्रपञ्चन आलोचित हुआहै ॥ १२ ॥

द्वादशे प्रसंगतन्त्रनिर्णयसमुच्चयविकल्पविचारः ॥ १३ ॥

बारहवेंमें प्रसङ्गतन्त्रका निर्णयसमुच्चय और विकल्पका विचार किया गयाहै ॥ १३ ॥

तत्राथातो धर्मजिज्ञासेति प्रथममधिकरणं पूर्वमीमांसारम्भोपपादनपरम् ॥ १४ ॥

उनमें "अथातो धर्म्मजिज्ञासा" इत्यादि वाक्यविन्यासपूर्वक, पूर्वमीमांसाका आरम्भ उपपादनार्थ प्रथम अधिकरण सन्निविष्ट हुआ है ॥ १४ ॥

अधिकरणञ्च पञ्चावयवमाचक्षते परीक्षकाः । ते च पञ्चावयवाः विषयसंशयपूर्वपक्षसिद्धान्तसङ्गतिरूपाः ॥ १५ ॥

परीक्षकोंने अधिकरणके पांच अवयव निर्देश किये हैं । जैसे--विषय, संशय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त और सङ्गति ॥ १५ ॥

तत्राचार्य्यमतानुसारेणाधिकरणं निरूप्यते । स्वाध्यायोऽध्येतव्य इत्येतद्वाक्यं विषयः ॥ १६ ॥

उनमें आचार्यके मतानुसार अधिकरण निरूपण किया गया है स्वाध्यायो अध्येतव्यः--अर्थात् वेदपाठ करना चाहिये, इस प्रकार वाक्यका नाम विषय है ॥ १६ ॥

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इत्यारभ्यान्वाहार्य्ये च दर्शनादित्येतदन्तं जैमिनीयं धर्मशास्त्रमनारभ्यमारभ्यं वेति सन्देहः ॥ १७ ॥

चोदनालक्षण अर्थका नाम धर्म्म, इत्यादि वाक्य आरम्भकर अन्वाहार्य्ये च दर्शनात् इत्यादि पर्य्यन्त जैमिनिप्रणीत धर्म्मशास्त्र आरम्भ्य या अनारम्भ्य, इसका नाम संशय है॥ १७॥

अध्ययनविधेरदृष्टार्थ दृष्टार्थत्वाभ्यां तत्रानारभ्यमिति पूर्वःपक्षः । अध्ययनविधेरर्थावबोधलक्षकदृष्टफलकत्वानुपपत्तेरर्थावबोधार्थमध्ययनविधिरिति वदन् वादी प्रष्टव्यः किमत्यन्तमप्राप्तमध्ययनं विधीयते किंवा पाक्षिकमवघातवन्नियम्यत इति ॥ १८ ॥

उनमें अध्ययनविधिके अदृष्टार्थत्वद्वारा अनारभ्य ऐसा पूर्वपक्ष होता है । अध्ययन विधिका अर्थावबोधरूप दृष्टफलकत्व अनुपपन्न होजानेसे अर्थावबोधार्थ अध्ययन विधि, ऐसा वाक्यप्रयोगमें प्रवृत्त वादीसे यही जिज्ञास्य है कि, तुम्हारे मतमें अत्यन्त अप्राप्त अध्ययन विहित, या अवघातवत् पाक्षिक अध्ययन नियमित होता है ॥ १८ ॥

न तावदाद्यः विवादपदं वेदाध्ययनमर्थावबोधहेतुः अध्ययनत्वाद्भारताध्ययनवदित्यनुमानेन विध्यनपेक्षतया प्राप्तत्वात् ॥ १९ ॥

प्रथम अर्थात् अत्यन्त अप्राप्त अध्ययन नहीं कह सकते हो । क्योंकि, विवादास्पद वेदाध्ययन अर्थावबोधका हेतु, भारताध्ययनकी नाईं, अनुमानद्वारा इसमें किसी विधिकी अपेक्षा नहीं ॥ १९ ॥

अस्तु तर्हि द्वितीयः यथा नखविदलादिना तण्डुलनिष्पत्तिसम्भवात् अवघातनिष्पन्नैरेव तण्डुलैः पिष्टपुरोडाशादिकरणे अवान्तरापूर्वद्वारा दर्शपूर्णमासौ परमापूर्वमुत्पादयतः नापरथा अतः अपूर्वमवघातस्य नियमहेतुः प्रकृते लिखितपाठजन्येनाध्ययनजन्येन वार्थावबोधेन क्रत्वनुष्ठानसिद्धेरध्ययनस्य नियमहेतुर्नास्त्येव। तस्मादर्थावबोधहेतुविचारशास्त्रस्य वैधत्वं नास्तीति। तर्हि श्रूयमाणस्य विधेः का गतिरिति चेत् स्वर्गफलकोऽक्षरग्रहणमात्रविधिरिति भवान् परितुष्यतु विश्वजिन्न्यायेनाश्रुतस्यापि कल्पयितुं शक्यत्वात् यथा स स्वर्गः सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वादिति विश्वजित्यश्रुतमप्यधिकारिणं सम्पादयता तद्विशेषणं स्वर्गः फलं युक्त्या निरणायि तद्वदध्ययनेऽप्यस्तु ॥ २० ॥

अच्छा तो द्वितीय पक्षही स्वीकार किया जावे जैसे नखद्वारा विदलनादिकर, तण्डुल समुत्पादन सम्भव होता है। अवघात द्वारा समुत्पादित तण्डुल द्वाराही पिष्ट पुरोडाशादि करनेमें दर्शपूर्णमास उभय विधियज्ञ अवान्तर अदृष्टसाधनद्वारा परम अदृष्ट समुत्पादन करता है अन्य प्रकारसे नहीं। इसकारण अदृष्ट अववातका नियम हेतु। अध्ययनजनित अथवा अन्यप्रकार अर्थावबोध द्वारा यज्ञका अनुष्ठान सिद्ध होता है। सुतरां, अध्ययनका नियम हेतु नहीं, इसकारण, अर्थावबोध हेतु विचार शास्त्रका वैधत्व नहीं। तो श्रूयमाण विधिकी गति क्या होगी? इसका उत्तर यह है जो, अक्षरग्रहणमात्र विधिका स्वर्गही फल हो यह-जानकर, तुम परितुष्ट होओ। क्योंकि, विश्वजित्की नाई अश्रुत स्वर्गकीभी कल्पना यी जासकती है। जैसे वह स्वर्ग सबके प्रति अविशेषसे इत्यादि विधानसे विश्वजित्में ुत अधिकारीको भी सम्पादनकर युक्तिद्वारा तद्विशेषण स्वर्गफल निर्णय किया है, उस कार अध्ययनभी होवे ॥ २० ॥

तदुक्तम्—

विनापि विधिनादृष्टलाभान्न हि तदर्थता।
कल्पास्तु विधिसामर्थ्यात् स्वर्गो विश्वजिदादिवदिति ॥ २१ ॥

उसी प्रकार, कहा है, विधिके विनाभी अदृष्ट लाभ होनेसे, तदर्थता सम्पन्न नहीं होती, विश्वजित् प्रभृतिकी नाई, विधिसामर्थ्यवशतः स्वर्गकल्पना कियी जासकती है ॥ २१ ॥

एवञ्च सति वेदमधीत्य स्नायादिति स्मृतिरनुगृहीता भवति । अत्र हि वेदाध्ययनसमावर्त्तनयोरव्यवधानमवगम्यते ॥ २२ ॥

ऐसा होनेसे, वेद अध्ययनकर स्नान करना चाहिये, इत्यादि स्मृति अनुगृहीत होती है यहां, वेद अध्ययन और समावर्त्तन इन दोनोंका व्यवधान अवगत होताहै ॥ २२ ॥

तावके मते त्वधीतेऽपि वेदे धर्मविचाराय गुरुकुले वस्तव्यं तथा सत्यव्यवधानं बाध्येत । तस्माद्विचारशास्त्रस्य वैधत्वाभावात् पाठमात्रेण स्वर्गसिद्धेः समावर्तनशास्त्राच्च धर्मविचारशास्त्रमनारम्भणीयमिति पूर्वपक्षसंक्षेपः ॥ २३ ॥

तुम्हारे मतमें वेदअध्यन करनेपरभी, धर्म्मविचारके लिये गुरुकुलमें वास करना कर्त्तव्य है । ऐसा होनेसे, अव्यवधान बाधित होता है । इसकारण विचारशास्त्रका वैधत्वका अभाव घटनेसे, पाठमात्रसे स्वर्गसिद्धि सम्भव । इसलिये धर्म्मविचारशास्त्र अनारम्भणीय । यही पूर्व्व पक्षका संक्षेप है ॥ २३ ॥

सिद्धान्तस्त्वन्यतः प्राप्तत्वादप्राप्तविधित्वं मास्तु नियमविधित्वपक्षस्तु वज्रहस्तेनापि नापहस्तयितुं पार्य्यते ॥ २४ ॥

इसका सिद्धान्त यह है जो अन्यप्रकारसे प्राप्त होनेसे अप्राप्तविधित्व न हो स्वयं वज्रहस्तभी नियमविधित्व पक्ष अपहस्तित नहीं करसकते ॥ २४ ॥

तथाहि स्वाध्यायोध्येतव्य इति तव्यप्रत्ययः प्रेरणापरपर्य्यायां पुरुषप्रवृत्तिरूपार्थभावनाभाव्याममिधाभावनां प्रत्याययति । सा ह्यर्थभावनासहितमनुबद्धं भाव्यमाकाङ्क्षति न तावत्समानपदोपात्तमध्ययनभाव्यं परिरभते ॥ २५ ॥

इसीप्रकार स्वाध्याय अध्येतव्य । इसस्थानमें तव्यप्रत्यय द्वारा, जिसका अपर नाम प्रेरणा है, पुरुषका प्रवृत्तिरूप अर्थभावनाका भाव्य वही अभिधाभावनाकी प्रतीति उत्पन्न होती है । इसी अर्थभावनाद्वारा आनुषङ्गिक अनुभाव्य विषय आकांक्षित होता है । समानपदोंपात्त अध्ययनभाव्यकी आकांक्षा नहीं होती ॥ २५ ॥

अध्ययनशब्दार्थस्य स्वाधीनोच्चारणक्षमत्वस्य वाङ्मनसव्यापारस्य क्लेशार्थकस्य भाव्यत्वासम्भवात् । नापि समानवाक्योपात्तः स्वाध्यायः स्वाध्यायशब्दार्थस्य वर्णराशेर्नित्यत्वेन विभु-

त्वेन चोत्पत्त्यादीनां चतुर्णां क्रियाफलानामसम्भवात् । तस्मा-
त्सामर्थ्यप्राप्तोऽवबोधो भाव्यत्वेनावतिष्ठते ॥ २६ ॥

अध्ययन शब्दार्थका स्वाधीनोच्चारणक्षमतासे क्लेशार्थक वाङ्मनस व्यापारका भाव्यत्व सम्भव नहीं । और स्वाध्याय कभी समान वाक्योपात्त नहीं । क्योंकि, स्वध्यायशब्दार्थकी शब्द-राशि नित्य और विभुत्वविशिष्ट एवं उत्पत्ति प्रभृति चारप्रकारकी क्रियाफलका अतीत । सुतरां, सामर्थ्य प्राप्त अवबोध भावात्मरूपसे अवस्थिति करता है ॥ २६ ॥

अर्थीसमर्थो विद्वानधिक्रियत इति न्यायेन दर्शपूर्णमासादिवि-
षयावबोधमवेक्षमाणाः तत्त्वबोधे स्वाध्यायं विनियुञ्जते ॥ २७ ॥

अर्थी समर्थ विद्वान् अधिक्रियते इत्यादि न्यायानुसार दर्शपूर्णमासादि विषयावबोध अवेक्षाकर तत्त्वबोधविषयमें स्वाध्याय विनियोजित होताहै ॥ २७ ॥

अध्ययनविधिश्च लिखितपाठादिव्यावृत्त्या अध्ययनसंस्कृतत्वं
स्वाध्यायस्यावगमयति । तथा च यथा दर्शपूर्णमासादिजन्यं
परमापूर्वम् अवघातादिजन्यस्यावान्तरापूर्वस्य कल्पकं तथा
समस्तक्रतुजन्यमपूर्वजातं क्रतुज्ञानसाधनाध्ययननियमजन्यम-
पूर्वं कल्पयिष्यति नियमादृष्टानिष्टौ विधिश्रवणवैफल्यमापद्येत ।
न च विश्वजिन्न्यायेन फलकल्पनावकल्प्यते अर्थावबोधे
दृष्टे फले सति फलान्तरकल्पनायाः अयोगात् ॥ २८ ॥

पुनः अध्ययन विधि लिखितपाठादिकी व्यावृत्तिद्वारा स्वाध्यायका अध्ययन संस्कार सम- है । और उसी प्रकार, जैसे, दर्श पूर्णमासादि जनित परम अदृष्ट अवघातादि जनित . . अदृष्ट समुद्भावित करता है । उसीप्रकार सब क्रतुजनित अदृष्टजातक्रतुसाधन . . [illegible] उत्पादित अदृष्टकी उद्भावना करता है । नियमादृष्ट अनिष्ट विधिश्रवणका . प्राप्त होता है । विश्वजित न्यायानुसार फलकल्पना अवकल्पित नहीं होती । इसका कारण यह है जो अर्थावबोधरूप फल दृष्ट होनेपर, फलान्तर कल्पनाका संयोग अपगत होता है ॥ २८ ॥

तदुक्तम्—

लभ्यमाने फले दृष्टे नादृष्टफलकल्पना ।
विधेस्तु नियमार्थत्वान्नानर्थक्यं भविष्यतीति ॥ २९ ॥

इसीप्रकार, कहा है लभ्यमान फल दृष्ट होनेपर, अदृष्ट फल कल्पनाका फिर प्रादुर्भाव नहीं होता । नियमार्थकतावशात् विधिका अनर्थकत्व सम्भव नहीं ॥ २९ ॥

ननु वेदमात्राध्यायिनोऽर्थावबोधानुदयेऽपि साङ्गवेदाध्यायिनः पुरुषस्यार्थावबोधसम्भवात् ।विचारशास्त्रस्य वैफल्यमिति चेत्तदसमञ्जसं बोधमात्रसम्भवेऽपि निर्णयस्य विचाराधीनत्वात्। तद्यथा, अक्ताः शर्करा उपदधातीत्यत्र घृतेनैव न तैलादिनेत्यर्थनिर्णयो व्याकरणेन निगमेन निरुक्तेन वा न लभ्यते, विचारशास्त्रेण तु तेजो वै घृतमिति वाक्यशेषवशादर्थनिर्णयो लभ्यते । तस्माद्विचारशास्त्रस्य वैधत्वं सिद्धम् ॥ ३० ॥

वेदमात्र अध्ययनमें प्रवृत्त होनेसे यद्यपि अर्थावबोधका उदय नहीं होता, किन्तु साङ्गवेद अध्ययनमें व्यापृतपुरुषका अर्थावबोध सम्भव होता है । इसबातका मेल नहीं । क्योंकि; बोधमात्रसम्भव होनेपरभी निर्णय विचाराधीन होता है । यद्यपि अर्थबोध होता है किन्तु विवादस्थलकी मीमांसा करनेमें विचारकी आवश्यकता होती है अर्थसमझनेहीपर उस २ स्थलकी मीमांसा नहीं कियी जाती । इसका दृष्टान्त, जैसे, अक्तशर्करा इत्यादि । यहां घृताक्त, या तैलाक्त, इसप्रकार अर्थनिर्णय व्याकरण, वा निगम अथवा निरुक्तद्वारा अधिगत नहीं होता।विचारशास्त्रद्वाराही घृत साक्षात् तेज इसप्रकार वाक्यशेषवशात् अर्थनिर्णय लब्ध होता है । इसकारण विचारशास्त्रका वैधत्वसिद्ध ॥ ३० ॥

न च वेदमधीत्य स्नायादिति शास्त्रं गुरुकुलनिवृत्तिपरं व्यवधानप्रतिबन्धकं बाध्येतेति मन्तव्यं स्नात्वा भुङ्क्ते इतिवत् पूर्वापरीभावसमानकर्तृकत्वमात्रप्रतिपत्त्या अध्ययनसमावर्त्तनयोर्नैरन्तर्यप्रतिपत्तेः । तस्माद्विधिसामर्थ्यादेवाधिकरणसहस्रात्मकपूर्वमीमांसाशास्त्रमारम्भणीयम् । इदं चाधिकरणं शास्त्रेणोपोद्घातत्वेन सम्बध्यते ॥ ३१ ॥

वेद अध्ययनकर स्नान करना चाहिये, इत्यादिशास्त्र गुरुकुलनिवृत्तिपर । व्यवधानप्रतिबन्धक वाक्य बाधित होता है इसप्रकार नहीं माना जाता । क्योंकि, स्नानकर भोजन करता है, इत्यादिके तुल्य पूर्वापरीभाव समानकर्तृत्वमात्रकी प्रतिपत्तिद्वारा अध्ययन और समावर्त्तन होनेका नैरन्तर्य प्रतीत होता है । अतएव विधिसामर्थ्यवशात् अधिकरण सहस्रयुक्त

पूर्व्वमीमांसाशास्त्र आरम्भणीय । यह अधिकरण, उपोद्घातत्ववशात् साहित सर्व्वथा सम्बन्ध है ॥ २१ ॥

तदाह-

चिन्तां प्रकृतसिद्धार्थामुपोद्घातं प्रचक्षत इति ॥ २२ ॥

उसीप्रकार कहा है, प्रकृतिसिद्ध्यर्थ चिन्ताका नाम उपोद्घात है ॥ २२ ॥

इदमेवाधिकरणं गुरुमतमनुसृत्योपन्यस्यते । अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीतेत्यत्राध्यापनं नियोगविषयः प्रतिभासते। नियोगश्च नियोज्यमपेक्षते । कश्चात्र नियोज्य इति चेदाचार्य्यककाम एव सम्माननेत्यादिना पाणिन्यनुशासनेनाचार्य्यकरणेष्यमाणे नयतेर्धातोरात्मनेपदस्य विधानात् उपनयने यो नियोज्यः स एवाध्यापनेपि तयोरेकप्रयोगत्वात् ॥ २३ ॥ २४ ॥

यही अधिकरण गुरुमतानुसरणपूर्वक उपन्यस्त होता है । आठवर्षके ब्राह्मणके लडकेका उपनयन समाधान और उसको पढ़ाना चाहिये । यहां अध्यापन नियोगविषय कहकर प्रतिभात होता है । नियोगनियोज्यकी अपेक्षा करता है । इसस्थानम नियोज्य कौन है इसप्रश्नके उत्तरमें पाणिनिके अनुशासन अनुसार आचार्य्यप्राप्त होनेपर, नी धातुके उत्तरआत्मने पद विधानकर जो व्यक्ति उपनयनमें नियोज्य होता है वही अध्यापनमेभी नियोज्य होता है। क्योंकि, दोनोंका एकत्र प्रयोग हुआ है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अत एवोक्तं मनुना मुनिना-

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सांगञ्च सरहस्यञ्च तमाचार्य्यं प्रचक्षत इति ॥ २५ ॥

इसीकारण मनुमुनिने कहा है जो द्विज शिष्यको उपनीतकर सांग और सरहस्य वेद अध्ययन करावे उसको आचार्य कहते हैं ॥ २५ ॥

ततश्चाचार्य्यकर्तृकमध्यापनं माणवककर्तृकेणाध्ययनेन विना न सिद्ध्यतीत्यध्यापनविधिप्रयुक्त्यैवाध्ययनानुष्ठानं सेत्स्यति प्रयोज्यकव्यापारमन्तरेण प्रयोजकव्यापारस्यानिर्वाहात् ॥ २६ ॥

इसकारण आचार्य्यकर्तृक अध्यापन माणवक कर्तृक अध्ययनविना सिद्ध नहीं होता, इसप्रकार अध्यापन विधिका प्रयोगद्वाराही अध्ययनानुष्ठान सिद्ध होताहै । जिसकारण, प्रयोज्यव्यापारके विना प्रयोजक व्यापारका निर्व्वाह नहीं होता ॥ २६ ॥

तर्ह्यध्येतव्य इत्यस्य विधित्वं न सिध्यतीति चेन्मासैत्सीत् का नो हानिः पृथगध्ययनविधेरभ्युपगमे प्रयोजनाभावाद्विधित्वस्य नित्यानुवादत्वेनाप्युपपत्तेः । तस्मादध्ययनविधिमुपजीव्य पूर्वमुपन्यस्तौ पूर्वोत्तरपक्षौ प्रकारान्तरेण प्रदर्शनीयौ विचारशास्त्रमवैधत्वेनानारब्धव्यमिति पूर्वपक्षः वैधत्वेनारब्धव्यमिति राद्धान्तः ॥ ३७ ॥

इसप्रकार होनेसे अध्येतव्य, इसवाक्यका विधित्व सिद्ध नहीं होसकता । न हो, उससे हमारी हानि क्या? पृथक् अध्ययन विधिका अभ्युपगम होनेसे प्रयोजनके अभाववशात्, नित्यानुवादत्वद्वाराभी विधित्वकी उपपत्ति होती है । इसकारण, अध्ययनविधिको आश्रयकर, पहिले जिनका निर्देश किया गयाहै, वही पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष, प्रकारान्तरसे प्रदर्शन किये गये हैं । उनमें विचारशास्त्र अवैधत्वद्वारा अनारम्भणीय, यह पूर्वपक्ष एवं वैधत्वद्वारा वह आरम्भणीय, यही उत्तर पक्ष है ॥ २७ ॥

तत्र वैधत्वं वदता वदितव्यं किमध्यापनविधिर्माणवकस्यार्थावबोधमपि प्रयुङ्क्ते किं वा पाठमात्रम् । नाद्यः विनाप्यर्थावबोधेनाध्यापनसिद्धेः । न द्वितीयः पाठमात्रे विचारस्य विषयप्रयोजनयोरसम्भवादापाततः प्रतिभातः सन्दिग्धोऽर्थो विचारशास्त्रविषयो भवति । तथा सति यत्रार्थावगतिरेव नास्ति तत्र सन्देहस्य का कथा विचारफलस्य निर्णयस्य प्रत्याशा दूरत एव ॥ २८ ॥

इसमें वैधत्वनिर्देश करनेवालेसे कहना चाहिये, अध्यापन विधिद्वारा माणवकका अर्थावबोध प्रयोजित किंवा पाठमात्रका प्रयोग होता है? पहिला नहीं । क्योंकि, अर्थावबोधके बिना; अध्यापन सिद्ध होजाता है । द्वितीयभी नहीं । क्योंकि पाठमात्रसे विचारका विषय और प्रयोजन सम्भव नहीं । आपाततः प्रतिभात सन्दिग्ध अर्थ विचारशास्त्रका विषय होजाता है । ऐसा होनेसे जिसस्थलमें अर्थबोध नहीं होता. वहां सन्देहकी बात क्या विचार निर्णयकी प्रत्याशा दूर होजाती है ॥ २८ ॥

तथा च यदसन्दिग्धं प्रयोजनं तत्प्रेक्षावत्प्रतिपित्सागोचरं यथा [illegible]न्द्रियसन्निकृष्टः स्पष्टालोकमध्यमध्यासीनो घट

इति न्यायेन विषयप्रयोजनयोरसम्भवेन विचारशास्त्रमनारभ्य-मिति पूर्वः पक्षः अध्यापनविधिनार्थावबोधो मा प्रयोजि तथापि सांगवेदाध्यायिनो गृहीतपदपदार्थसंगतिकस्य पुरुषस्य पौरुषेये-ष्विव प्रबन्धेषु आम्नायेऽप्यर्थावबोधः प्राप्नोत्येव ॥ ३९ ॥

और उसी प्रकार, जो असन्दिग्ध प्रयोजन, वह विद्वान् स्वर्गके प्रतिपादनकी इच्छाका विषयभूत, मनसहित इन्द्रियगणके सन्निकर्षसे अधिष्ठित एवं स्पष्ट आलोकमें अवस्थित घट स्वरूप, इसप्रकार न्यायानुसार, विषय और प्रयोजनकी सम्भावनावशात् विचारशास्त्र आरम्भणीय नहीं, यही पूर्वपक्ष। अध्यापनविधिद्वारा अर्थावबोध प्रयोजित न हो; तथापि, साङ्गवेदके अध्ययनमें प्रवृत्त होकर, पद पदार्थ सङ्गतिका ज्ञान होनेसे, पौरुषेय प्रबन्धकी नाईं। आम्नायका अर्थावबोध होजाता है ॥ ३९ ॥

ननु यथा विषं भुङ्क्ष्वेत्यत्र प्रतीयमानोऽप्यर्थो न विवक्ष्यते मास्य गृहे भुङ्क्था इति भोजनप्रतिषेधस्य मातृवाक्यविषयत्वात् तथा-म्नायार्थस्याविवक्षायां विषयाद्यभावदोषः प्राचीनः प्रादुःष्या-दिति चेन्मैवं वोचः दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यसम्भवात्। विषभोजनवाक्यस्याप्तप्रणीतत्वेन मुख्यार्थपरिग्रहे बाधः स्यादिति विवक्षा नाश्रीयते। अपौरुषेये तु वेदे प्रतीयमानार्थः कुतो न विवक्ष्यते। विवक्षिते च वेदार्थे यत्र यत्र पुरुषस्य सन्देहः स सर्वोऽपि विचारशास्त्रस्य विषयो भविष्यति तन्निर्णयस्य प्रयोजनं तस्मादध्यापनविधिप्रयुक्तेनाध्ययनेनावगम्यमानस्यार्थस्य वि-चारार्हत्वाद्विचारशास्त्रस्य वैधत्वेन विचारशास्त्रमारम्भणीयमिति राद्धान्तसंग्रहः ॥ ४० ॥

जैसे, विष खाओ, इसस्थलमें, इसके घरमें नहीं खाना, इसप्रकार भोजनप्रतिषेध मातृ वाक्यका विषयीभूत कहकर, प्रतीयमान अर्थ विवक्षित नहीं होता, उसी प्रकार वेदार्थ की अविवक्षा घटनेसे, विषयादिका अभावदोष प्रादुर्भाव होता है, यह बात नहीं कह सकते, क्योंकि, दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक दोनोंका वैषम्यसम्भव एवं विषभोजन वाक्य आप्त प्रणीत, इसकारण मुख्यार्थ परिग्रहमें बाध घटता है, इसप्रकार विवक्षा प्रादुर्भूत नहीं हो सकती। वेद अपौरुषेय है। उसमें प्रतीयमान अर्थ किसकारण विवक्षित नहीं होगा? विव-क्षित अवस्थामें वेदार्थके जिस २ स्थलमें पुरुषका सन्देह उत्पन्न होता है, वह सम्पूर्ण विचार

शास्त्रका विषय होगा उसका निर्णय प्रयोजन । इसीकारण अध्ययनविधिकी सहायतासे प्रयोजित अध्ययनद्वारा जो अर्थ अवगत होता है, वह सर्वथा विचारके योग्य कहकर, विचारशास्त्रका वैधत्व और उसका निवन्धन विचारशास्त्र आरम्भणीय होता है, यही उत्तरपक्ष ॥ ४० ॥

स्यादेतत् वेदस्य कथमपौरुषेयत्वमभिधीयते तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात्, कथं मन्येथाः अपौरुषेयाः वेदाः सम्प्रदायाविच्छेदे सत्यस्मर्य्यमाणकर्तृकत्वादात्मवदिति, तदेतन्मंदं विशेषणासिद्धेः पौरुषेयवेदवादिभिः प्रलयसम्प्रदायविच्छेदस्य कक्षीकरणात् ॥ ४१ ॥

अच्छा. यह माना गया । किन्तु वेद जो अपौरुषेय, सो किसप्रकार कहा जा सकता ? क्योंकि. उसका प्रतिपादक प्रमाण नहीं, सम्प्रदायके अविच्छेद होनेसे, अस्मर्यमाण कर्त्तृकत्ववशात् आत्माकी नाई वेद सब अपौरुषेय, यह कैसे समझते हो ? विशेषणकी असिद्धि वशात् यह कथन सङ्गत नहीं होसकता, विशेषतः पौरुषेय वेदवादी लोग प्रलयसमयमें सम्प्रदाय विच्छेद स्वीकार करलेते हैं ॥ ४१ ॥

किञ्च किमिदमस्मर्य्यमाणकर्तृकत्वं नाम अप्रतीयमानकर्तृकत्वमस्मरणगोचरकर्तृकत्वं वा । न प्रथमः कल्पः परमेश्वरस्य कर्त्तुः प्रमितेरभ्युपगमात् । न द्वितीयः विकल्पासहत्वात् । तथा हि किमेकेनास्मरणमभिप्रेयते सर्वैर्वा । नाद्यः यो धर्मशीलो जितमानरोष इत्यादिषु मुक्तकोक्तिषु व्यभिचारात् । न द्वितीयः सर्वास्मरणस्य असर्वज्ञदुर्ज्ञानत्वात् पौरुषेयत्वे प्रमाणसम्भवाच्च वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वात् कालिदासादिवाक्यवत् । वेदवाक्यान्याप्तप्रणीतानि प्रमाणत्वे सति वाक्यत्वात् मन्वादिवाक्यवदिति । ॥ ४२ ॥

मुक्तिवादमें व्यभिचार घटता है, द्वितीयभी नहीं होसकता । इसका कारण यह है, जो व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं, वह कभी सबका असमरण अनुभव नहीं करसकता । विशेषतः वेद जो पौरुषेय, उसका प्रमाण है । कालिदासादिके वाक्यकी नाई, वाक्यत्ववशात् वेदवाक्य सब पौरुषेय हैं । एवं प्रमाण रहनेसे, मन्वादि वाक्यकी नाई, वाक्यत्ववशात् वेदवाक्य सम्पूर्ण आप्तप्रणीत ॥ ४२ ॥

ननु,—

वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।
वेदाध्ययनसामान्यादधुनाध्ययनं यथा ॥ ४३ ॥

यदि कहो कि, गुरुमुखसे सुनकर, वेदका अध्ययन होता है । जैसे तदनुसारही इस समय अध्ययन प्रचलित हुआहै ॥ ४३ ॥

इत्यनुमानं प्रति साधनं प्रगल्भत इति चेत्तदपि न प्रमाणकोटिं प्रवेष्टुमीष्टे ।

भारताध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।
भारताध्ययनत्वेन साम्प्रताध्ययनं यथेति ॥ ४४ ॥

इत्यादि अनुमान० प्रतिकूलमें बलवत् साधनस्वरूप है । किन्तु यह चूडान्त प्रमाण हो नहीं सकता । क्योंकि, लोकमें सचराचर कहा जाता है कि, गुरुके निकट अध्ययन करही कर, भारत अध्ययन करना होता है । जैसे इदानीं उसके अनुसार अध्ययन सम्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

आभाससमानयोगक्षेमत्वात् । ननु तत्र व्यासः कर्त्तेति स्मर्य्यते।
को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद्भवेत् ॥ ४५ ॥

इत्यादि वाक्यके सहित उक्तवाक्यकी सामान्यता प्रतिपत्ति होती है । यदि कहो, व्यास उक्त भारतका कर्त्ता है किन्तु पुण्डरीकाक्षके विना और कौन महाभारतकी रचना करसकता है ॥ ४५ ॥

इत्यादाविति चेत्तदसारम् ।
ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत इति ॥ ४६ ॥

इत्यादि वचनवशात् वह सर्वथा असार होजाता है । [illegible] ऋक्से सामका जन्म हुआ है । छन्द सब उसी सामसे प्रादुर्भूत एवं उसीसे यजुः आविर्भाव हुआ है ॥ ४६ ॥

पुरुषसूक्ते वेदस्य सकर्तृकताप्रतिपादनात् । किञ्चानित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वाद्धटवत् ॥ ४७ ॥

इत्यादि पुरुषसूक्तके अनुसार वेदका सकर्त्तृकत्व प्रतिपादित हुआ है । अधिकन्तु सामान्य वत्ता रहनेसे अनित्य शब्द, घटकी नाईं अस्मदादि बाह्य इन्द्रियका गोचर होताहै ॥ ४७ ॥

नन्विदमनुमानं स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञाप्रमाणप्रतिहत-मिति चेत् तदति फल्गु लूनपुनर्जातकेशदलितकुन्दादाविव प्रत्य-भिज्ञायाः सामान्यविषयत्वेन बाधकत्वाभावात् ॥ ४८ ॥

इत्यादि अनुमान, वह यही ग, इसप्रकार प्रत्यभिज्ञा प्रमाणद्वारा प्रतिहत होता है । किन्तु यह बात कभी प्रमाणयुक्त नहीं होसकती, क्योंकि, केश और कुन्दादि छिन्न होनेपर, पुनः उत्पन्न नहीं होता उसमें जैसे प्रत्यभिज्ञाका अवसर नहीं, उसी प्रकार, यहां भी प्रत्य-भिज्ञासे सामान्यविषयत्ववशात् बाधकत्वका अभाव घटता है ॥ ४८ ॥

नन्वशरीरस्य परमेश्वरस्य ताल्वादिस्थानाभावेन वर्णोच्चारणा-सम्भवात् कथं तत्प्रणीतत्वं वेदस्य स्यादिति चेन्न तद्भद्रं स्वभा-वतोऽशरीरस्यापि तस्य भक्तानुग्रहार्थलीलाविग्रहग्रहणसम्भ-वात् ॥ ४९ ॥

यदि कहो कि, ईश्वरको शरीर नहीं है सुतरां तालुप्रभृति स्थानके अभावसे वर्णो-च्चारण सम्भव नहीं होनेसे वेद प्रणयन कैसे घट सकता है ? यह बात युक्तिसङ्गत नहीं । क्योंकि स्वभावतः शरीरहीन होनेपरभी. वह भक्तोंके प्रति अनुग्रह वितरणार्थ लीलाविग्रह परिग्रह करता है ॥ ४९ ॥

तस्माद्वेदस्यापौरुषेयत्ववाचो युक्तिर्न युक्तेति चेत् तत्र समाधान मभिधीयते । किमिदं पौरुषेयत्वं सिसाधयिषितं पुरुषादुत्पन्नत्व मात्रं· यथा अस्मदादिभिरहरहरुच्चार्य्यमाणस्य वेदस्य प्रमाणा-न्तरेणार्थमुपलभ्य तत्प्रकाशनाय रचितत्वं वा, यथा अस्मदा दिभिरेव निबध्यमानस्य प्रबन्धस्य प्रथमे न विप्रतिपत्तिः, चरमे किमनुमानबलात् तत्साधनमागमबलाद्वा । नाद्यः माल तीमाधवादिवाक्येषु सव्यभिचारत्वात् ॥ ५० ॥

इसकारण, वेदका अपौरुषेयत्व वाक्य युक्ति सङ्गत नहीं । इस विषयका समाधान यह है जो इस पौरुषेयत्व शब्दसे पुरुषसे उत्पन्न मात्रत्व । जैसे अस्मदादिकर्तृक प्रतिदिन उच्चार्यमाण वेदकी उत्पत्ति होती है या नहीं ? प्रमाणान्तरद्वारा अर्थ उपलब्धकर, उसके प्रकाशार्थ रचना कियी गयी है; जैसे अस्मदादि प्रबन्धका निबन्धकर, यही क्या पौरुषेयत्व शब्द का अर्थ ? प्रथमकहनेसे, किसीप्रकार विप्रतिपत्ति नही होती द्वितीयपक्ष माननेसे, यह जिज्ञास्य है. जो, अनुमानबलात् अथवा आगमबलसे उसका साधन किया गयाहै ? अनुमानबल कहा नहीं जासकता । ऐसा होनेसे मालतीमाधिवादि वाक्यमें व्यभिचार घटता है ॥ ५० ॥

अथ प्रमाणत्वे सतीति विशिष्यत इति चेत्तदपि न विपश्चितो मनसि वैषद्यमापद्यते । प्रमाणान्तरागोचरार्थप्रतिपादकं हि वाक्यं वेदवाक्यं, तत्प्रमाणान्तरगोचरार्थप्रतिपादकमिति साध्यमाने मम माता बन्ध्येतिवत् व्याघातापातात् ॥ ५१ ॥

प्रमाण है, कहनेसेभी, पण्डितोंके मनमें वैषद्यप्राप्ति नहीं होगी । क्योंकि, जिसका दूसरा प्रमाण नहीं, तादृश अर्थप्रतिपादक वाक्यही वेदवाक्य । सुतरां, प्रमाणहै, कहनेसे मेरी माता वंध्या है, इत्यादिवत् व्याघात आपतित होता है ॥ ५१ ॥

किञ्च परमेश्वरस्य लीलाविग्रहपरिग्राहाभ्युपगमेऽप्यतीन्द्रियार्थ दर्शनं न सञ्जावटीति देशकालस्वभावविप्रकृष्टार्थहरणोपायाभावात् ॥ ५२ ॥

पुनः, परमेश्वरकी लीलाविग्रह परिग्रह माननेपरभी, अतीन्द्रियार्थ दर्शन नहीं सिद्ध होता। श, काल और स्वभावका विप्रकृष्ट विषयग्रहणका उपायाभावही इसका हेतु ॥ ५२ ॥

न च तच्चक्षुरादिकमेव तादृक्प्रतीतिजननक्षममिति मन्तव्यं दृष्टानुसारेणैव कल्पनाया आश्रयणीयत्वात् ॥ ५३ ॥

और चक्षुआदिभी उसप्रकारके अर्थकी प्रतीतिसाधनमें सक्षम नहीं । क्योंकि, दृष्टानुसारही कल्पनाका आविष्कार होता है ॥ ५३ ॥

तदुक्तं गुरुभिः सर्वज्ञनिराकरणवेलायाम् ।
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात ।
दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तितेति ॥ ५४ ॥

गुरुलोगोंने सर्वज्ञनिराकरणवेलामें यह कहा है । जैसे जिस स्थानमें अतिदृष्ट होता है, अर्थात् प्रत्यक्षकी नाई उसकी आदि और अन्तक्रमसे दर्शन किया जाता, उस २ स्थानमें लोक सिद्ध पदार्थका किसीप्रकार व्यभिचार या व्यतिक्रम सम्भवित नही होता इसका दृष्टान्त है । जैसे, दूर और सूक्ष्मादि विषय दृष्टिगोचर होनसे श्रवण इन्द्रियकी वृत्ति उसमें किसी-प्रकार प्रयोजित नही होती ॥ ५४ ॥

अत एव नागमबलात्तत्साधनं तेन प्रोक्तमिति पाणिन्यनुशासने जाग्रत्यपि काठककालापतैत्तिरीयमित्यादिसमाख्या अध्ययनसम्प्रदायप्रवर्त्तकविषयत्वेनोपपद्यते तद्वदत्रापि सम्प्रदायप्रवर्त्तकविषयत्वेनाप्युपपद्यते न चानुमानबलाच्छब्दस्यानित्यत्वसिद्धिः प्रत्यभिज्ञाविरोधात् ॥ ५५ ॥

इसकारणसे आगमबलसेभी वेदका पौरुषेयत्व सिद्ध वा प्रतिपन्न होना सम्भव नहीं । क्योंकि, वह एक प्रत्यक्ष सिद्ध घटना उसीप्रकार पाणिनिप्रोक्त, अनुशासनसे तत्कर्तृक प्रोक्त, इत्यादि सूत्रानुसार काठक अर्थात् कठक कर्तृक कथित, कालाप अर्थात् कलापकर्तृक प्रोक्त एवं तैत्तिरीय अर्थात् तित्तिरिकर्तृक कथित, इत्यादिसमाख्या जागृत है सो सब अध्ययन सम्प्रदाय प्रवर्त्तक विषयत्वद्वारा उपपन्न होता है । उसीप्रकार यह वेदभी अध्ययन सम्प्रदाय प्रवर्त्तक विषयत्वद्वाराभी सिद्ध होसकता है । अनुमानबलसे शब्दका अनित्यत्व साधन करनाभी सम्भव नही । क्योंकि, उसमें प्रत्यभिज्ञाका विरोध घटता है ॥ ५५ ॥

न चासत्यप्येकत्वे सामान्यनिबन्धनं तदिति साम्प्रतं सामान्यनिबन्धनत्वमस्य बलवद्बाधकोपनिपातादास्थीयते । क्वचिदव्यभिचारदर्शनाद्वा तत्र क्वचिद् व्यभिचारदर्शने तदुत्प्रेक्षायामुक्तं स्वतः प्रामाण्यवादिभिः ॥ ५६ ॥

शब्द अनित्य होनेपर गकारादिवर्ण नानाप्रकार हो सकता है । एक गकार विनष्ट होनेपर उसका सजातीय द्वितीय गकार आश्रय कर. सो यह गकार ऐसा, ज्ञान अवश्य होगा अतएव प्रत्यभिज्ञा स्थलमें कुछभी विरोध नहीं । यह नहीं होसकता । प्रत्यभिज्ञानका इसप्रकार सजातीय अवलम्बन बलवत् बाधक होनेसे, आश्रय किया जाता है । यदि किसी स्थानमें गकारादि वर्णका नित्यत्व व्यभिचार दृष्ट होता है तो इसप्रकार साजात्य अवलम्बन किया जासकता । इस विषयमें कहीं व्यभिचार दीखनेसे, सामान्य वादीगण साजात्य कल्पनाप्रसंगमें [illegible] है ॥ ५६ ॥

उत्प्रेक्षेत हि यो मोहादज्ञातमपि बाधनम् ।
स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा विनश्यतीति ॥ ५७ ॥

जो व्यक्ति मोहवशात् अज्ञात बाधनाकीभी कल्पना करता है । सर्वप्रकार विषयही उसका मत सन्दिग्ध होजानेसे उसको विनष्ट होना होता है । अर्थात् उसकेद्वारा किसी विषयका किसीप्रकार निर्णय या मीमांसा नही होता ॥ ५७ ॥

नन्विदं प्रत्यभिज्ञानं गत्वादिजातिविषयं न गादिव्यक्तिविषयं तासां प्रतिपुरुषं भेदोपलम्भादन्यथा सोमशर्माधीते इति विभागो न स्यादिति चेत्तदपि शोभां न बिभर्ति गादिव्यक्तिभेदे प्रमाणाभावेन गत्वादिजातिविषयकल्पनायां प्रमाणाभावात् ॥ ५८ ॥

यदि कहो कि, यह प्रत्यभिज्ञान गत्वादि जातिविषयक नहीं । इसका कारण यह है जो, प्रतिपुरुषमेंही उन सबकी भेद उपलब्धि होती है । सो नहीं होनेसे सोमशर्म्मा अध्ययन करताहै, ऐसा विभाग नहीं होता । इसका उत्तर यह है जो यह बातभी किसी प्रकार शोभा नहीं पाती । क्योंकि, गादि व्यक्तिभेदसे प्रमाण नही । गत्वादि जातिविषय कल्पनामेंभी प्रमाणाभाव लक्षित होता है ॥ ५८ ॥

यथा गत्वमजानत एकमेव भिन्नदेशपरिमाणसंस्थानव्यक्त्युपधानवशात् भिन्नदेशमिवाल्पमिवमहदिव दीर्घमिव वामनमिव प्रथते तथा गव्यक्तिमजानत एकापि व्यञ्जकभेदात् तत्तद्धर्मानुबन्धिनी प्रतिभासते । एतेन विरुद्धधर्माध्यासात् भेदप्रतिभास इति प्रत्युक्तम् ॥ ५९ ॥

जैसे, गत्व न जाननेसे, एक पदार्थकोही भिन्न देश, परिमाण, संस्थान, व्यक्ति और नवशात् भिन्नदेशकी नाई, अल्पकी नाई महत्की नाई, दीर्घकी नाई, वामनकी नाई बोध होता है, उसी प्रकार जैसे व्यक्ति अवगत न होनेसभी, एककोभी व्यञ्जकभेदसे उस२ धर्म्मका अनुबन्धी करके प्रतीति होती है । विरुद्धधर्म्मके अध्यासवशतः जो भेद भान होता है, उल्लिखित सिद्धान्तद्वारा वह दूर हुआ ॥ ५९ ॥

तत्र किं स्वाभाविको विरुद्धधर्माध्यासो भेदसमधिकत्वेनाभिमतः प्रातीतिको वा । प्रथमे असिद्धिः अपरथा स्वाभाविकभेदाभ्युपगमादशगकारानुदचारयच्चैत्र इति प्रतिपत्तिः स्यान्न तु दशकृत्वो गकार इति । द्वितीये तु न स्वाभाविकभेदसिद्धिः ।

न हि परोपाधिभेदेन स्वाभाविकमैक्यं विहन्यते। मा भून्नभसोऽपि कुम्भाद्युपाधिभेदात् स्वाभाविको भेदस्तत्र व्यावृतव्यवहारो नादनिदानः ॥ ६० ॥

इससमय पूछा जासकता है कि, भेदसाधन हेतु कहकर अभिमत विरुद्धधर्म्मका अध्यास या स्वभावसिद्ध, या प्रातीतिक अर्थात् प्रातीतिबलसेही उपलब्ध होता है ? इसका उत्तर यह है जो प्रथम अर्थात् स्वाभाविकभेद नही स्वाभाविक भेद स्वीकार करनेसे, चैत्रने दश गकार उच्चारण किया, इसप्रकार प्रतिपन्न होताहै, दशवार गकार उच्चारण किया, ऐसा प्रतिपन्न नही होता । द्वितीयपक्ष अर्थात् प्रातीतिक कहनेसे, स्वाभाविक भेदसिद्धिका असद्भाव हो उठता है क्योंकि, दूसरेकी उपाधिभेदद्वारा स्वाभाविक एकताकी कभी हानि नहीं हो सकती । कुम्भादिरूप उपाधिभेदसे आकाशका स्वाभाविक भेद सम्भव नही ॥ ६० ॥

तदुक्तमाचार्यैः—

प्रयोजनन्तु यज्जातेस्तद्वर्णादेव लभ्यते ।
व्यक्तिलभ्यन्तु नादेभ्य इति गत्वादिधीर्वृथेति ॥ ६१ ॥

आचार्य्योंने कहा है कि, जातिका जो प्रयोजन है, वह वर्णद्वाराही लभ्य होता है, और नादद्वाराही व्यक्तिलभ्यत्व सिद्ध होता है, इसकारण गत्वादि बुद्धि वृथा होती है ॥ ६१ ॥

या च—प्रत्यभिज्ञा यदा शब्दे जागर्त्ति निरवग्रहा ।
अनित्यत्वानुमानानि सैव सर्वाणि बाधते ॥ ६२ ॥

पुनः कहा है, प्रत्यभिज्ञा सर्व्वदा शब्दमे अव्याघात जागरूक रहती है । उसके द्वाराही सब अनित्यानुमान व्याहत होताहै ॥ ६२ ॥

एतेनेदमपास्तम् । यदवादि वागीश्वरेण मानमनोहरे अनित्यः शब्दः इन्द्रियविशेषगुणत्वाच्चक्षूरूपवदिति । शब्दद्रव्यत्ववादिनां प्रत्यक्षसिद्धेः ध्वन्यंशे सिद्धसाधनत्वाच्च अश्रावणत्वोपाधिबाधितत्वाच्च ॥ ६३ ॥

मानमनोहरमे वागीश्वरने जो कहाहै, इन्द्रियविशेषका गुण कहकर, शब्द, चक्षुरूपकी नाई अनित्य. इसकेद्वारा वह खण्डित हुआ ॥ ६३ ॥

उदयनस्तु आश्रयाप्रत्यक्षत्वेऽप्यभावस्य प्रत्यक्षतां महता प्रबन्धेन प्रतिपादयन् निवृत्तः कोलाहलः उत्पन्नः शब्द इति व्यवहाराचरणे कारणं प्रत्यक्षं शब्दानित्यत्वे प्रमाणयति स्म ॥ ६४ ॥

उदयनाचार्य्यने प्रतिपादन किया है आश्रय अप्रत्यक्ष होनेपरभी अभाव प्रत्यक्ष होता है। जैसे कोलाहल निवृत्त होनेपर शब्द उत्पन्न होता है। इसप्रकार व्यवहाराचरणसे प्रत्यक्षको शब्दके अनित्यत्वमें उसने सप्रमाणित किया है ॥ ६४ ॥

सोऽपि विरुद्धधर्मसंसर्गस्य औपाधिकत्वोपपादनन्यायेन दत्तरक्तबलिनेव तालः समापोहि। नित्यत्वे सर्वदोपलब्ध्यानुपलब्धिप्रसङ्गो योन्यायभूषणकारोक्तः सोऽपि ध्वनिसंस्कृतस्योपलम्भाभ्युपगमात् प्रतिक्षिप्तः ॥ ६५ ॥

रुधिर बलिप्रदान करनेपर, ताल अर्थात् पिशाचविशेष जिसप्रकार निरस्त होता है। वहभी उसीप्रकार विरुद्धधर्म्मसंसर्गका औपाधिकत्व सम्पादन न्यायानुसार खण्डित होता है। न्यायभूषणकारने कहा है, नित्यत्व अवस्थामें सदा उपलब्धि और अनुपलब्धिकी प्रसक्ति होती है। यह मतवादभी ध्वनिसंस्कृतके उपलब्धि स्वीकारद्वारा प्रतिक्षिप्त होता है ॥ ६५ ॥

यत्तु युगपदिन्द्रियसम्बन्धित्वेन प्रतिनियतसंस्कारकसंस्कार्य्यभावानुमानं तदात्मन्यनैकान्तिकमसति कलकले ततश्च वेदस्यापौरुषेयतया निरस्तसमस्तशंकाकलंकांकुरत्वेन स्वतः सिद्धं धर्मे प्रामाण्यमिति सुस्थितम्।

स्यादेतत्—

प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः।
प्रथमं परतः प्राहुः, प्रामाण्यं वेदवादिनः ॥ ६६ ॥

युगपत् इन्द्रिय सम्बन्धित्वसे प्रतिनियत जो संस्कारक और संस्कारभावका अनुमान होता है वह कोलाहलके असद्भावसे आत्मामें ऐकान्तिकता प्राप्त नहीं होती। इसकारणसे वेदकी अपौरुषेयताद्वारा सब शङ्कारूप कलंकका अंकुर निरस्त होनेसे, धर्म्म जो स्वतः सिद्धप्रमाण्य विशिष्ट सो स्थिर हुआ। अच्छा, यह मानागया, किन्तु सांख्यवादिगण प्रमाणत्व और अप्रमाणत्व आश्रय करते हैं। वेदवादिगण प्रथम और परत प्रामाण्य निर्देश करते हैं ॥ ६६ ॥

नैयायिकास्ते परतः सौगताश्चरमं स्वतः।
प्रमाणत्वं स्वतः प्राहुः परतश्चाप्रमाणतामिति ॥ ६७ ॥

नैयायिकलोग परतः प्रमाण मानते हैं। सौगत लोग स्वतः चरम प्रामाण्य निर्देश करते हैं ॥ ६७ ॥

वादिविवाददर्शनात् कथङ्कारं स्वतःसिद्धं धर्मप्रामाण्यमिति सिद्ध-वत्त्वस्य स्वीक्रियते । किञ्च किमिदं स्वतः प्रामाण्यं नाम ? किं स्वत एव प्रामाण्यस्य जन्म ? आहोस्वित् स्वाश्रयज्ञानजन्य-त्वम् ? किमुत स्वाश्रयज्ञानसामग्रीजन्यत्वम् ? उताहो ज्ञान-सामग्रीजन्यज्ञानविशेषाश्रितत्वम् ? किंवा ज्ञानसामग्रीमात्र जन्यज्ञानविशेषाश्रितत्वम् ? तत्राद्यः सावद्यः कार्य्यकारणभाव-स्य भेदसमानाधिकरणत्वेनैकास्मिन्नसम्भवात्, नापि द्वितीयः गुणस्य सतो ज्ञानस्य प्रामाण्यं प्रति समवायिकारणतया द्रव्य-त्वापातात्, नापि तृतीयः प्रामाण्यस्योपाधित्वे जातित्वे वा जन्मायोगात्, स्मृतित्वानाधिकरणस्य ज्ञानस्य बाधात्यन्ता-भावः प्रामाण्योपाधिः, न च तस्योत्पत्तिसम्भवः अत्यन्ताभाव-स्य नित्यत्वाभ्युपगमादतएव न जातेरपि जनिर्युज्यते, नापि चतुर्थः ज्ञानविशेषो ह्यप्रमा विशेषसामग्र्याञ्च सामान्यसामग्री अनुप्रविशति शिंशपासामग्र्यामिव वृक्षसामग्री अपरथा तस्याक-स्मिकत्वं प्रसज्येत् । तस्मात् परतस्त्वेन स्वीकृताप्रामाण्यं विज्ञानसामग्रीजन्याश्रितमित्यतिव्याप्तिरापद्येत ॥ ६८ ॥

इसप्रकार वादिगणका विवाद देखनेसे किसप्रकार स्वतः सिद्ध धर्म्मप्रामाण्य सिद्धवत् कर माना जासकता है ? और स्वतः प्रामाण्यका अर्थ क्या है ? स्वतःही क्या प्रामाण्यका जन्म होता है ? या स्वाश्रयज्ञान उसका जन्म होता है ? किम्वा स्वाश्रयज्ञान सामग्रीही उसका जन्म स्थान है । अथवा ज्ञानसामग्रीके लिये ज्ञानविशेषही उसका आश्रयस्थान ? किम्वा ज्ञानसामग्री मात्रके लिये ज्ञानविशेषका वह प्रतिष्ठित है । उनमें पहिला पक्ष स्वीकार करनेपर दूषण उत्पन्न होता है । क्योंकि कार्य्यकारणभावका भेद समानाधिकरणत्वसे एकमें उसका सम्भव नहीं हो सकता । द्वितीयपक्षभी माना नहीं जासकता । इसका कारण यह ज्ञानका प्रामाण्य प्रति समवायिकारणतावशात् गुणका द्रव्यत्व संघटित होताहै । तृतीयपक्षभी अवलम्बनीय नहीं होसकता। क्तिबस्तु, प्रामाण्यका उपाधित्व अथवा जातित्व किसीपक्षमें जन्मसंयोग नहीं है किसपक्षभी स्वीकार नहीं किया जाता जिसकारण प्रामाण्यका उपाधित्व अथवा जातित्व किसीपक्षमें जन्मसंयोग नहीं, स्मृतित्वका अधिकरणज्ञानका बाधात्यन्ताभावकोही प्रामाण्योपाधि

कहतेहैं। उसकी उत्पत्तिसम्भव नहीं, क्योंकि. अत्यन्ताभावका नित्यत्व स्वीकृत होताहै। इसलिये जातिकाभी जनि और जन्म कभी सङ्गत नहीं होसकता । चतुर्थपक्षभी निर्दोष नहीं है क्यों कि, शिंशपा सामग्रीमें वृक्षसामग्रीकी नाईं, विशेषसामग्रीमे सामान्य सामग्री अनुप्रविष्ट होती है । अन्यथा, उसका आकस्मिकत्व दोष होता है। अतएव परतः प्रमाण स्वीकार करनेसे, वह विज्ञानसामग्री जन्याश्रित हो उठता है उसमें अतिव्याप्ति दोष आता है ॥ ६८॥

पञ्चमविकल्पं विकल्पयामः, किं दोषाभावसहकृतज्ञानसामग्री-जन्यत्वमेव ज्ञानसामग्रीमात्रजन्यत्वं, किं दोषाभावासहकृतज्ञा-नसामग्रीजन्यत्वम् । नाद्यः दोषाभावासहकृतज्ञानसामग्रीजन्य-त्वमेव परतः प्रामाण्यमिति परतः प्रामाण्यवादिभिरुररीकरणात्। नापि द्वितीयः दोषाभावसहकृतत्वेन सामग्र्यां सहकृतत्वे सिद्धे अनन्यथा सिद्धान्वयव्यतिरेकसिद्धतया दोषाभावस्य कारण-ताया वज्रलेपायमानत्वात् । अभावः कारणमेव न भवतीति चेत्तदा वक्तव्यम् अभावस्य कार्य्यत्वमस्ति न वा, यदि नास्ति तदा पटप्रध्वंसानुपपत्त्या नित्यताप्रसङ्गः, अथास्ति किमपराद्धं कारणत्वेनेति सेयमुभयतः पाशा रज्जुः ॥ ६९ ॥

अधुना, पञ्चम विकल्पकी विकल्पना कियी जाती है । दोषाभाव सहकृत ज्ञानसामग्री जन्यत्वकोही या ज्ञानसामग्रीमात्र जन्यत्व कहते हैं; अथवा क्या दोषाभावसहकृत ज्ञानसामग्री जन्यत्व निर्देश करता है ? प्रथमपक्ष नहीं माना जासकता । क्योंकि, परतः प्रामाण्य वादी लोग स्वीकार करते हैं, दोषाभावसहकृत ज्ञानसामग्री जन्यत्वही परतःप्रामाण्य द्वितीयपक्षभी नहीं माना जासकता।इसका कारण यह है जो,दोषाभाव सहकृतत्त्वद्वारा सामग्रीमें सहकृतत्व सिद्ध होने-से,अन्यथा सिद्ध अन्वय और व्यतिरेककी सिद्धि सम्पन्न होती है।तन्निबन्धन दोषाभाव की कारणता साक्षात् वज्रलेप हो उठती है । सुतरां, अभाव कारण नहीं हो सकता । यदि इस प्रकार होता है, तो ऐसा कहा जासकता है, अभावका कार्य्यत्व है अथवा कार्य्यत्व नहीं । यदि कार्य्यत्व नहीं है, तो पट प्रध्वंसकी अनुपपत्तिद्वारा नित्यता दोष होता है । और यदि कार्य्यत्व है, तो कारणत्वने क्या अपराध किया ! इसप्रकार यह उभयतः पाशा रज्जु होता है ॥ ६९ ॥

तदुदितमुदयनेन–

भावो यथा तथाभावः कारणं कार्य्यवन्मतमिति ॥ ७० ॥

उदयनने भी कहा है कि, भाव, अभावकी नाईं एवं करण, कार्य्यकी नाईं, परिगणित होता है ॥ ७० ॥

तथाच प्रयोगः विमता प्रमा ज्ञानहेत्वतिरिक्तहेत्वधीना कार्य्यत्वे सति तद्विशेषत्वात् अप्रमावत् प्रामाण्यं परतो ज्ञायते अनभ्यासदशायां सांशयिकत्वात् अप्रामाण्यवत् । तस्मादुत्पत्तौ ज्ञप्तौ च परतस्त्वे प्रमाणसम्भवात् स्वतः सिद्धं प्रामाण्यमित्येतत् पूतिकुष्माण्डायत इति चेत् तदेतदाकाशमुष्टिहननायते ॥ ७१ ॥

और प्रयोग जैसे, विमता प्रमा ज्ञानहेतुके अतिरिक्त हेतुके अधीन है । कार्य्यत्व अवस्थामें तद्विशेषत्ववशात् अप्रमाकी नाईं, प्रतीत होता है । इसकारण उत्पत्ति और ज्ञप्ति दोनों अवस्थामें परतस्त्व विषयमें प्रमाणसम्भव प्रयुक्त, प्रामाण्य स्वतः सिद्ध होता है । यह बात पूतिकुष्माण्डके तुल्य किसी कामकी नहीं ॥ ७१ ॥

विज्ञानसामग्रीजन्यत्वे सति तदतिरिक्तहेत्वजन्यत्वं प्रमायाः स्वतस्त्वमिति निरुक्तिसम्भवात् । अस्ति चात्रानुमानं विमता प्रमा विज्ञानसामग्रीजन्यत्वे सति तदतिरिक्तजन्या न भवति अप्रमात्वानधिकरणत्वात् घटादिवत् न चौदयनमनुमानं परतस्त्वसाधकमिति शङ्कनीयं प्रमा दोषव्यतिरिक्तज्ञानहेत्वतिरिक्तजन्या न भवति ज्ञानत्वादप्रमावदिति प्रतिसाधनग्रहग्रस्तत्वात् ज्ञानसामग्रीमात्रादेव प्रमोत्पत्तिसंभवे तदतिरिक्तस्य गुणस्य दोषभावस्य वा कारणत्वकल्पनायां कल्पनागौरवप्रसङ्गाच्च ॥ ७२ ॥

विज्ञानसामग्रीजन्यत्व अवस्थामें उसके अतिरिक्त हेतुसे अजन्यत्व प्रमाका स्वतस्त्व, इस प्रकार निरुक्तिसम्भववशात्, ऐसा कहा जाताहै, इसमें इसप्रकार अनुमान किया जासकता है, विमता प्रमा विज्ञानसामग्री जन्यत्वअवस्थामें उसके अतिरिक्त जन्य नहीं होसकती है । क्योंकि, घटादिकी नाईं इसमें अप्रमात्वका अधिकार नहीं और उदयनाचार्यका अनुमान परतस्त्व साधक, इसप्रकार आशङ्का नहीं कियी जासकती । प्रमा कभी दोष व्यतिरिक्त ज्ञानहेतुके अतिरिक्त जन्य नहीं ज्ञानसामग्रीमात्रसे प्रमाकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे, उसके अतिरिक्त गुणका अथवा दोषाभावकी कल्पनामें कल्पना गौरवकी प्रसक्ति होती है ॥ ७२ ॥

ननु दोषस्याप्रमाहेतुत्वेन तदभावस्य प्रमां प्रति हेतुत्वं दुर्निवारमिति चेत्र न दोषाभावस्याप्रमाप्रतिबन्धकत्वेनान्यथा सिद्धत्वात् ॥ ७३ ॥

यदि कहोकि. दोष अप्रमाका हेतु है । ऐसा जानकर, उसका अभाव प्रमाके प्रतिकारण होता है । यह कारणत्व सर्वथा दुर्निवार है । इसका उत्तर यह है जो, अप्रमाका प्रतिबन्धकत्वसे दोषाभावका अन्यथासिद्धत्व सम्भावना नहीं ॥ ७३ ॥

तस्माद् गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावतः ।
अप्रामाण्यद्वयासत्त्वं तेनोत्सर्गो नयोदित इति ॥
तथा प्रमाज्ञप्तिरपि ज्ञानज्ञापकसामग्रीत एव जायते ।
न च संशयानुदयप्रसङ्गो बाधक इति युक्तं वक्तुं सत्यपि प्रतिभासपुष्कलकारणे प्रतिबन्धकदोषादिसमवधानात् तदुपपत्तेः ॥ ७४ ॥

प्रमाज्ञप्तिभी ज्ञानज्ञापक सामग्रीहीसे उत्पन्न होती है संशयका अनुदयप्रसंग बाधक होता है, ऐसा वाक्य युक्तियुक्त नहीं । क्योंकि, स्पष्टप्रतीयमान कारण सत्वमेंभी, प्रतिबन्धक दोषादिके समवधानवशतः उसकी उपपत्ति नहीं होती ॥ ७४ ॥

किञ्च तावकमनुमानं स्वतः प्रमाणं न वा । आद्ये अनैकान्तिकता, द्वितीये तस्यापि परतः प्रामाण्यमेवं तस्य तस्यापीत्यनवस्था दुरवस्था स्यात् ॥ ७५ ॥

पुनः, तुम्हारा अनुमान स्वतः प्रमाण होसकता है या नहीं । स्वतः प्रमाण होनेसे अनेकान्तिकता दोष आताहै । और स्वतः प्रमाण न होनेसे उसके परेभी प्रामाण्यहै । इसप्रकार उसके परे और उसके परेभी प्रामाण्य लक्षित होता है ऐसा होनेहीसे अनवस्था दुरवस्था संघटित होती है ॥ ७५ ॥

यदत्र कुसुमाञ्जलावुदयनेन झटिति प्रचुरप्रवृत्तेः प्रामाण्यनिश्चयाधीनत्वाभावमापादयता प्रण्यगादि । प्रवृत्तिर्हीच्छामपेक्षते तत्प्राचुर्ये चेच्छाप्राचुर्यम्, इच्छा चेष्टसाधनताज्ञानं, तच्चेष्टजातीयत्वलिंगानुभवं, सोऽपीन्द्रियार्थसन्निकर्षं प्रामाण्यग्रहन्तु न क्वचिदुपयुज्यत इति तदपि तस्करस्य पुरस्तात् कक्षे सुवर्णमुष्टेस्य सर्वाङ्गोद्घाटनमिव प्रतिभाति । अतः समीहितसाधनज्ञानमेव प्रमाणतयावगम्यमानमिच्छां जनयतीत्यत्रैव स्फुट एव प्रामाण्यग्रहणस्योपयोगः ॥ ७६ ॥

कुसुमाञ्जलिमें उदयनाचार्य्यने झटिति प्रचुरप्रवृत्तिके प्रामाण्य निश्चयाधीनताका अभाव आपादन करते हुए कहा है, प्रवृत्ति इच्छाकी प्रतीक्षा करती है । उसके प्राचुर्य्यमें इच्छाका प्राचुर्य्य है । इच्छा फिर इष्टसाधनताज्ञानके आधीन है । इष्टसाधनताज्ञान और इष्टजातीयत्व लिंगानुभवसापेक्ष । वह लिंगानुभव फिर इन्द्रियार्थ सन्निकर्षकी अपेक्षा करता है प्रामाण्य ग्रहणकी कहीभी उपयोगिता नहीं । उदयनाचार्य्यका यह मतवाद चोरके सामने सुवर्णलेकर शर्वाङ्गादि उद्घाटनकी नाईं प्रतीत होता है अतएव समीहित ज्ञानसाधनही प्रमाणताद्वारा अवगम्यमान होकर, इच्छा समुत्पादन करता है, यही इसस्थानमें स्पष्टतः प्रामाण्यग्रहणकी उपयोगिता रूपसे लक्षित होती है ॥ ७६ ॥

किञ्च क्वचिदपि चेन्निर्विचिकित्सा प्रवृत्तिः संशयादुपपद्येत तर्हि सर्वत्र तथाभावसम्भवात् प्रामाण्यनिश्चयो निरर्थकः स्यात् अनिश्चितस्य सत्त्वमेव दुर्लभमिति प्रामाण्यं दत्तजलाञ्जलिकं भवेत्। इत्यलमतिप्रपञ्चेन ॥ ७७ ॥

किञ्च, कहीं भी यदि निर्विचिकित्सा प्रवृत्तिसंशयसे उत्पन्न होती है । ऐसा होनेसे सर्वत्र उसीप्रकार सम्भावित होजानेसे, प्रामाण्यनिश्चय निरर्थक होता है । अनिश्चितका सत्त्व सर्व्वथा दुर्लभ है । ऐसा होनेसे, प्रामाण्य दत्त जलाञ्जलिक होजाता है । बहुत विस्तारसे और प्रयोजन नहीं ॥ ७७ ॥

यस्मादुक्तं—

तस्मात् सद्बोधकत्वेन प्राप्ता बुद्धेः प्रमाणता ।
अर्थान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानादपोद्यत इति ॥ ७८ ॥

जिस कारण कहा है, उसी कारण सद्बोधकतावशात् बुद्धिकी प्रमाणता प्राप्ति होती है ॥ ७८ ॥

तस्माद्धर्मे स्वतःसिद्धप्रमाणाभावे ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादिविध्यर्थवादमन्त्रनामधेयात्मके वेदे यजेतेत्यत्र तप्रत्ययः प्रकृत्यर्थोपरक्तां भावनामभिधत्त इति सिद्धे व्युत्पत्तिमभ्युपगच्छतामभिहितान्वयवादिनां भट्टाचार्य्याणां सिद्धान्तो यागविषयो नियोग इति कार्य्ये व्युत्पत्तिमनुसरतामन्विताभिधानवादिनां प्रभाकरगुरूणां सिद्धान्त इति सर्वमवदातम् ॥ ७९ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे जैमिनीयदर्शनं समाप्तम् ॥ ८० ॥

अतएव, धर्म्म स्वतः सिद्ध प्रमाणाभाव होजानेसे, स्वर्ग काम व्यक्ति ज्योतिष्टोमद्वारा यजन करे, इत्यादि विध्यर्थवाद—मन्त्रनामधेयात्मक वेदमें, यजेत (अर्थात् यजन करे) इत्यादि स्थलमें प्रत्यय किया है, उसके द्वारा प्रकृत्यर्थ संयुक्त भावना अभिहित होता है । यह सिद्ध होनेसे, जो लोग व्युत्पत्ति स्वीकार करते हैं, उसप्रकार अभिहितान्वयवादी भट्टाचार्य्योंका सिद्धान्त इत्यादि । कार्य्यमें यागविषय नियोग व्युत्पत्तिका अनुसारी अन्विताभिधानवादी प्रभाकरगुरुगणका सिद्धान्त, यह विषय सर्व्वथा अवदात है ॥ ७९ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे जैमिनीयदर्शन समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

अथ पाणिनिदर्शनम् ॥ १३ ॥

नन्वयं प्रकृतिभागः अयं प्रत्ययभाग इति प्रकृतिप्रत्ययविभागः कथमवगम्यत इति चेत् पीतपातञ्जलजलानामेतच्चोद्यं चमत्कारं न करोति व्याकरणशास्त्रस्य प्रकृतिप्रत्ययविभागपरतायाः प्रसिद्धत्वात् । तथाहि पतञ्जलेर्भगवतो महाभाष्यकारस्य इदमादिमं वाक्यं अथ शब्दानुशासनमिति ॥ १ ॥

यदि कहो कि यह प्रकृतिभाग, और यह प्रत्ययभाग इसप्रकार प्रकृति प्रत्यय विभाग किसप्रकार जाना जासकता है ? इसका उत्तर यह है कि जिनने पातञ्जलजलपान किया है, उनके पक्षमें इसप्रकार परिकल्पना किसीप्रकार चमत्कारकारिणी नहीं हो सकती क्योंकि, यह प्रसिद्धही है कि, एक मात्र प्रकृति प्रत्यय विभाग लेकरही व्याकरण शास्त्रकी जड़ वा भित्ति स्थापित हुई है । उसीप्रकार, महाभाष्यकार पतञ्जलिने अथशब्दानुशासनं, इसप्रकार वाक्य विन्यस्त किया है ॥ १ ॥

अस्यार्थः अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते अधिकारः प्रस्तावः प्रारम्भ इति यावत् शब्दानुशासनशब्देन च पाणिनिप्रणीतं व्याकरणशास्त्रं विवक्ष्यते । शब्दानुशासनमित्येतावत्यभिधीयमाने सन्देहः स्यात् किं शब्दानुशासनं प्रस्तूयते न वेति तथा मा प्रसाङ्क्षीदित्यथशब्दं प्रायुङ्क्त अथ शब्दप्रयोगबलेनार्थान्तरव्युदासेन प्रस्तूयते इत्यस्यार्थस्याभिधीयमानत्वात् । अनेन हि वैदिकाः शब्दाः शन्नोदेवीरभीष्टय इत्यादयः

तदुपकारिणो लौकिकाः शब्दाः गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनि-रित्यादयश्चानुशिष्यन्ते व्युत्पाद्य संस्क्रियन्ते प्रकृतिप्रत्यय-विभागवत्तया बोध्यन्त इत्यनुशासनशब्दशासनबलात् कर्मण्येषा षष्ठी विधातव्या । तथा च कर्मणि चेति समासप्रतिषेधसम्भवात् शब्दानुशासनशब्दो न प्रमाणपथमवतरतीति ॥ २ ॥

इसका अर्थ यह है जो, यहां अथशब्द अधिकारार्थ है । अर्थात् अधिकार, या नी प्रस्ताव अथवा प्रारम्भ प्रयोजित होता है, अथ शब्दसे इसप्रकार बूझ पड़ता है । शब्दानु-शासनका अर्थ यह है जो, शब्दद्वारा पाणिनि प्रणीत व्याकरणशास्त्र विवक्षित हुआ है । शब्दानुशासन ऐसा कहनेसे सन्देह हो सकता है, शब्दानुशासनही क्या साक्षात् सम्बन्धमें प्रान्वित होता है, अथवा, नहीं क्योंकि, अथशब्दके प्रयोगबलसे अर्थान्तर व्युदस्त करके, प्रस्तावित होता है, इसप्रकार अर्थ अभिधीयमान होता है, इसके द्वारा, शन्नोदेवी रभीष्टय इत्यादि वैदिक शब्द समुदाय एवं तदुपकारी लौकिक शब्द सब जिस प्रकार गौ, घोडा, पुरुष, हस्ती और शकुनि इत्यादि अनुशासित अर्थात् व्युत्पादनपूर्वक संस्कृत या नी, प्रकृति प्रत्यय विभागवत्ता सहकारसे बोधित होता है, यही अनुशासन शब्द शासनबलसे प्रतीत होता है । यहां, कर्म्ममें षष्ठी विधान करना कर्त्तव्य और, कर्म्मणि चेति, इत्यादि सूत्रानुसार समास प्रतिषेध सम्भवित होनेसे, शब्दानुशासन प्रमाणपथसे अवतरण नहीं करसकते ॥ २ ॥

अत्रायं समाधिरभिधीयते, यस्मिन् कृतप्रत्यये कर्तृकर्मणोरुभयोः प्राप्तिरस्ति तत्र कर्मण्येव षष्ठीविभक्तिर्भवति न कर्त्तरीति बहुव्री-हिविज्ञानबलान्नियम्यते ॥ ३ ॥

प्रस्तावित स्थानमें वक्ष्यमाण विधानसे समाधान किया जासकता है, जहां कृत् प्रत्यय प्रयोगमें कर्त्ताकर्म्म दोनोंहीकी प्राप्ति होती है, वहां कर्म्महीमें षष्ठी विभक्ति होती है, कर्त्तामें नहीं बहुव्रीहि विज्ञानबलसे इसप्रकार नियमित होता है ॥ ३ ॥

तद्यथा आश्चर्य्यो गवां दोहोऽशिक्षितेन गोपालकेनेति, कर्तर्य्यपि षष्ठी भवतीति केचिद् ब्रुवते । अतएवोक्तं काशिकावृत्तौ, केचिद-विशेषेणैव विभाषामिच्छन्ति शब्दानामनुशासनमाचार्य्येणा-चार्य्यस्य वेति । शब्दानामनुशासनमित्यत्र तु शब्दानामनुशा-सनं नार्थानामित्येतावतो विवक्षितस्यार्थस्याचार्य्यस्य कर्तुरु-

पादानेन विनापि सुप्रतिपादत्वादाचार्य्योपादानमकिञ्चित्करं तस्मादुभयप्राप्तेरभावादुभयप्राप्तौ कर्मणीत्येषा षष्ठी न भवति किन्तु कर्तृकर्मणोः कृतीति कृद्योगे कर्त्तरि कर्मणि च षष्ठीविभक्तिर्भवतीति कृद्योगलक्षणा षष्ठी भविष्यति । तथा चेध्मप्रव्रश्चनपलाशशातनादिवत् समासो भविष्यति अथवा शेषलक्षणेयं षष्ठी तत्र किमपि चोद्यं नावतरत्येव ॥ ४ ॥

इसका दृष्टान्त जैसे शिक्षित गोपालककर्तृक विस्मयावह दोहन इत्यादि स्थानमें कर्तामें भी षष्ठी हो जाती है; कोई कोई ऐसा कहते हैं । इसीकारण, काशिकावृत्तिमें कहा है कि कोई कोई किसीप्रकार विशेष न करके विभाषाकी कामना करते हैं । शब्दानामनुशासनमाचार्य्येणाचार्यस्य वा इत्यादि स्थानमें शब्द सबका अनुशासन, इसप्रकार पद जो प्रयोगित हुआ है, उसमें शब्दोंका अनुशासन; अर्थोंका नहीं, इतना अर्थ विवक्षित है । आचार्य्यकर्तृक उपादानके विना भी इसप्रकार विवक्षित अर्थ अनायासही प्रतिपादित होता है सुतरां आचार्योपादान अकिञ्चित्कर हो जाता है । इसकारण दोनों प्राप्तिके अभावमें दोनों प्राप्ति होनेसे, कर्म्मणि, इत्यादि सूत्रानुसार षष्ठी विभक्ति सम्भावित नहीं । इसप्रकार इध्मप्रव्रश्चन और पलाशशातन इत्यादि तुल्य समास होगा । अथवा यह शेष लक्षणा षष्ठी उस विषयमें किसीप्रकारकी परिकल्पनाका अवसरही नहीं ॥ ४ ॥

यद्येवं तर्हि शेषलक्षणायाः षष्ठ्याः सर्वत्र सुवचत्वात् षष्ठीसमासप्रतिषेधसूत्राणामानर्थक्यं प्राप्नुयादिति चेत् सत्यं तेषां स्वरचिन्तायामुपयोगो वाक्यपदीये प्रादर्शि ॥ ५ ॥

यदि इसीप्रकार होता है तो शेष लक्षण षष्ठी सर्वत्र प्रयोजित होनेसे, षष्ठीसमास प्रतिषेध सूत्र सबका आनर्थक्य उपस्थित होता है । यह सत्य तो है, किन्तु स्वरचिन्ताप्रसंगमें वाक्य पदीयमें उनका उपयोग प्रदर्शित हुआ है ॥ ५ ॥

तदाह महोपाध्यायवर्द्धमानः—

लौकिकव्यवहारेषु यथेष्टं चेष्टतां जनः ।
वैदिकेषु तु मार्गेषु विशेषोक्तिः प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

इसीप्रकार महामहोपाध्याय वर्द्धमानने कहा है,—लोकमें लौकिक व्यवहार प्रसंगमें इच्छानुसार चेष्टा करसकता है, किन्तु वैदिकमार्गमें विशेषोक्ति प्रवर्तित होती है ॥ ६ ॥

इति पाणिनिसूत्राणामर्थमत्राभ्यधाद् यतः ।
जनिकर्तुरिति ब्रूते तत्प्रयोजक इत्यपीति ॥ ७ ॥

जिसकारण इसीप्रकार पाणिनिसूत्रोंका अर्थ कहा गया है ॥ ७ ॥

तथाच शब्दानुशासनापरनामधेयं व्याकरणशास्त्रमारब्धं वेदितव्यमिति वाक्यार्थः सम्पद्यते ॥ ८ ॥

और जिसका अपर नाम शब्दानुशासन है वही व्याकरणशास्त्र आरब्ध हुआ है, जानना चाहिये । ऐसा वाक्यार्थ प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

तस्यार्थस्य झटिति प्रतिपत्तये अथ व्याकरणमित्येवाभिधीयताम् । अथ शब्दानुशासनमित्यधिकाक्षरं सुधाभिधीयत इति नैवं शब्दानुशासनमित्यन्वर्थसमाख्योपादाने तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकप्रयोजनाख्यानसिद्धेः, अन्यथा प्रयोजनानभिधाने व्याकरणाध्ययने अध्येतॄणां प्रवृत्तिरेव न प्रसज्येत् ॥ ९ ॥

यदि कहो उस अर्थका झटिति प्रतिपादनार्थ, अथ व्याकरण, इसप्रकार निर्देश करो, अथ शब्दानुशासन इत्यादि अधिकाक्षर वृथा निर्देश क्यों करते हो ? इसका उत्तर यह है जो, ऐसा नहीं कह सकते हो क्योंकि, शब्दानुशासन, ऐसा कहनेसे, अन्वर्थ समाख्याके उपपादनद्वारा उसका वेदांगत्व प्रतिपादक प्रयोजनाख्यान सिद्ध होता है । अन्यथा प्रयोजनके अनभिधानसे व्याकरण अध्ययनमें अध्येतृगणकी प्रवृत्तिकी प्रसक्ति होनी सम्भव नहीं ॥ ९ ॥

ननु निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येतव्य इति अध्येतव्यविधानादेव प्रवृत्तिः सेत्स्यतीति चेन्नैवं तथा विधानेऽपि तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकप्रयोजनानभिधाने तेषां प्रवृत्तेरनुपपत्तेः ।

तथाहि—

वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धाः लोकाच्च लौकिकाः ॥ ११ ॥

वेदोंसेही हमारे वैदिक शब्द सब सिद्ध हुए हैं । उसीप्रकार, लोकसेही लौकिक शब्द समूह सिद्ध हुए हैं ॥ ११ ॥

तस्मादनर्थकं व्याकरणमिति तस्माद्वेदांगत्वं मन्यमानास्तदध्ययने प्रवृत्तिमकार्षुः । ततश्चेदानीन्तनानामपि तत्र प्रवृत्तिर्न सिध्येत् । सा मा प्रसांक्षीदिति तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकं प्रयोजनमन्वाख्येयमेव ॥ १२ ॥

ऐसा होनेपर व्याकरण अनर्थक हुआ जाता है । इसकारण, वेदांगत्व जानकर, उसके अध्ययनमें प्रवृत्ति कर सकते । तो इदानी जनलोगोंका उसमें प्रवृत्ति होना सम्भव नहीं । इसकारण, उसका वेदांगत्व प्रतिपादक प्रयोजन अन्वाख्यान करना कर्तव्य है ॥ १२ ॥

यद्यन्वाख्यातेऽपि प्रयोजने न प्रवर्त्तेरन् तर्हि लौकिकशब्दसंस्कारज्ञानरहितास्ते यज्ञे कर्मणि प्रत्यवायभाजो भवेयुः । धर्माद्धीयेरन् अतएव याज्ञिकाः पठन्ति, आहिताग्निरपशब्दं प्रयुज्य प्रायश्चित्तीयां सारस्वतीमिष्टिं निर्वपेदिति, अतस्तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकप्रयोजनान्वाख्यानार्थमथशब्दानुशासनमित्येव कथ्यते नाथव्याकरणमिति ॥ १३ ॥

प्रयोजन अन्वाख्यात होनेसे भी, यदि प्रवृत्ति न हो, जो, लौकिक शब्द संस्कार ज्ञान तिरोहित होजानेसे वे यज्ञकार्यमें प्रत्यवायभागी होना है । एवं धर्म्महीन होजाता है । इसकारण याज्ञिक लोग कहा करते हैं कि, आहिताग्नि ब्राह्मण अपशब्द प्रयोगकर, प्रायश्चित्त स्वरूप सारस्वती नामक इष्टि निर्व्वपण करें । इसीकारण उसका वेदाङ्गत्व प्रतिपादक प्रयोजनका अन्वाख्यानार्थ है । अथ शब्दानुशासन, इसप्रकार कहा गया है. अथ व्याकरण; इसप्रकार कहा नहीं जाता ॥ १३ ॥

भवति च व्याकरणशास्त्रस्य प्रयोजनं (तस्य तदुद्देशेन प्रवृत्तेः प्रयोजनं) यथास्वर्गोद्देशेन प्रवृत्तस्य यागस्य स्वर्गः प्रयोजनं तस्मात् शब्दानुशिष्टिः संस्कारपदवेदनीया शब्दानुशासनस्य प्रयोजनम् । नन्वेवमप्यभिमतं प्रयोजनं न लभ्यते तदुपायाभावात् । अथ प्रतिपदपाठ एवाभ्युपाय इति मन्येथाः तर्हि

स ह्यनभ्युपायः शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठो भवेत् । शब्दापशब्दभेदेनानंत्याच्छब्दानाम्, एवं हि समाम्नायते बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदपाठविहितानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम ॥ १४ ॥

स्वर्गही जिसप्रकार स्वर्गोद्देशमें अनुष्ठित यज्ञका प्रयोजन, संस्कार पदवाच्य शब्दानुशिष्टि उसीप्रकार शब्दानुशासनका प्रयोजन है । यदि कहो कि, उपमाभाववशतः इस प्रकार अभिमत प्रयोजन लब्ध नहीं होता । और प्रतिपद पाठको भी इसप्रकार अभ्युपाय कहकर नहीं समझ सकते । तो, उन शब्दोंके प्रतिपादनविषयमें अनभ्युपाय होता है, क्योंकि, शब्द और अपशब्दभेदसे शब्दोंका आनंत्य लक्षित होता है । इसका समाम्नाय यह है जो बृहस्पतिने इन्द्रको दिव्यसहस्रवर्ष प्रतिपद पाठविहित शब्दोंका शब्दपारायण कहा था, किन्तु अन्तको प्राप्त नहीं हुए ॥ १४ ॥

बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रोऽध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालः । न च पारावातिरभूत् । किमुताद्य यश्चिरं जीवति सोऽब्दशतम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार बृहस्पति प्रवक्ता, इन्द्र अध्ययन कर्त्ता, दिव्यसहस्रवर्ष अध्ययन काल इसमें भी पार नहीं पाया तो अधुनातन समयमें जो व्यक्ति दीर्घजीवी होता है, वह सौवर्ष, उसकी बात और क्या कहूं ॥ १५ ॥

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैश्चतुर्भिरुपायैर्विद्योपयुक्ता भवति । तत्राध्ययनकालेनैव सर्वमायुरुपयुक्तं स्यात्तस्मादनभ्युपायः शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठ इति प्रयोजनं न सिध्येदिति ॥ १६ ॥

अध्ययन, बोध, आचरण और प्रचारण इन चारप्रकारके उपायोंसे विद्या उपयुक्त होती है । उनमें अध्ययन समयद्वारा यदि सम्पूर्ण आयु उपयुक्त हो तो शब्दोंके प्रतिपादन विषयमें प्रतिपद पाठ अनभ्युपाय होता है । इसप्रकार प्रयोजनसिद्धि पराहत होती है ॥ १६ ॥

इति चेन्मैवं शब्दप्रतिपत्तेः प्रतिपदपाठसाध्यत्वानंगीकारात् । प्रकृत्यादिविभागकल्पनवत्सु लक्ष्येषु सामान्यविशेषरूपाणां लक्षणानां पर्जन्यवत्सकृदेव प्रवृत्तौ बहूनां शब्दानामनुशासनोपलम्भात् । तथाहि कर्मणीत्येकेन समान्यरूपेण लक्षणेन कर्मोपपदाद्धातुमात्रादण्प्रत्यये कृते कुम्भकारः काण्डलाव इत्यादीनां बहूनां शब्दानामनुशासनमुपलभ्यते । एवमातोऽनुपसर्गे इति

पदपाठस्याशक्यत्वप्रतिपादनपरोऽर्थवादः । नन्वन्येष्वप्यङ्गेषु सत्सु किमित्येतदेवाद्रियते । उच्यते प्रधानञ्च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम् । प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति ॥ १७ ॥

ऐसा नहीं कह सकते । क्यों कि, शब्दोंकी प्रतिपत्ति प्रतिपद पाठ साध्यकरके नहीं स्वीकृत होती है । विशेषतः प्रकृत्यादि विभाग कल्पनायुक्त लक्ष्योंमें सामान्यविशेषरूप लक्षणोंका एकवारमात्र प्रवर्त्तनामें ही बहुशब्दका अनुशासन उपलब्ध होता है । उसीप्रकार, कर्म्मणि, इत्यादि एकमात्र सामान्यरूप लक्षणद्वाराही कर्मोपपद धातुमात्रमें अणप्रत्यय विहित होनेसे कुम्भकार काण्डलाव इत्यादि बहुत शब्दोंका अनुशासन उपलब्ध होता है । छ. अंगोमें व्याकरणही प्रधान अंग करके कहा गया है । प्रधानमें यत्न करनेसे, फललाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ १७ ॥

तदुक्तम्—

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः ।
प्रथमं छन्दसामंगमाहुर्व्याकरणं बुधा इति ॥ १८ ॥

उसीप्रकार, कहा है, पण्डितोंने व्याकरणकोही छन्दोंमें प्रथम अंगरूपसे निर्देश किया है ॥ १८ ॥

तस्मात् व्याकरणशास्त्रस्य शब्दानुशासनं भवति साक्षात् प्रयोजनं, पारम्पर्य्येण तु वेदरक्षादीनि । अतएवोक्तं भगवता भाष्यकारेण, रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनमिति । साधुशब्दप्रयोगवशादभ्युदयोऽपि भवति । तथाच कथितं कात्यायनेन, शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देनेति । अन्यैरप्युक्तम्, एकः शब्दः सम्यक्ज्ञातः सुष्टु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवतीति ॥ १९ ॥

इसीकारण, शब्दानुशासन व्याकरणशास्त्रका साक्षात प्रयोजन है और वेदरक्षादि पारम्परित प्रयोजन है । इसीकारण भगवान् भाष्यकारने कहा है, रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असन्देह आदि कतिपय प्रयोजन शब्दका वाच्य है और साधुशब्दके प्रयोगवशात अभ्युदयभी होता है । उसीप्रकार कात्यायनने कहा है; शास्त्रपूर्वक प्रयोगमें अभ्युदय संघटित होता है । वेदशब्दद्वारा भी उसके तुल्य फल होता है । अन्यान्य लोगोंनेभी कहा है, एकशब्द सम्यक् ज्ञात कर प्रयोग करनेसे स्वर्ग लोकमें कामदोहन करता है ॥ १९ ॥

यथा—

नाकमिष्टसुखं यान्ति सुयुक्तैर्बद्धवाग्रथैः ।

अथ पत्काङ्क्षिणो यान्ति ये चीकमतभाषिणः ॥ २० ॥

पुनः कहा है, सुप्रयुक्त बद्धवाक्रूप रथद्वारा इष्टसुखसम्पन्न स्वर्गमें गमन किया जाता है ॥ २० ॥

नन्वचेतनस्य शब्दस्य कथमीदृशं सामर्थ्यमुपपद्यत इति चेन्मैवं मन्येथाः महता देवेन साम्यश्रवणात् । तदाह श्रुतिः "चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आविवेश । व्याचकार च भाष्यकारः । चत्वारि शृंगाणि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपातास्त्रयो अस्य पादाः लडादिविषयाः त्रिधा भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालाः द्वे शीर्षे द्वौ नित्यानित्यात्मानौ नित्यः कार्य्यश्च व्यंगव्यञ्जकभेदात् सप्तहस्तासो अस्य तिङा सह सप्त सुब्विभक्तयः त्रिधा बद्धः त्रिषु स्थानेषु उरसि कण्ठे शिरसि च बद्धः वृषभ इति प्रसिद्धवृषभत्वेन रूपणं क्रियते वर्षणाद्वर्षणञ्च ज्ञानपूर्वकानुष्ठानेन फलप्रदत्वं रोरवीति शब्दं करोति रौतिः शब्दकर्मा इह शब्दशब्देन प्रपञ्चो विवक्षितःमहो देवो मर्त्याँ आविवेश महादेवः शब्दः मर्त्या मरणधर्माणो मनुष्यास्तानाविवेशेति महता देवेन परेण ब्रह्मणा साम्यमुक्तं स्यादिति जगन्निदानं स्फोटाख्यो निरवयवो नित्यः शब्दो ब्रह्म वेति ॥ २१ ॥

त्रिधाबद्ध क्यों, उरु, कण्ठ और मस्तक इन तीन स्थानोंमें बद्ध वृषभ अर्थात् ज्ञानपूर्वक अनुष्ठान करनेसे फल देता है । शब्द करता है, अर्थात शब्द इसका कर्म्म है यहां शब्द से प्रपञ्च विवक्षित है । इसप्रकार महान् देव क्या शब्द मर्त्य अर्थात् मरणधर्म्मशील मनुष्योंमें आविष्ट है । इसके द्वारा महादेव अर्थात् परब्रह्मके साथ समता कही गयी । इसकारण, जगत् निदान, स्फोटाख्य, निरवयव, नित्य, शब्द साक्षात ब्रह्म है ॥ २१ ॥

हरिणाभाणि ब्रह्मकाण्डे—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत इति ॥ २२ ॥

हरिने स्वयं ब्रह्मकाण्डमें कहाहै, शब्दत्त्व आनादि निधन और अक्षयरूपी ब्रह्मस्वरूप है जिससे जगत्की प्रक्रिया होती है ॥ २२ ॥

ननु नामाख्यातभेदेन पदद्वैविध्यप्रतीतेः कथं चातुर्विध्यमुक्तमिति चेन्नैवं प्रकारान्तरस्य प्रसिद्धत्वात् । तदुक्तं प्रकीर्णके ।

द्विधा कैश्चित् पदं भिन्नं चतुर्द्धा पञ्चधापि वा ।
अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिप्रत्ययादिवदिति ॥ २३ ॥

यदि कहो कि, नाम और आख्यातभेदसे दो प्रकारकी प्रतीति होती है । तो किसप्रकार चार प्रकारका कहा जासकता ? इसका उत्तर यह है जो, प्रकारान्तर प्रसिद्ध है । प्रकीर्णकमें सो कहा है जैसे, किसीकिसीने दो प्रकार, चार प्रकार, या पांच प्रकार, पदभेदसे कल्पना कियी है ॥ २३ ॥

कर्मप्रवचनीयेन वै पञ्चमेन सह पदस्य पञ्चविधत्वमिति हेलाराजो व्याख्यातवान् कर्मप्रवचनीयास्तु क्रियाविशेषोपजनितसम्बन्धावच्छेदहेतव इति सम्बन्धविशेषद्योतनद्वारेण क्रियाविशेषद्योतनादुपसर्गेष्वेवान्तर्भवतीत्यभिसन्धाय पदचातुर्विध्यं भाष्यकारेणोक्तं युक्तमिति विवेक्तव्यम् ॥ २४ ॥

हेलाराजने पांचप्रकारकी व्याख्या कियी है । भाष्यकारनेभी सो सम्बन्ध विशेष द्योतन द्वारा क्रियाविशेष द्योतनसे उपसर्गमें इसका अन्तर्भाव होता है, इसप्रकार अभिसन्धान पूर्वक पदचातुर्विध्य निर्देश किया है, वहभी युक्तियुक्त विचार करना चाहिये ॥ २४ ॥

ननु भवता स्फोटात्मा नित्यः शब्द इति निजागद्यत तन्न मृष्यामहे तत्र प्रमाणाभावादिति केचित ॥२५॥

अच्छा, आपने जो स्फोटात्मा नित्य शब्द इत्यादि वाक्यप्रयोग किया है, सो हमारे विचारमें नहीं आता । क्योंकि, उस विषयमें किसी प्रकारका प्रमाण नहीं ॥ २५ ॥

अत्रोच्यते, प्रत्यक्षमेवात्र प्रमाणं, गौरित्येकं पदमिति नानावर्णातिरिक्तैकपदावगतेः सर्वजनीनत्वान्न ह्यसति बाधके पदानुभवः शक्यो मिथ्येति वक्तुं पदार्थप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्यापि स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः।न च वर्णेभ्य एव तत्प्रत्ययःप्रादुर्भवतीति परीक्षाक्षमं विकल्पासहत्वात् ॥ २६ ॥

इसका उत्तर यह है जो, इस विषयका प्रमाण प्रत्यक्ष है। जैसे, गौ, यह एक पद । इसप्रकार नानावर्णातिरिक्त एकपादगति सर्वजन सम्मत है । बाधक असत्वमें पदानुभव दुसाध्य होता है, मिथ्या नहीं कह सकते हो। पदार्थप्रतीतिकी अन्यथा उपपत्तिद्वाराभी स्फोट स्वीकार करना पडेगा । वर्णोंसेही तत्प्रत्यय प्रादुर्भूत नहीं होता, यह परीक्षा सह है । क्योंकि इसमें विकल्प नहीं है ॥ २६ ॥

किं समस्ता व्यस्ता वा अर्थप्रत्ययं जनयन्ति । नाद्यः वर्णानां क्षणिकानां समूहासम्भवात् । नान्त्यः व्यस्तवर्णेभ्योऽर्थप्रत्ययासम्भवात् । न च व्याससमासाभ्यामन्यः प्रकारः समस्तीति । तस्माद्वर्णानां वाचकत्वानुपपत्तौ यद्बलादर्थप्रतिपत्तिः सः स्फोट इति वर्णातिरिक्तो वर्णाभिव्यङ्ग्योऽर्थप्रत्यायको नित्यः शब्दः स्फोट इति तद्विदो वदन्ति । अतएव स्फुटयते व्यज्यते वर्णैरिति स्फोटो वर्णाभिव्यंग्यः स्फुटोभवत्यस्मादर्थ इति स्फोटोऽर्थप्रत्यायक इति स्फोटशब्दार्थमुभयथा निराहुः ॥ २७ ॥

इसस्थल पूछना यह है कि, क्या सबही या व्यस्तवर्ण अर्थप्रत्यय समुत्पादन करते हैं ? इसका उत्तर यह है जो आद्य अर्थात् समस्त नहीं। क्योंकि वर्ण सब क्षणिक हैं । उनका समूह असम्भव है। द्वितीय अर्थात् व्यस्तवर्णभी अर्थप्रतीति उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं। क्योंकि, व्यस्तवर्णसे अर्थप्रत्यय सम्भव नहीं हो सकता । और व्यास और समास होनेसे अन्यप्रकारभी सम्भव नहीं होता । इसकारण वर्णोंका वाचकत्व अनुपपन्न होनेसे, जिसके बलसे अर्थप्रतीति उत्पन्न होती है उसीको स्फोट कहते हैं । इसप्रकार वर्णातिरिक्त वर्णाभिव्यंग्य अर्थप्रत्यय समुद्भावक नित्यशब्द स्फोटवाच्य है । इसके जाननेवाले लोग इसप्रकार कहते हैं, इसकारण वर्णद्वारा जो स्फुटित हो अर्थात्

प्रकट हो उसका नाम स्फोट, यथा वर्णाभिव्यङ्ग्य । और इससे अर्थ प्रकटीभूत होता है, इसी कारण इसका नाम स्फोट है, अर्थप्रत्यय समुद्भावक । इसप्रकार दोनों प्रकारसे स्फोट शब्दार्थ कहा गया है ॥ २७ ॥

तथाचोक्तं भगवता पतञ्जलिना महाभाष्ये । अथ गौरित्यत्र कः शब्दो येनोच्चरितेन सास्नालांगूलककुद्खुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्द इत्युच्यते इति ॥ २८ ॥

भगवान् पतञ्जलिने महाभाष्यमें कहाहै कि, जो यह एक शब्द है । जो उच्चारित होनेसे सास्ना, लांगूल, ककुद्, खुर और विषाण इन सबकी एक साथ प्रतीति होती है उसीको शब्द कहते हैं ॥ २८ ॥

विवृतश्च कैयटेन वैयाकरणा वर्णव्यतिरिक्तस्य पदस्य वाचकत्वमिच्छन्ति । वर्णानां वाचकत्वे द्वितीयादिवर्णोच्चारणानर्थक्यप्रसंगादित्यादिना तद्व्यतिरिक्तः स्फोटो नादाभिव्यङ्ग्यो वाचको विस्तरेण वाक्यपदीये व्यवस्थापित इत्यन्तेन प्रबन्धेन ॥ २९ ॥

कैयटने और विस्तारपूर्व्वक कहाहै, वैयाकरण लोग वर्णको छोडकर पदकी वाचकत्व इच्छा करतेहैं । वर्णोंका वाचकत्व होनेपर, द्वितीयोच्चारण अनर्थक होजाताहै । इत्यादि [illegible] उसके अतिरिक्त स्फोट नादाभिव्यङ्ग्य वाचक कहकर, विस्तारक्रमसे वाक्यपदीयमें व्यवस्थापित हुआ है ॥ २९ ॥

ननु स्फोटस्याप्यर्थप्रत्यायकत्वं न घटते विकल्पासहत्वात् । किमभिव्यक्तः स्फोटोऽर्थं प्रत्याययति अनभिव्यक्तो वा । न चरमः सर्वदा अर्थप्रत्ययलक्षणकार्य्योत्पादप्रसंगात् स्फोटस्य नित्यत्वाभ्युपगमेन निरपेक्षस्य हेतोः सदा सत्त्वेन कार्य्यस्य विलम्बायोगात् ॥ ३० ॥

यदि कहो कि, विकल्पासहत्वहेतुः स्फोटभी अर्थप्रतीतिका कारण नहीं होसकता । अभिव्यक्त स्फोटही अर्थप्रतीतिका कारण या अनभिव्यक्त स्फोटद्वाराही अर्थप्रत्यय समुद्भावित होता है ? सर्व्वदा अर्थप्रत्ययरूप कार्य्यका उत्पादन प्रसंगहेतुः चरम अर्थात् अनभिव्यक्त स्फोट अर्थप्रतीतिका समुद्भावक नहीं हो सकता है । स्फोटका नित्यत्व [illegible] निरपेक्ष हेतुकी सर्वकालीन सत्ताद्वारा कार्य्यका विलम्बयोग घटता है ॥ ३० ॥

अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया अभिव्यक्तः स्फोटोऽर्थं प्रत्याययतीति कक्षीक्रियते तथाभिव्यञ्जयन्तो वर्णाः किं प्रत्येकमभिव्यञ्जयन्ति संभूय वा पक्षद्वयेऽपि वर्णानां वाचकत्वपक्षे भवता ये दोषा भाषितास्त एव स्फोटाभिव्यञ्जकत्वपक्षे व्यावर्त्तनीयाः ।

तदुक्तं भट्टाचार्य्यैर्मीमांसाश्लोकवार्त्तिके—

यस्यानवयवः स्फोटो व्यज्यते वर्णबुद्धिभिः ।
सोऽपि पर्य्यनुयोगेन नैकेनापि विमुच्यते इति ॥ २१ ॥

यदि उल्लिखित दोषपरिहार वासनामें अभिव्यक्त स्फोट अर्थ प्रतीतिका विधायक होता है इसप्रकार स्वीकार किया जावे तो जिज्ञास्य यही है, अभिव्यञ्जक वर्ण सब क्या प्रत्येकको अभिव्यक्त करता है ? या एकत्र मिलकर, इसप्रकार विधान करता है ? दोनों पक्ष माननेसे, वर्णोंके वाचकत्व पक्षमे आपने जो सब निर्देश किया है वह सबही स्फोटाभिव्यञ्जकत्व पक्षमें व्यावर्त्तनीय होता है । मीमांसा श्लोक वार्तिकमें, भट्टाचार्य्योंने भी कहा है, कि वर्ण बुद्धिद्वारा जिसका अवयवशून्य स्फोट होता है सो एकमात्र पर्यनुयोगद्वारा विमुक्त नही होता ॥ २१ ॥

विभक्त्यन्तेष्वेव वर्णेषु पाणिनिना ते विभक्त्यन्ताः पदमिति गौतमेन च पदसंज्ञाया विहितत्वात् सङ्केतग्रहणेनानुग्रहवशाद्वर्णेष्वेव पदबुद्धिर्भविष्यति तर्हि सर इत्येतस्मिन् पदे यावन्तो वर्णास्तावन्त एव रस इत्यत्रापि एवं वनं नवं नददीना रामो मारो राजा जारेत्यादिष्वर्थभेदप्रतीतिर्न स्यादिति चेन्न क्रमभेदेन भेदसम्भवात् ।

तदुक्तं तौतातितैः—

यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादने ।
वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधका इति ॥ २२ ॥

[illegible] अनुग्रहवशात् यदि वर्णमें सब पदबुद्धि संघटित होती है, तो 'सर' [illegible] रस इस पदमें भी तदवर्ण लक्षित होता है । इसप्रकार वन और [illegible] इत्यादि पदसमूहमें भी अर्थभेद प्रतीति [illegible] नहीं कह सकते क्योंकि, क्रमभेदही सम्भावित होता है, उसीप्रकार, [illegible] के अर्थ प्रतिपादनमें प्रज्ञात सामर्थ्य, वे उसी [illegible] होते हैं । २२ ।

तस्माद्यश्चोभयोः समो दोषो न तेनैकश्चोद्यो भवतीति न्यायात् वर्णानामेव वाचकत्वोपपत्तौ नातिरिक्तस्फोटकल्पनाऽवकल्पते इति चेत् तदेतत् काशकुशावलम्बनकल्पनं विकल्पानुपपत्तेः किं वर्णमात्रे पदप्रत्ययावलम्बनं वर्णसमूहे वा । नाद्यः परस्परविलक्षणवर्णमालायामभिन्नं निमित्तं पुष्पेषु विना सूत्रं मालाप्रत्ययवदित्येकं पदमिति प्रतिपत्तेरनुपपत्तेः । नापि द्वितीयः उच्चरितप्रध्वस्तानां वर्णानां समूहभावासम्भवात् । तत्र हि समूहव्यपदेशः । ये पदार्था एकस्मिन् प्रदेशे सहावस्थिततया बहवोऽनुभूयन्ते यथा एकस्मिन् प्रदेशे सहावस्थिततयानुभूयमानेषु धवखदिरपलाशादिषु समूहव्यपदेशः यथा वा गजनरतुरगादिषु न च ते वर्णास्तथानुभूयन्ते उत्पन्नप्रध्वस्तत्वात् । अभिव्यक्तिपक्षेऽपि क्रमेणैवाभिव्यक्तौ समूहासम्भवात् । नापि वर्णेषु काल्पनिकः समूहः कल्पनीयः परस्पराश्रयप्रसङ्गात् ॥ २३ ॥

वर्ण सबका वाचकत्व उपपन्न होनेसे, अतिरिक्त स्फोट कल्पनाकी आवश्यकता नहीं होती, यह बात कहनेसे, पूछना यह है जो वर्णमात्रमें अथवा वर्णसमूहमें यह प्रत्यय अवलम्बित होता है ? सूत्रके विना पुष्पमें जैसे मालाप्रत्यय सम्भव नहीं; उसीप्रकार, परस्पर विलक्षण वर्णमालामें पद प्रतिपत्ति उपपन्न नहीं हो सकती । सुतरां, वर्णमात्रमें पद प्रत्ययका अवलम्बन सम्भव नहीं । और उच्चारित प्रध्वस्तवर्ण सबका समूहभावभी सम्भव होता है । सुतरां, द्वितीयकल्पभी क्योंकर उचित होसकता है । जो सब पदार्थ एकप्रदेशमें एकत्रा वस्थानवशात बहुत कहकर अनुभूत होता है, उसी स्थानमें समूह व्यपदेश होता है । जैसे, एकप्रदेशमें एकत्र अवस्थितिसे अनुभूयमान धव, खादिर, पलाशादि वृक्ष सबमें समूह व्यपदेश होता है । अथवा, जैसे गज नर या घोड़ा आदिमें इसप्रकार समूह व्यपदेश होता है । उत्पन्न प्रध्वस्तवशात् ये सब वर्ण तदनुरूप नहीं अनुभूत होते अभिव्यक्तिपक्षमें भी क्रमानुसार अभिव्यक्ति होजानेसे, समूहभाव असम्भवित होता है पुनः वर्णोंमें काल्पनिक समूह भी नहीं किया जासकता । परस्पराश्रयही इसका कारण है ॥ २३ ॥

एकार्थप्रत्यायकत्वासिद्धौ तदुपाधिना वर्णेषु पदत्वप्रतीतिःतत्सि-द्धावेकार्थप्रत्यायकत्वासिद्धिरिति । तस्माद्वर्णानां वाचकत्वासम्भ-

वात् स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः । ननु स्फोटवाचकतापक्षेऽपि प्रागुक्त-विकल्पप्रसरेण घट्टकुटीप्रभातायितमिति चेत्तदेतन्मनोराज्य-विजृम्भणं वैषम्यसम्भवात् ॥ ३४ ॥

एकार्थप्रत्यायकत्व सिद्धिमें उसकी उपाधिद्वारा वर्णोंमें पदत्वप्रतीति होती है । पदत्व-प्रतीति होनेसे, एकार्थप्रत्यायकत्व सिद्ध होता है । इसकारण वर्णोंका वाचकत्व असम्भवित होनेसे स्फोट मानना पडता है ॥ ३४ ॥

तथाहि अभिव्यञ्जकोऽपि प्रथमो ध्वनिः स्फोटमस्फुटमभिव्य-नक्ति उत्तरोत्तराभिव्यञ्जकक्रमेण स्फुटं स्फुटतरं स्फुटतमं यथा स्वाध्यायःसकृत्पठ्यमानो नावधार्य्यते अभ्यासेन तु स्फुटावसायः यथा वा रत्नतत्त्वं प्रथमप्रतीतौ स्फुटं न चकास्ति चरमे चेतसि य-थावदभिव्यज्यते नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह॥आवृ-त्तिपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवधार्य्यत इति प्रामाणिकोक्तेः ॥३५॥

उसीप्रकार अभिव्यञ्जक होनेपरभी प्रथम ध्वनि अस्फुटरूपसे स्फोट अभिव्यक्तकरताहै पर, उत्तरोत्तर अभिव्यञ्जक क्रमसे स्पष्ट, स्पष्टतर, स्पष्टतम और रूपसे अभिव्यक्त करताहै । जैसे, स्वाध्याय एकबारमात्र पाठसे निश्चय नहीं होता, अभ्यासद्वाराही स्पष्ट प्रतीत होता है । अथवा जैसे, रत्नतत्व प्रथम प्रतीतिमें स्पष्टरूपसे ज्ञात नहीं होता अन्तमें चित्तमें यथावत् अभिव्यक्त होता है । पहिले नादद्वारा बीज आहित होता है । पीछे अन्त्य ध्वनिके सहित आवृत्तिके परिपाक होनेसे, बुद्धिमें शब्द अवधारित होता है । यही प्रामा-णिक वचन है ॥ ३५ ॥

तस्मादस्माच्छब्दादर्थं प्रतिपद्यामह इति व्यवहारवशाद्वर्णानां अर्थवाचकत्वानुपपत्तेः प्रथमे काण्डे तत्रभवद्भिर्भर्तृहरिभिरभिहि-तत्वात निरवयवमर्थप्रत्यायकं शब्दतत्त्वं स्फोटाभावमभ्युपगन्त-व्यमित्येतत् सर्वम् ॥ ३६ ॥

इसकारण, इसशब्दसे अर्थ प्रतिपन्न करना चाहिये. इत्यादि व्यवहारवशात् वर्णोंका अर्थवाचकत्व अनुपपन्न है जैसे, प्रथमकाण्डमें परम माननीय भर्तृहरिने कहा है । उससे अर्थ प्रत्यायक निरवयव शब्दतत्व मानना पड़ता है ॥ ३६ ॥

परमार्थसंविद्रूपसत्ता जातिरेव सर्वेषां शब्दानामर्थ इति प्रति-पादनपरे जातिसमुद्देशे प्रतिपादितम् । यदि सत्तैव सर्वेषां शब्दा-

नामर्थस्तर्हि सर्वेषां शब्दानां पर्य्यायता स्यात् तथा च क्वचिदपि युगपत्त्रिचतुरपदप्रयोगायोग इति महच्चातुर्य्यमायुष्मतः ।

तदुक्तम्—

पर्य्यायाणां प्रयोगो हि यौगपद्येन नेष्यते ।
पर्य्यायेणैव ते यस्माद्वदन्त्यर्थं न संहता इति ॥ ३७ ॥

जिसमें परमार्थ संवित्‌रूप सत्ता है, वही जाति समुदाय शब्दका अर्थ, इसप्रकार प्रतिपादन पर जातिसमुद्देशमें प्रतिपादित हुआ है। यदि सत्ता ही सब शब्दोंका अर्थ होता है, तो समुदायशब्दकी पर्य्यायता होती है। और, कहींभी युगपत् तीन चार पद प्रयोगका अयोग संघटित होता है। यह आयुष्मान्‌की परम चतुरता है। उसीप्रकार, कहा है, पर्य्यायोंके यौगपद्यद्वारा प्रयोग अभिमत नहीं होता। जिसकारण, पर्य्यायद्वारा ही ये सब अर्थ प्रतिपादन करते हैं, संहत होकर नहीं करते ॥ ३७ ॥

तस्मादयं पक्षो न क्षोदक्षम इति चेत् तदेतद्गगनरोमन्थकल्पं नीललोहितपीताद्युपरञ्जकद्रव्यभेदेन स्फटिकमणेरिव सम्बन्धिभेदात् । सत्तायास्तदात्मना भेदेन प्रतिपत्तिसिद्धौ गोसत्तादिरूपगोत्वादिभेदनिबन्धनव्यवहारवैलक्षण्योपपत्तेः ।

तथा चाप्तवाक्यम्—

स्फटिकं विमलं द्रव्यं यथायुक्तं पृथक् पृथक् ।
नीललोहितपीताद्यैस्तद्वर्णमुपलभ्यत इति ॥ ३८ ॥

इसकारण उल्लिखित पक्ष सो इसमें नहीं, यह बात कहोगे, वह गगन रोमन्थके तुल्य होगा। क्योंकि, नील. लोहित, पीतादि उपरञ्जक द्रव्यभेदसे स्फटिकमणिकी नाईं सम्बन्धि भेद संघटित होता है। इसकारण, सत्ताके तादात्म्यभेदद्वारा प्रतीतिकी सिद्धि होनेपर, गोसत्तादिभेद निबन्धन व्यवहार वैलक्षण्य उत्पन्न होता है उसीप्रकार, आप्त वाक्य में है, एकमात्र विमल स्फटिक द्रव्य नील, लोहित और पीतादि द्वारा भिन्न २ उनका रंग दीखता है॥ ३८॥

तथा हरिणाप्युक्तम्—

सम्बन्धिभेदात् सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु ।
जातिरित्युच्यते तस्यां सर्वे शब्दा व्यवस्थिताः ॥ ३९ ॥

तां प्रातिपदिकार्थञ्च धात्वर्थञ्च प्रचक्षते ।
सा सत्ता सा महानात्मा तामाहुस्त्वतलादय इति ॥ ४० ॥

उसीको प्रातिपादिकार्थ और धात्वर्थ कहते हैं । वही सत्ता, वही महानात्मा, एवं उसीको त्वतलादि प्रत्यय कहते हैं ॥ ४० ॥

आश्रयभूतैः सम्बन्धिभिर्भिद्यमाना कल्पितभेदा गवाश्वादिषु सत्तैव महासामान्यमेव जातिः । गोत्वादिकमपरं सामान्यं परमार्थतस्ततो भिन्नं न भवति । गोसत्तैव गोत्वं नापरमन्वायि प्रतिभासते । एवमश्वसत्ता अश्वत्वमित्यादि वाच्यम् ॥ ४१ ॥

जो आश्रयभूत सम्बन्धिसमूहद्वारा भिन्नरूपसे प्रादुर्भूत और तन्निबन्धन जिसमें भेद कल्पित होताहै, वह सत्ताही महासामान्य है । एवं वही जातिशब्दसे उल्लिखित होता है । गोत्वादि अपर सामान्य परमार्थतः उससे भिन्न होता है । गोसत्ताही गोत्व, वह अपरान्वयी करके प्रतीत नहीं होता । इसप्रकार अश्वसत्ता अश्वत्व कहना चाहिये ॥ ४१ ॥

एवञ्च तस्यामेव गवादिभिन्नायां सत्तायां जातौ सर्वे गोशब्दाद-यो वाचकत्वेन व्यवस्थिताः प्रातिपदिकार्थश्च सत्तेति प्रसिद्धम् । भाववचनो धातुरिति पक्षे भावः सत्तैवेति धात्वर्थः सत्ता भव-त्येव क्रियावचनो धातुरिति पक्षेऽपि जातिमन्ये क्रियामाहुरने-कव्यक्तिवर्त्तिनीमिति जातिपदार्थनयानुसारेणानेकव्यक्तिक्रिया-समुद्देशे क्रियाया जातिरूपत्वप्रतिपादनात् धात्वर्थः सत्ता भव-त्येव तस्य भावस्त्वतलाविति भावार्थे त्वतलादीनां विधानात् समानाधिकत्वं युक्तं सा च सत्ता उदयव्ययवैधुर्य्यान्नित्या सर्वस्य प्रपञ्चस्य तद्विवर्त्ततया देशतः कालतो वस्तुतश्च परिच्छेदराहि-त्यात् सा सत्ता महानात्मेति व्यपदिश्यत इति कारिकाद्वयार्थः ४२

[illegible] गोशब्दादिवाचकत्व द्वारा व्यवस्थित

वशतः नित्यस्वरूप है । क्योंकि, समुदायप्रपञ्चही उसका विवर्त्तस्वरूप । एवं देश, काल, वस्तु, किसीप्रकारभी उसको परिच्छेद नहीं । इसीकारण सत्ता महान् आत्मा कहकर व्यपदिष्ट होता है दोनों कारिकोंमें इसीप्रकार अर्थ किया है ॥ ४२ ॥

द्रव्यपदार्थसंविल्लक्षणं तत्त्वमेव सर्वशब्दार्थ इति सम्बन्धसमुद्देशे समर्थितम्—

सत्यं वस्तु तदाकारैरसत्यैरवधार्य्यते ।
असत्योपाधिभिः शब्दैः सत्यमेवाभिधीयते ॥ ४३ ॥

द्रव्यपदार्थका संवित्स्वरूप तत्त्वही सर्व्वपदार्थ, यह सम्बन्धसमुद्देशमें समर्थित हुआ है । जैसे, सत्यवस्तु तदाकार असत्यद्वारा अवधारित होता है । उसीप्रकार असत्योपाधि विशिष्ट शब्दोंद्वारा सत्यही अभिहित होता है ॥ ४३ ॥

अध्रुवेण निमित्तेण देवदत्तगृहं यथा ।
गृहीतं गृहशब्देन शुद्धमेवाभिधीयते इति ॥ ४४ ॥

अध्रुवनिमित्तद्वारा देवदत्तगृहकी नाईं, गृहीतपदार्थ गृहशब्दद्वारा शुद्धरूपही प्रतिपादित होता है ॥ ४४ ॥

भाष्यकारेणापि सिद्धे शब्दार्थसम्बन्ध इत्येतद्वार्तिकव्याख्यानावसरे द्रव्यं हि नित्यमित्यनेन ग्रन्थेन अश्वत्थोपाध्यवच्छिन्नं ब्रह्मत्वं द्रव्यशब्दवाच्यं द्रव्यशब्दार्थ इति निरूपितम् ॥ ४५ ॥

भाष्यकारने भी कहा है शब्दार्थ सम्बन्ध सिद्ध इत्यादि विधानसे वार्त्तिक व्याख्यान प्रसंगसे द्रव्य नित्यस्वरूप इसप्रकार उक्ति स्थापनपूर्व्वक अश्वत्थोपाधिद्वारा अनवच्छिन्न द्रव्यशब्दवाच्य ब्रह्मतत्वही समुदाय शब्दार्थ, इसप्रकार निरूपण किया है ॥ ४५ ॥

जातिशब्दार्थवाचिनो वाजप्यायनस्य मते गवादयः शब्दाः भिन्नद्रव्यसमवेतजातिमभिदधति । तस्यामवगाह्यमानायां तत्सम्बन्धात् द्रव्यमवगम्यते शुक्लादयः शब्दा गुणसमवेतां जातिमाचक्षते गुणे तत्सम्बन्धात् । प्रत्ययः द्रव्यसम्बन्धिसम्बन्धात् संज्ञाशब्दानामुत्पत्तिप्रभृत्याविनाशात् शैशवकौमारयौवनावस्थादिभेदेऽपि स एवायमित्यभिप्रत्ययबलात् सिद्धा देवदत्त्वादि-

जातिरभ्युपगन्तव्या क्रियास्वपि जातिरालक्ष्यते सैव पठती-त्यादावनुवृत्तप्रत्ययस्य प्रादुर्भावात् ॥ ४६ ॥

जातिशब्दार्थवाची वाजप्यायनके मतसे गवादिशब्द सब भिन्न द्रव्यसमवेत जाति अभिहित करता है । जाति अवगाह्यमान होनेपर, तदीयसम्बन्धवशात् द्रव्यज्ञानसम्पन्न होता है । जैसे, शुक्लादिशब्द सब, गुणसमवेत जाति अभिहित करता है । गुणसे उसका सम्बन्ध वशात् प्रत्यय होता है । एवं द्रव्य सम्बन्धि सम्बन्धप्रयुक्त संज्ञा सुसम्पन्न होती है । शब्दोंकी उत्पत्ति प्रभृतिका विनाश नहीं । सुतरां, शैशव, कौमार, यौवनादि, अवस्था भेदसे वह, ' यह ' इसप्रकार अभिप्रत्ययवलसे देवदत्तत्वादि जातिसिद्ध होती है, मानना होगा । क्रिया सबमें भी, जाति अलक्षित होती है । वही धातुवाच्य । क्योंकि, पाठ करता हूं, इत्यादिस्थानमें अनुवृत्त प्रत्ययका प्रादुर्भाव होता है ॥ ४६ ॥

द्रव्यपदार्थवादिव्याडिनये शब्दस्य व्यक्तिरेवाभिधेयतया प्रति-भासते । जातिस्तूपलक्षणतयेति नानन्त्यादिदोषावकाशः ॥४७॥

द्रव्यपदार्थवाची व्याडिके मतसे शब्दकी व्यक्ति अभिध्येयताद्वारा एवं जाति उपलक्षणताद्वारा प्रतीत होती है । इसमें आनन्त्यादि दोष प्रसङ्ग नहीं ॥ ४७ ॥

पाणिन्याचार्यस्योभं सम्मतं यतो जातिपदार्थमभ्युपगम्य जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्यामित्यादिव्यवहारः द्रव्यपदार्थमङ्गीकृत्य सरूपाणामेकशेष एकविभक्तावित्यादिः व्याकरणस्य सर्वपार्षदत्वान्मतद्वयाभ्युपगमे न कश्चिद्विरोधः॥४८॥

पाणिनि आचार्य्य दोनोंही मानते हैं । जिसकारण, जाति पदार्थ मानकर जातिके बतानेमें ' एकस्मिन् बहुवचनं इत्यादि, प्रयोग किया है पुनः, द्रव्य पदार्थ मानकर, 'सरूपाणां एक शेष ' इत्यादि प्रयोग किया है । इसप्रकार, व्याकरणका सर्वपार्षदत्व प्रयुक्त दोनो मत अंगीकार करनेसे, किसीप्रकार विरोध नहीं होता ॥ ४८ ॥

तस्मात् द्वयं सत्यं परं ब्रह्मतत्त्वं सर्वशब्दार्थ इति स्थितम् ।

तदुक्तम्—

तस्माच्छक्तिविभागेन सत्यः सर्वः सदात्मकः ।
एकोऽर्थः शब्दवाच्यत्वे बहुरूपः प्रकाशत इति ॥ ४९ ॥

इसकारण दोनो मतोंमे, सत्यस्वरूप परब्रह्मतत्व सर्व्व शब्दार्थ है, यह सिद्धान्तित हुआ । इसीप्रकार कहा है, इसकारण शक्तिविभाग सहायतामें सत्यस्वरूप, सर्व्वस्वरूप, सदात्मक, एक अर्थ शब्दवाच्यत्वमें बहुत प्रकारसे प्रकाशित होता है ॥ ४९ ॥

सत्यस्वरूपमपि हरिणोक्तं सम्बन्धसमुद्देशे-
यत्र द्रष्टा च दृश्यञ्च दर्शनञ्चाविकल्पितम् ।
तस्यैवार्थस्य सत्यत्वमाहुस्त्रय्यन्तवेदिन इति ॥ ५० ॥

हरिनेंभी सम्बन्धसमुद्देशमें सत्यस्वरूपे निर्देश किया है । जैसे जिस स्थानमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सर्व्वथा विकल्पशून्य, त्रय्यन्तवेदी पण्डितगण उस अर्थका सत्यत्व उल्लेख करते हैं ॥ ५० ॥

द्रव्यसमुद्देशेऽपि-
विकारोपगमे सत्यं सुवर्णं कुण्डले यथा ।
विकारापगमो यत्र तामाहुः प्रकृतिं परामिति ॥ ५१ ॥

द्रव्यसमुद्देशमें भी कहा है विकारके उपशममें सत्यकुण्डलमें सोनेकी नाईं प्रतिभात होता है । और जिसमें विकारका अपगम लक्षित होता है, उसको परामकृति कहते हैं ॥५१॥

अभ्युपगताद्वितीयत्वनिर्वाहाय वाच्यवाचकयोरविभागः प्रदर्शितः।
वाच्या सा सर्वशब्दानां शब्दाच्च न पृथक् ततः ।
अपृथक्त्वेऽपि सम्बन्धस्तयोर्नानात्मनोरिवेति ॥ ५२ ॥

ऊपर जो अद्वितीय माना गया है, उसके प्रतिपादनार्थ वाच्य वाचक दोनोंका अविभाग दर्शन किया है । जैसे, वह समुदाय शब्दका वाच्य एवं उससे शब्द पृथक् नहीं ॥ ५२ ॥

तत्तदुपाधिपरिकल्पितभेदबहुलतया व्यवहारस्याविद्यामात्रकल्पितत्वेन प्रतिनियताकारोपधीयमानरूपभेदं ब्रह्मतत्त्वं सर्वशब्दविषयः अभेदे च पारमार्थिके संवृत्तिवशाद्व्यवहारदशायां स्वप्नावस्थावदुच्चावचः प्रपञ्चो विवर्त्तत इति कारिकार्थः ।

तदाहुर्वेदान्तवादनिपुणाः-
यथा स्वप्नप्रपञ्चोऽयं मयि माया विजृम्भितः ।
एवं जाग्रत्प्रपञ्चोऽपि मयि माया विजृम्भित इति ॥ ५३ ॥

उस उस उपाधिद्वारा, बहुत भेद परिकल्पित होता है । व्यवहारतः, [illegible] अविद्यामात्र कल्पित है । इसकारण, प्रतिनियत आकारमें जिसका रूपभेद [illegible] होता है वही ब्रह्मतत्त्व सर्व शब्द विषय एवं अभेद परमार्थिक है तथा संवृत्तिवशात् व्यवहारदशामें स्वप्नावस्थाकी नाईं उच्चावच प्रपञ्च विवर्त्तित होता है । यही, कारिकाका अर्थ, [illegible]

निपुणनें कहा है यह स्वप्नप्रपञ्च जिसप्रकार मायावशात् मुक्तमें विजृम्भित होता है, नगरप्रपञ्चभी उसीप्रकार मुझमें मायाविजृम्भित होता है ॥ ५३ ॥

तदित्थं कूटस्थे परस्मिन् ब्रह्मणि सच्चिदानन्दरूपे प्रत्यगभिन्नेऽवगते अनाद्यविद्यानिवृत्तौ तादृग्ब्रह्मात्मनावस्थानलक्षणं निःश्रेयसं सेत्स्यति.शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छतीत्यभियुक्तोक्तेः । तथाच शब्दानुशासनशास्त्रस्य निःश्रेयससाधनत्वं सिद्धम् ।

तदुक्तम्—

तद् द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम् ।
पवित्रं सर्वविद्यानामधिविद्यं प्रचक्षत इति ॥ ५४ ॥

इसप्रकार सच्चिदानन्दविग्रह, प्रत्यगभिन्न कूटस्थ परब्रह्म अवगत होनेसे, अनादि अविद्याकी निवृत्ति होती है। तो ब्रह्म और आत्मा दोनोंकी एकतारूप निःश्रेयस समाहित होता है । क्योंकि पण्डितोंने कहा है । शब्दब्रह्ममें निष्णात होनेसे, परब्रह्मकी प्राप्ति होती है । और शब्दानुशासनकी निःश्रेयस साधनता सिद्ध हुई । सो कहा है, जैसे वही मोक्षका द्वार है। वही वाणीमलोंका चिकित्सित, वही, सब विद्याओंमें पवित्र एवं उसीको श्रेष्ठविद्या कहते हैं ॥ ५४ ॥

तथा—

इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम् ।
इयं सा मोक्षमार्गाणामजिह्मा राजपद्धतिरिति ॥ ५५ ॥

पुनः कहा है, यही सिद्धि सोपानपर्वकी पहिली सीढी एवं यही मुक्तिमार्ग अतीव सरल राजमार्ग है ॥ ५५ ॥

तस्माद् व्याकरणशास्त्रं परमपुरुषार्थसाधनतयाध्येतव्यमिति सिद्धम् ॥ ५६ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पाणिनिदर्शनं समाप्तम् ॥ १३ ॥

इसकारण, परमपुरुषार्थकी साधनतासे व्याकरणशास्त्र अध्ययनसाधनता अध्ययन करना कर्तव्य है ॥ ५६ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पाणिनिदर्शन समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

अथ सांख्यदर्शनम् ॥ १४ ॥

अथ सांख्यैराख्याते परिणामवादे परिपन्थिनि जागरूके कथङ्कारं विवर्त्तवाद आदरणीयो भवेदेष हि तेषामाघोषः । संक्षेपेण हि सांख्यशास्त्रस्य चतस्रो विधाः सम्भाव्यन्ते । कश्चिदर्थः प्रकृतिरेव, कश्चिद्विकृतिरेव, कश्चिद्विकृतिः प्रकृतिश्च; कश्चिदनुभय इति । तत्र केवला प्रकृतिः प्रधानपदेन वेदनीया मूलप्रकृतिः नासावन्यस्य कस्यचिद्विकृतिः ॥ १ ॥

सांख्यगणके आख्यात परिणामवाद परिपन्थिस्वरूप जागरूक रहनेसे, विवर्त्तवाद किस-प्रकार आदरणीय होसकता है, यही उन लोगोंका आघोष है । सांख्यशास्त्रमें संक्षेपसे चार विधान सम्भावित होते हैं, प्रथम प्रकृति, द्वितीय विकृति, तृतीय विकृतिप्रकृति एवं चतुर्थ अनुभय उनमें केवला प्रकृति प्रधानशब्द वाच्य मूल प्रकृति, वह अन्य किसीकी विकृति नहीं ॥ १ ॥

प्रकरोतीति प्रकृतिरिति व्युत्पत्त्या सत्त्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्थाया अभिधानात् । तदुक्तं, मूलप्रकृतिरविकृतिरिति । मूलञ्चासौ प्रकृतिश्च मूलप्रकृतिः । महदादेः कार्य्यकलापस्यासौ मूलं न त्वस्य प्रधानस्य मूलान्तरमस्ति अनवस्थापातात् । न च बीजांकुरवदनवस्थादोषो न भवतीति वाच्यं प्रमाणाभावादिति भावः ॥ २ ॥

प्रकृष्टरूपसे जो करता है, इसकारण इसका नाम ' प्रकृति ' है । इसप्रकार व्युत्पत्ति द्वारा सत्व, रज और तमोगुणकी साम्य अवस्था अभिहित हुई है । इसीप्रकार, कहा है कि मूल प्रकृति अविकृति । इसका अर्थ यह है, यह मूल अर्थात महत आदि कार्य्य कलापकी आदि है, इसका मूलान्तर नहीं । मूलान्तर है, कहनेसे, अनवस्था दोष पड़ता है । बीजांकुरकी नाईं, अनवस्था दोष सम्भव नहीं, यह बात नहीं कहसकते । क्योंकि, इसका कोई प्रमाण नहीं ॥ २ ॥

विकृतयश्च प्रकृतयश्च महदहङ्कारतन्मात्राणि । तदप्युक्तं, महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्तेति । अस्यार्थः प्रकृतयश्च ताः विकृतयश्चेति प्रकृतिविकृतयः सप्त महदादीनि तत्त्वानि ॥ ३ ॥

विकृति प्रकृति शब्दसे अहङ्कार और तन्मात्र पञ्चक। उसीप्रकार, कहाहै, महत् आदि प्रकृति विकृतिकी संख्या सात ७ है । इसका अर्थ यह है जो महत् आदि सात तत्त्वका नाम प्रकृति विकृति है ॥ ३ ॥

तत्रान्तःकरणादिपदवेदनीयं महत्तत्त्वमहङ्कारस्य प्रकृतिः मूल-प्रकृतेस्तु विकृतिः ॥ ४ ॥

इनमें अन्तःकरणादि शब्दवाच्य महत्तत्व अहङ्कार प्रकृति। एवं मूल प्रकृतिकी विकृति है ॥ ४ ॥

एवमहङ्कारतत्त्वमभिमानापरनामधेयं महती विकृतिः प्रकृतिश्च। तदेवाहंकारतत्त्वं तामसं सत् पञ्चतन्मात्राणां सूक्ष्माभिधानां तदेव सात्त्विकं सत् प्रकृतिरेकादशेन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनात्वगाख्यानां कर्मेन्द्रियाणां वाक्पाणिपाद-पायूपस्थाख्यानामुभयात्मकस्य मनसश्च रजसस्तूभयत्र क्रियो-त्पादनद्वारेण कारणत्वमस्तीति न वैयर्थ्यम् ॥ ५ ॥

इसप्रकार, जिसका नाम अभिमान वही अहंकारतत्त्व महत्की विकृति। यह अहंकार तत्त्व तामस अवस्थामें सूक्ष्माभिधेय पञ्च तन्मात्रकी प्रकृति होती है एवं सात्विक अवस्थामें ग्यारह इन्द्रियकी प्रवर्त्तना करता है । ये ग्यारह इन्द्रिय दोभागमें विभक्त हैं, बुद्धि इन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय । इनमें चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक्, इन पांचका नाम बुद्धि इन्द्रिय एवं वाक्, पाणि पाद, पायु, और उपस्थ इनका नाम कर्म्मइन्द्रिय है । और मन उभयात्मक है। रजो-गुण उभयत्र क्रियाका उत्पादन करता है । इसकारण उसका कारणत्व लक्षित होता है । इस विषयमें वैयर्थ्य नहीं है ॥ ५ ॥

तदुक्तमीश्वरकृष्णेन–

अभिमानोऽहंकारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः ।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकश्चैव ॥ ६ ॥

उसीप्रकार, ईश्वर कृष्णने कहा है, अहङ्कार अर्थात् अभिमान। उससे दो प्रकारका सर्ग प्रवर्तित होता है। प्रथम ग्यारहगण एवं द्वितीय तन्मात्र पञ्चक है ॥ ६ ॥

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात् ।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ।

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि ।
वाक्पादपाणिपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥ ७ ॥

चक्षु श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् इनका नाम बुद्धीन्द्रिय, वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ इनको कर्म्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ ७ ॥

उभयात्मकमत्र मनः संकल्पविकल्पकञ्च साधर्म्यादिति ॥ ८ ॥

मन उभयात्मक । अर्थात् साधर्म्म्यवशात् संकल्पविकल्पात्मक इन्द्रिय है ॥ ८ ॥

विवृतञ्च तत्त्वकौमुद्यामाचार्यवाचस्पतिभिः केवला विकृतिस्तु वियदादीनि पञ्चभूतानि एकादशेन्द्रियाणि च तदुक्तं, षोडशकस्तु विकार इति षोडशसंख्यावच्छिन्नो गणः षोडशको विकार एव न प्रकृतिरित्यर्थः यद्यपि पृथिव्यादयो गोघटादीनां प्रकृतिस्तथापि न ते पृथिव्यादिभ्यस्तत्त्वान्तरमिति न प्रकृतिः तत्त्वान्तरोपादानत्वं चेह प्रकृतित्वमभिमतं गोघटादीनां स्थूलत्वेन्द्रियग्राह्यत्वयोः समानत्वेन तत्त्वान्तरत्वाभावः । तत्र शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्रेभ्यः पूर्वपूर्वसूक्ष्मभूतसहितेभ्यः पञ्चभूतानि वियदादीनि क्रमेणैकद्वित्रिचतुःपञ्चगुणानि जायन्ते । इन्द्रियसृष्टिस्तु प्रागेवोक्ता ॥ ९ ॥

तत्त्वकौमुदीमें आचार्य्य वाचस्पतिने विवृत किया है कि जैसे, आकाश, प्रभृति पांचभूत और ग्यारह इन्द्रिय इनको केवल प्रकृति कहते हैं । इसीप्रकार, कहा है विकार सोलह हैं अर्थात षोडश संख्या अवच्छिन्नगण १६ विकार, प्रकृति नहीं । यद्यपि पृथिव्यादि गो घट आदिकी प्रकृति है तथापि, उनका पृथिवी आदिसे तत्त्वान्तर नहीं इसकारण, प्रकृति नहीं । गोघट आदिका स्थूलत्व और इन्द्रियग्राह्यत्व दोनोंही समान है इससे, तत्त्वान्तरत्व सम्भव नहीं । उनमें, पूर्व्व पूर्व्व सूक्ष्मभूत सहित शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तन्मात्रसे यथाक्रम एक दो तीन चार और पांच गुणविशिष्ट आकाशादि पांचभूत होते हैं । इन्द्रियसृष्टि पहिलेही कही गयी है ॥ ९ ॥

तदुक्तम्—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ १० ॥

उसीप्रकार कहा है कि प्रकृतिसे महान् महानसे अहङ्कार अहङ्कारसे षोडशगण समुत्पन्न हुआ है ॥ १० ॥

अनुभयात्मकः पुरुषः । तदुक्तं, न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष इति। पुरुषस्तु कूटस्थनित्योऽपरिणामो न कस्यचित् प्रकृतिर्नापि विकृतिः कस्यचिदित्यर्थः ॥ ११ ॥

पुरुष अनुभयात्मक अर्थात् वह प्रकृतिभी नहीं विकृतिभी नहीं । वह कूटस्थ, नित्य और परिणामसहित वह किसीकी प्रकृति या विकृति नहीं है ॥ ११ ॥

एतत्पञ्चविंशतितत्त्वसाधकत्वेन प्रमाणत्रयमभिमतम् ।

तदप्युक्तम्–

दृष्टमनुमानमाप्तवचनञ्च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात् ।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धीति ॥ १२ ॥

उल्लिखित पच्चीस तत्वके साधकत्वद्वारा प्रमाणत्रय अभिमत हुआ है । जैसे दृष्ट अनुमान और आप्तवाक्य । सर्व प्रमाण सिद्धिवशतः यही तीनप्रकारका प्रमाण अभिमत है। प्रमाणसेही प्रमेयकी सिद्धि होती है ॥ १२ ॥

इह कार्य्यकारणभावे चतुर्द्धा विप्रतिपत्तिः प्रसरति । असतः सञ्जायत इति सौगताः संगिरन्ते । नैयायिकादयः सतोऽसञ्जायत इति ॥ १३ ॥

प्रस्तावित कार्य्यकारणभावमें चारप्रकारसे विप्रतिपत्ति प्रकृत होती है । प्रथमतः सौगत लोगोंने कहा है कि, असतसे सत्का जन्म होता है नैयायिकोंके मतमें सत्से असत्का आविर्भाव हुआ है ॥ १३ ॥

वेदान्तिनः सतो विवर्त्तः कार्य्यजातं न वस्तु सदिति । सांख्याः पुनः सतः सञ्जायत इति । तत्रासतः सञ्जायत इति प्रामाणिकः पक्षः । असतो निरुपाख्यस्य शशविषाणवत्कारणत्वानुपपत्तेः तुच्छातुच्छयोस्तादात्म्यानुपपत्तेश्चानापि सतोऽसञ्जायते कारकव्यापारान्प्रागसतः शशविषाणवत्सत्तासम्बन्धलक्षणोत्पत्त्यनुपपत्तेः । न हि नीलं निपुणतमेनापि पीतं कर्त्तुं पार्य्यते । ननु सत्त्वासत्त्वे घटस्य धर्माविति चेत्तदचारु असति धर्मिणि तद्धर्म

इति व्यपदेशानुपपत्त्या धर्मिणः सत्त्वापत्तेः । तस्मात्कारकव्यापारात् प्रागपि कार्य्यं सदेव सतश्चाभिव्यक्तिरुपपद्यते । यथा पीड़नेन तिलेषु तैलस्य दोहेन सौरभेयीषु पयसः । असतः कारणे किमपि निदर्शनं न दृश्यते ॥ १४ ॥

वेदान्तीलोग कहते हैं, सत्से विवर्तका उत्तर होता है । सांख्यलोग निर्देश करते हैं सत्से सत्का जन्म होताहै इनमें असत्से सत्की उत्पत्ति होती है यह प्रामाणिक पक्ष नहीं। क्योंकि असत् निरूपाख्य सुतरां, खरहे (शशक) के शृङ्गके तुल्य उसका कारणत्व सम्भव नहीं एवं तुच्छ अतुच्छ दोनोंके तादात्म्यकी अनुपपत्ति होती है सत्सेभी असत्की उत्पत्ति होनहीं सकती । जिसकारण, कारकव्यापारके पहिले शशविषाणकी नाईं असत्की सत्ता सम्बन्धरूप उत्पत्ति सम्भव नहीं । निपुणतम व्यक्तिभी नीलको पीत नहीं करसकती । यदि कहो सत्त्व और असत्त्व दोनोंही घटका धर्म्म है यह बातभी युक्तिसंगत नहीं हो सकती । क्योंकि धर्मीकी सत्त्वापत्ति होती है । असत् धर्म्मिमें तद्धर्म, ऐसे व्यपदेशसे उपपन्न नहीं होता इसकारण कारकव्यापारके पूर्व्वभी कार्य्य अवश्यही रहता है उसीकी अभिव्यक्ति उपपन्न होती है । जैसे निष्पीडनसे तिलमें तैलका एवं दोहनद्वारा गौमें दुग्धकी अभिव्यक्ति होती है । असत्कारणमें किसीप्रकार निदर्शनही नहीं देखाजाता ॥ १४ ॥

किञ्च कार्य्येण कारणं सम्बद्धं तज्जनकम् असम्बद्धं वा । प्रथमे कार्य्यस्य सत्त्वमायातं सतोरेव सम्बन्ध इति नियमात् । चरमे सर्वं कार्य्यजातं सर्वस्माज्जायेत असम्बद्धत्वाविशेषात् ॥ १५ ॥

पुनः कारणकार्य्यद्वारा सम्बन्ध होकर उसका जनक होता है । किम्वा असम्बद्ध होकर इसप्रकार उत्पादक होताहै ? पहिला पक्ष माननेसे, कार्य्यका सत्त्व आपतित होताहै । क्योंकि, सत्हीका सम्बन्ध इसप्रकार नियम है । दूसरा पक्ष माननेमें, असम्बद्धत्व किसीप्रकार विशेष नहीं रहता । इसकारण सबसे सबप्रकार कार्यजात समुद्भूत होता है ॥ १५ ॥

तदाख्यायि सांख्याचार्य्यैः—

असत्त्वान्नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसंगिभिः ।
असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिरिति ॥ १६ ॥

सांख्याचार्य्योंने कहा है । जैसे कारण सब सत्त्वसंगी है सुतरां असत्से सम्बन्ध नहीं । जो व्यक्ति असम्बद्धकी उत्पत्ति इच्छाकरता है उसकी व्यवस्थिति नहीं ॥ १६ ॥

अथैवमनुष्टेयासम्बद्धमपि तत् तदेव जनयति यत्र यत्कारणं शक्तिश्च कार्य्यदर्शनान्नेयेति तन्न संगच्छते निन्दपु तत्जननश-

क्तिरित्यत्र तैलस्यासत्त्वे सम्बद्धत्वासम्बद्धत्वविकल्पेन तच्छक्ति-
रितिनिरूपणायोगात् । कार्य्यकारणयोरभेदाच्च कार्य्यस्य सत्त्वं
कारणात् पृथक् न भवति पटस्तन्तुभ्यो न भिद्यते तद्धर्मत्वान्न
यदेवं न तदेवं यथा गोरश्वः तद्धर्मश्च पटस्तस्मान्नार्थान्तरम् ॥ १७॥

तिलमें शक्ति, इसप्रकार अनुद्भूत सम्बन्धभी उस २ पदार्थका समुत्पादन करता है । कार्य्य देखकरही, अग्निका उन्नयन करसकताहै । इत्यादि मतवाद संगत नहीं होसकता । तिलमें तैल जननशक्ति है । इसस्थानमें तैलके असत्वमें सम्बद्धासम्बद्धत्व विकल्प न करके वह शक्ति, इसप्रकार निरूपणके प्रयोग वशतः पृथक् नहीं होसकती । उसीप्रकार पटतन्तुसे भिन्न नहीं होसकता । तद्धर्म्मताही उसका कारण है । जो ऐसा नहीं, सो इसप्रकार नहीं, जैसे गौ और घोडा सुतरां पट अर्थान्तर नहीं ॥ १७ ॥

तर्हि प्रत्येकं त एव प्रावरणकार्य्यं कुर्य्युरिति चेत् संस्थानभेदे-
नाविर्भूतपटभावानां प्रावरणार्थक्रियाकारित्वोपपत्तेः । यथा हि
कूर्मस्यांगानि कूर्मशरीरे निविशमानानि तिरोभवन्ति निःसरन्ति
चाविर्भवन्ति एवं कारणस्य तन्त्वादेः पटादयो विशेषा निःसर-
न्त आविर्भवन्त उत्पद्यन्त इत्युच्यन्ते निविशमानास्तिरोभव-
न्तो विनश्यन्तीत्युच्यन्ते न पुनरसतामुत्पत्तिः सतां वा विनाशः।

यथोक्तं भगवद्गीतायाम्-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत इति ॥

ततश्च कार्य्यानुमानात् तत्प्रधानसिद्धिः ॥ १८ ॥

यदि कहो कि, प्रत्येक ही प्रावरण कार्य्य नहीं करसकता । इसका उत्तर यह है जो, संस्थानभेदसे जिनका पटभाव आविर्भूत हुआ है, उनकी प्रावरणार्थ क्रियाकारिता सिद्ध होती है । इसीप्रकार, कूर्म्मके अङ्ग सब कूर्म्म शरीरनिविष्ट होकर तिरोभूत एवं निःसृत होकर आविर्भूत होते हैं । इसप्रकार, कारणरूपी तन्तु प्रभृतिका अङ्गस्वरूप पटादि निःसृत होकर, आविर्भूत और उत्पन्न होता है, इसप्रकार कहा जाता है । और निविष्ट होकर तिरोभूत, अर्थात विनष्ट होता है, इत्यादि कहा जाता है । वस्तुतः, असत्की उत्पत्ति नहीं एवं सत्का विनाश नहीं होता । भगवद्गीतामें कहा है कि, असत्का भाव अर्थात उत्पत्ति नहीं, एवं सत्का अभाव अर्थात ध्वंस नहीं होता । इसीकारण, कार्य्यानुमानप्रयुक्त उस प्रधानकी सिद्धि होती है । १८ ॥

तदुक्तम्—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्य्यमिति ॥

नापि सतो ब्रह्मतत्त्वस्य विवर्त्तः प्रपञ्चः बाधानुपलम्भात् अधिष्ठानारोप्ययोश्चिज्जडयोः कलधौतरूप्यादिवत् सारूप्याभावेनारोपसम्भवाच्च। तस्मात् सुखदुःखमोहात्मकस्य तथाविधकारणमवधारणीयं तथा च प्रयोगः विमतं भावजातं सुखदुःखमोहात्मककारणकं तदन्वितत्वात् यद्रूपेणान्वीयते तत्तत्कारणकं यथा रुचकादिकं सुवर्णान्वितं सुवर्णकारणकं तथाचेदं तस्मात्तथेति ॥ १९ ॥

बाधाके अनुपलम्भवशात्; अधिष्ठानारोप्यचित और जड दोनोंके स्वर्ण रौप्यादि तुल्य सारूप्याभावसे आरोप सम्भवित होजानेसे, सत् स्वरूप ब्रह्मतत्त्व विवर्त्त प्रपञ्च नहीं। इस कारण, सुखदुःखमोहात्मककाही उसप्रकार कारण अवधारण करना होगा। और प्रयोग जैसे, विमत भावजात सुखदुःखमोहात्मकका कारण होता है। तदन्वितताही इसका कारण है। जिस २ द्वारा अन्वित होता है, वह २ उसका कारण होता है। जैसे रुचकादि सुवर्णान्वित होनेसे स्वर्णका कारण नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

तत्र जगत्कारणे येयं सुखात्मकता तत सत्त्वं, या दुःखात्मकता तद्रजः, या च मोहात्मकता तत्तम इति त्रिगुणात्मककारणसिद्धिः। तथाहि प्रत्येकं भावास्त्रैगुण्यवन्तोऽनुभूयन्ते यथा मैत्रदारेषु सत्यवत्यां मैत्रस्य सुखमाविरस्ति तं प्रति सत्त्वगुणप्रादुर्भावात्तत्सपत्नीनां दुःखम्। तां प्रति रजोगुणप्रादुर्भावात् तामलभमानस्य चैत्रस्य मोहो भवति तं प्रति तमोगुणसमुद्भवात् एवमन्यदपि घटादिकं लभ्यमानं सुखं करोति परैरपि ह्रियमाणं दुःखाकरोति उदासीनस्योपेक्षाविषयत्वेनोपतिष्टते उपेक्षाविषयत्वं नाम मोहः मुह वैचित्त्ये इत्यस्माद्धातोर्मोहशब्दनिष्पत्तेः उपेक्षणीयेषु चित्तवृत्त्यनुदयात् ॥ २० ॥

उनमें जगत्का कारणमें जो यह सुखात्मकता वही सत्व है जो दुःखात्मकता वही रजः एवं जो मोहात्मकता, वही तमः है इसप्रकार त्रिगुणात्म कारण सिद्ध होता है। उसी प्रकार, भावमात्रही त्रैगुण्यविशिष्ट होकर, अनुभवगोचर होता है। इसको उदाहरण जैसे, मैत्र-पत्नी सत्यवतीमें मैत्रका सुख आविर्भूत होता है। सत्त्वगुणका प्रादुर्भाव इसका कारण है। एवं तदीय सपत्नियोंके प्रति रजोगुणका प्रादुर्भाववशात् दुःख उत्पन्न होजाता है। उसको न पाकर, चैत्रको मोह होता है, उसके प्रति तमोगुणका प्रादुर्भावही इसका कारण है इसी प्रकार अन्यत्रभी जानो, घट आदि लभ्यमान होनेसे, सुखसमुद्भावन करता है. पीछे हरण करलेनेपर, दुःख उत्पन्न करता है। उपेक्षा विषयत्ववशात् उदासीनको दुःख उपस्थित होता है। उपेक्षा विषयत्व शब्दसे मोह लेना। वैचित्यरूप अर्थ प्रतिपादक मुहधातुसे मोहशब्द निष्पन्न होता है जिस कारण, उपेक्षणीय विषयमें चित्तवृत्तिका अनुदय होता है ॥ २० ॥

तस्मात् सर्वं भावजातं सुखदुःखमोहात्मकं त्रिगुणप्रधानकारणकमवगम्यते। तथाच श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रूयते-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजा जनयन्तीं सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य इति ॥ २१ ॥

इस कारण, सम्पूर्ण भावजात सुखदुःखमोहात्मक है एवं त्रिगुणप्रधान कारण कहकर परिज्ञात होता है। और श्वेताश्वतर उपनिषद्में कहा है;-एक अज लोहित, शुक्ल और कृष्ण भेदसे बहुतप्रजा समुद्भावन करता है। वे सबभी सरूप है ॥ २१ ॥

अत्र लोहितशुक्लकृष्णशब्दा रञ्जकत्वप्रकाशकत्वावरकत्व साधर्म्यात् रजःसत्त्वतमोगुणत्वप्रतिपादनपराः ॥ २२ ॥

यहां लोहित, शुक्ल और कृष्णशब्द रञ्जकत्व, प्रकाशकत्व और आवरकत्व साधर्म्यवशात्, यथाक्रम रज, सत्व और तमोगुणत्व प्रतिपादित करतेहैं ॥ २२ ॥

नन्वचेतनं प्रधानं चेतनानधिष्ठितं महदादिकार्य्ये न व्याप्रियते। अतः केनचिच्चेतनेनाधिष्ठात्रा भवितव्यं तथा च सर्वार्थदर्शी परमेश्वरः स्वीकर्त्तव्यः स्यादिति चेत् तदसंगतम् अचेतस्यापि प्रधानस्य प्रयोजनवशेन प्रवृत्त्युपपत्तेः। दृष्टञ्च अचेतनं चेतनानधिष्ठितं पुरुषार्थाय प्रवर्तमानं यथा वत्सवृद्ध्यर्थमचेतनं क्षीरं प्रव-

र्त्तते यथा जलमचेतनं लोकोपकाराय प्रवर्त्तते तथा च प्रकृतिरचेतनापि पुरुषविमोक्षाय प्रवर्त्स्यतीति ॥ २३ ॥

यदि कहो कि, प्रधान अचेतन है, सुतरां, चेतनके अधिष्ठान विना महत आदि कार्य्यमें व्यापृत नहीं हो सकते । सुतरां, कोई चेतन पदार्थ अवश्यही इसका अधिष्ठाता होगा । तो सर्व्वार्थदर्शी परमेश्वरको मानना पडता है । इसका उत्तर यह है जो, ऐसा मतवाद सङ्गत नहीं हो सकता । क्योंकि, प्रधान अचेतन होनेपर भी, प्रयोजनवशात उसकी प्रवृत्तिकी उपपत्ति होजाती है । एवं ऐसाभी देखागया कि, अचेतन चेतनके अधिष्ठान विनाही पुरुषार्थ सम्पादनमें प्रवर्त्तमान होता है । इसका दृष्टान्त क्षीर अचेतन होनेपरभी वत्सकी वृद्धिसम्पादनमें प्रवृत्ति होती है । अथवा जल अचेतन होनेपरभी लोकके उपकारार्थ प्रवर्त्तित होता है इसप्रकार, प्रकृति अचेतन होनेपरभी, पुरुषके मुक्तिसाधनमें प्रवृत्ति होगी ॥ २३ ॥

तदुक्तम्–

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्येति ॥ २४ ॥

उसीप्रकार कहाभी है, अज्ञक्षीर जैसे वत्सके विवृद्धिसाधनमें प्रवृत्त होता है पुरुषके मोक्ष निमित्तभी प्रधानकी तद्रूप प्रवृत्ति होती है ॥ २४ ॥

यस्तु परमेश्वरः करुणया प्रवर्त्तक इति परमेश्वरास्तित्ववादिनां डिण्डिमः स प्रायेण गतः विकल्पानुपपत्तेः । स किं सृष्टेः प्राक् प्रवर्त्तते सृष्ट्युत्तरकाले वा । आद्ये शरीराद्यभावेन दुःखानुत्पत्तौ जीवानां दुःखप्रहाणेच्छानुपपत्तिः । द्वितीये परस्पराश्रयप्रसंगः करुणया सृष्टिः सृष्ट्या च कारुण्यमिति ॥ २५ ॥

परमेश्वर करुणावशतः प्रवर्त्तक होता है इसप्रकार कहकर परमेश्वरका अस्तित्ववादिगण जो डंका बजाते हैं, वह प्रायः गया क्योंकि, उसमें विकल्पकी अनुपपत्ति है, वह परमेश्वर सृष्टिके पूर्व्व या सृष्टिके उत्तरकालमें प्रवर्त्तित होते हैं सृष्टिके पहिले होनेसे शरीरादिके अभावमें दुःखकी अनुत्पत्तिमें जीवनका दुःखप्रहाणकी इच्छा अनुपपत्ति होती है । और सृष्टिके पीछे होनेसे, करुणाद्वारा सृष्टि एवं सृष्टिद्वारा करुणा, इसप्रकार परस्पराश्रय प्रसंग संघटित होता है ॥ २५ ॥

तस्मादचेतनस्यापि चेतनानधिष्ठितस्य प्रधानस्य महदादिरूपेण परिणामः पुरुषार्थप्रयुक्तः प्रधानपुरुषसंयोगनिमित्तः ॥ २६ ॥

इसकारण, प्रधान अचेतन होनेपर भी, चेतनका अधिष्ठान विना महत् आदि रूपसे परिणत होता है । यह पारिणाम पुरुषार्थवशात् एवं प्रधान पुरुषके संयोग निमित्तहै ॥ २६ ॥

यथा निर्व्यापारस्याप्ययस्कान्तस्य सन्निधानेन लोहस्य व्यापारः तथा निर्व्यापारस्य पुरुषस्य सन्निधानेन प्रधानव्यापारो युज्यते। प्रकृतिपुरुषसम्बन्धश्च पङ्ग्वन्धवत्परस्परापेक्षानिबन्धनः॥२७॥

जैसे व्यापारशून्य अयस्कान्तके सन्निधानसे लोहाका व्यापार सम्पन्न होता है । उसी प्रकार, व्यापारविहीन पुरुषका सन्निधानवशात् प्रधानका व्यापार विनिष्पन्न होता है । प्रकृति पुरुषका सम्बन्ध, पङ्गु और अन्धेकी नाई परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा करता है ॥ २७ ॥

प्रकृतिर्हि भोग्यतया भोक्तारं पुरुषमपेक्षते । पुरुषोऽपि भेदाग्रहाद्बुद्धिच्छायापत्त्या तद्गतं दुःखत्रयं वारयमाणः कैवल्यमपेक्षते । तत प्रकृतिपुरुषविवेकनिबन्धनं न च तदन्तरेण युक्तमिति कैवल्यार्थं पुरुषः प्रधानमपेक्षते । यथा खलु कौचित् पङ्ग्वन्धौ पथि सार्धेन गच्छन्तौ दैवकृतादुपप्लवात् परित्यक्तसार्थौ मन्दमन्दमितस्ततः परिभ्रमन्तौ भयाकुलौ दैववशात् संयोगमुपगच्छेतां तत्र चान्धेन पंगुः स्कन्धमारोपितः ततः पंगुदर्शितेन मार्गेणान्धः समीहितं स्थानं प्राप्नोति । पंगुरपि स्कन्धाधिरूढः तथा परस्परापेक्षप्रधानपुरुषनिबन्धनः सर्गः ॥ २८ ॥

प्रकृति भोग्यता प्रयुक्त भोक्ता पुरुषकी अपेक्षा करता है । पुरुषभी तद्गत दुःखत्रय निवारण करते हुए, कैवल्यकी अपेक्षा करता है । वह प्रकृति पुरुष दोनोंका विवेक निबन्धन, इसके विना मुक्त नहीं होता । इसप्रकार कैवल्यार्थ पुरुष और प्रधान दोनोंकी अपेक्षा करता है । जैसे कोई पंगु और अन्ध, मार्गमे एक साथ चलते चलते दैवात् उत्पातवशात् परस्पर स्वार्थ त्याग और भयाकुल, इधर उधर धीरे धीरे परिभ्रमण करते हुए अन्तमें दैवसंयोगसे अन्धेने लंगडेको अपने कान्धेपर रख लिया, और उस लंगड़ेके बतलाये हुए मार्गसे अपने इष्टस्थानको अन्धा पहुंचता है एवं लंगड़ा भी कन्धेपर चढ़कर अभीष्टस्थानको गमन करता है इसी प्रकार सृष्टि व्यापारभी परस्परापेक्ष प्रधान पुरुष निबन्धन है ॥ २८ ॥

यथोक्तम्–

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि सम्बन्धस्तत्कृतः सर्ग इति ॥ २९ ॥

उसी प्रकार, कहा है, पुरुषके दर्शनार्थ और प्रधानके कैवल्यार्थ पंगु और अन्धेकी नाईं, इन दोनोंका सम्बन्धसे सृष्टि व्यापार चलता है ॥ २९ ॥

ननु पुरुषार्थनिबन्धना भवतु प्रकृतेः प्रवृत्तिः निवृत्तिस्तु कथमुपपद्यत इति चेदुच्यते यथा भर्त्रा दृष्टदोषा स्वैरिणी भर्त्तारं पुनर्नोपैति यथा वा कृतप्रयोजना नर्त्तकी निवर्तते तथा प्रकृतिरपि ॥ ३० ॥

अच्छा, मानाकि, प्रकृतिकी प्रवृत्ति पुरुषार्थ निबन्धन है। किन्तु निवृत्ति किसप्रकार हो जाती है? इसका उत्तर यह है भर्त्ताके दोषको देखकर स्वैरिणी स्त्री जिसप्रकार पुनः अपने भर्त्ताके समीप नहीं जाती, अथवा कृत प्रयोजना नर्त्तकी जैसे विनिवृत्त होती है, प्रकृति भी उसीप्रकार भावापन्न होती है ॥ ३० ॥

यथोक्तम्—

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात् ।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्त्तते प्रकृतिरिति ॥ ३१ ॥

उसी प्रकार कहा है; नर्त्तकी जैसे रङ्ग (नाच) दिखलाकर, नृत्यसे निवृत्त होती है प्रकृतिभी उसी प्रकार पुरुषको प्रदर्शन पूर्वक विनिवृत्त होकरती है ॥ ३१ ॥

एतदर्थं निरीश्वरसांख्यशास्त्रप्रवर्त्तककपिलानुसारिणां मतमुपन्यस्तम् ॥ ३२ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे सांख्यदर्शनं समाप्तम् ॥ १४ ॥

इसी कारण, निरीश्वर सांख्यशास्त्रके प्रवर्त्तक कपिलानुसारियोंका मत उपन्यस्त हुआ ॥ ३२ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे सांख्यदर्शन समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पातञ्जलदर्शनम् ॥ १५ ॥

साम्प्रतं सेश्वरसांख्यप्रवर्त्तकपतञ्जलिप्रभृतिमुनिमतमनुवर्त्तमानानां मतमुपन्यस्यते ॥ १ ॥

अधुना, जो लोग सेश्वर सांख्यप्रवर्त्तक पतञ्जलि प्रभृति मुनियोंके मतानुयायी हैं उन लोगोंके मतके विषयमें कहाजाता है ॥ १ ॥

तत्र सांख्यप्रवचनापरनामधेयं योगशास्त्रं पतञ्जलिप्रणीतं पादचतुष्टयात्मकम् । तत्र प्रथमे पादे अथ योगानुशासनमिति योगशास्त्रारम्भप्रतिज्ञां विधाय योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इत्यादिना योगलक्षणमभिधाय समाधिं सप्रपञ्चं निरदिक्षत् भगवान् पतञ्जलिः । द्वितीये तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग इत्यादिना व्युत्थितचित्तस्य क्रियायोगं यमादीनि पञ्च बहिरंगानि साधनानि । तृतीये देशबन्धश्चित्तस्य धारणेत्यादिना धारणाध्यानसमाधित्रयमन्तरंगं संयमपदवाच्यं तत्रावान्तरफलं विभूतिजातम् । चतुर्थे जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धय इत्यादिना सिद्धिपञ्चकप्रपञ्चनपुरःसरं परमं प्रयोजनं कैवल्यम् । प्रधानानीति पञ्चविंशति तत्त्वानि प्राचीनान्येव सम्मतानि षड्विंशस्तु परमेश्वरः क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषः स्वेच्छया निर्माणकायमधिष्ठाय लौकिकवैदिकसम्प्रदायप्रवर्त्तकः संसारांगारे तप्यमानानां प्राणभृतामनुग्राहकश्च ॥ २ ॥

उनमें पतञ्जलिप्रणीत योगशास्त्र ४ पादयुक्त है । उसका दूसरा नाम सांख्यप्रवचन है । उसके प्रथमपादमें अथ योगानुशासनं, ऐसा कहकर, योगशास्त्रके आरम्भ करनेकी प्रतिज्ञा करके योगशब्दसे चित्तवृत्ति निरोध इत्यादि विधानसे योगका लक्षण निर्देश सहकारसे भगवान पतञ्जलिने समाधि प्रपञ्चका उल्लेख किया है । द्वितीयपादमें, तपः स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, क्रियायोग इत्यादि निर्देशपूर्व्वक व्युत्थित चित्तका क्रियायोग यमादि पांच बहिरंग साधनका विवरण किया गया है । तृतीयपादमें देशबन्ध चित्तकी धारणा इत्यादि उपन्यास सहकारसे संयम शब्दवाच्य धारणा, ध्यान, समाधित्रय एवं उसका अवान्तर फलस्वरूप विभूति जात निर्देश किया है । चतुर्थपादमें जन्म, औषधि, मन्त्र, जप और समाधिजन्य सिद्धि हुई, इत्यादि विधानसे सिद्धिप्रपञ्चक प्रपञ्चन पुरः सर परमप्रयोजन कैवल्यकीर्तित हुआ है । एवं प्रधान प्रभृति प्राचीन २५ तत्त्व स्वीकारकर परमेश्वरको २६ वां तत्त्वरूपसे निर्देश किया है । एवं कहा है, वह परमेश्वर क्लेश कर्म्म विपाक और आशय इन सबसे परामृष्ट नहीं है । वह स्वेच्छासे निर्म्माण शरीरमें अधिष्ठान करके लौकिक और वैदिक सम्प्रदायकी प्रवर्तन करते हैं एवं संसाररूप अङ्गारमें तप्यमान प्राणिगणके प्रति अनुग्रह वितरण करता है ॥ २ ॥

ननु पुष्करपलाशवन्निर्लेपस्य तस्य तापः कथमुपपद्यते येन परमेश्वरोऽनुग्राहकतया कक्षीक्रियते इति चेदुच्यते तापकस्य रजसः

सत्त्वमेव तप्यं बुद्ध्यात्मना परिणमते इति सत्त्वे परितप्यमाने तमोवशेन तदभेदावगाहिपुरुषोऽपि तप्यत इत्युच्यते ॥ ३ ॥

परमेश्वर, कमलपत्रकी नाईं, निर्लिप्त है। उसका किसप्रकार तापसम्भव हो सकता है जो उसको अनुग्राहकता करके माना गया है। इस बातका उत्तर यह है जो रजोगुण तापसमुत्पादन करता है। एवं सत्वगुण तत्कर्तृक तप्य होता है । इसप्रकार सत्वगुण तप्यमान होनेसे उसके सहित अभेदमें अधिष्ठित पुरुषभी तमोवशात् तप्यमान होता इसप्रकार कहाहै ॥ ३ ॥

तदुक्तमाचार्य्यैः—

सत्त्वं तप्यं बुद्धिभावेन वृत्तं
भावा ते वा राजसास्तापकास्ते ।
तप्याभेदग्राहिणी तामसी वा
वृत्तिस्तस्यां तप्य इत्युक्तमात्मेति ॥ ४ ॥

आचार्य्योंने भी निर्देश किया है कि बुद्धिभावद्वारा सत्वगुण तप्यमान होता है राजसभाव समूह इस तापका उद्भावक है ॥ ४ ॥

पतञ्जलिनाप्युक्तम् ।

अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुभवतीति ॥

भोक्तृशक्तिरिति चिच्छक्तिरुच्यते । सा चात्मैव परिणामिन्यर्थे बुद्धितत्त्वे प्रतिसंक्रान्तेव प्रतिबिम्बिते तद्वृत्तिमनुभवतीति बुद्धौ प्रतिबिम्बिता सा चिच्छक्तिर्बुद्धिच्छायापत्त्या बुद्धिवृत्त्यनुकारवतीति भावः तथा शुद्धोऽपि पुरुषः प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति तमनुपश्यन्नतदात्मापि तदात्मक इव प्रतिभासत इति ॥ ५ ॥

पतञ्जलिने कहा है भोक्तृशक्ति अपरिणामिनी और अप्रतिसंक्रमा है परिणामी अर्थमें प्रति संक्रान्त होनेसे उस वृत्तिको अनुभव करताहै । यहां भोक्तृशक्ति शब्दसे यही आत्मा परिणामी अर्थ बुद्धितत्त्व है, इस बुद्धितत्त्वके प्रति संक्रान्त अर्थात् प्रतिबिम्बित होनेपर, उस वृत्तिका अनुभव करता है, क्या बुद्धिमें प्रतिबिम्बिता होकर, यह चित् शक्ति बुद्धि छाया प्राप्ति प्रकारसे बुद्धिवृत्तिका अनुकरण करती है । इसप्रकार, पुरुष शुद्ध होनेपर, बौद्ध प्रत्यय अनुदर्शन करता है । अनुदर्शन करते हुए, तादात्म्य नहीं होनेपर भी, उस आत्मासे नहीं प्रतीत होता है ॥ ५ ॥

इत्थं तप्यमानस्य पुरुषस्यादरनैरन्तर्य्यदीर्घकालानुबन्धियमनियमाद्यष्टांगयोगानुष्ठानेन परमेश्वरप्रणिधानेन च सत्त्वपुरुषान्यताख्यातावनुपप्लवायां जातायामविद्यादयः पञ्च क्लेशाः समूलकापं कषिता भवन्ति । कुशलाकुशलाश्च कर्माशयाः समूलघातं हता भवन्ति । ततश्च पुरुषस्य निर्लेपस्य कैवल्येनावस्थानं कैवल्यमिति सिद्धम् ॥ ६ ॥

इसप्रकार, पुरुष तप्यमान होनेपर आदर नैरन्तर्य्य और दीर्घ कालानुबन्धी यम नियम आदि अष्टांग योगानुष्ठान एवं परमेश्वर प्रणिधान सहायसे उसका सत्व पुरुषान्यताख्याति अनुपप्लव होता है, तब अविद्यादि पांच क्लेश समूल विनष्ट होते हैं, एवं कुशलाकुशल कर्माशय समस्त समूलघात ध्वंस प्राप्त होता है। इससमय पुरुष निर्लिप्त होकर, कैवल्य अवस्थान करता है । इसीका नाम कैवल्य है ॥ ६ ॥

तत्राथ योगानुशासनमिति प्रथमसूत्रेण प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यंगं विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिरूपमनुबन्धचतुष्टयं प्रतिपाद्यते ॥ ७ ॥

इनमें, अथ योगानुशासन; इत्यादि प्रथमसूत्रमें प्रेक्षावानोंकी प्रवृत्ति अंगस्वरूप विषय प्रयोजन सम्बन्ध, और अधिकाररूप अनुबन्ध चतुष्टय प्रतिपादित होता है ॥ ७ ॥

अत्राथशब्दोऽधिकारार्थः स्वीक्रियते । अथशब्दस्यानेकार्थत्वे संभवति कथमारम्भार्थत्वपक्षे पक्षपातः सम्भवेत् । अथशब्दस्य मङ्गलाद्यनेकार्थत्वं नामलिंगानुशासने नानुशिष्टं मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथेति ॥ ८ ॥

यहां अथ शब्द अधिकारार्थ कहकर स्वीकृत होता है । अथ शब्दका अनेक अर्थसम्भव होता है । ऐसे स्थानमें किसप्रकार आरम्भार्थत्व पक्षमें पक्षपात सम्भावित हो सकता । नामलिंगानुशासनमें अथशब्दका मंगलादि अनेक अर्थ अनुशिष्ट हुए हैं । जैसे, मंगल, अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न, कार्त्स्न्य और अथ ये सब अथशब्दका वाच्य है ॥ ८ ॥

ननु प्रश्नकार्त्स्न्ययोरसम्भवेऽपि आनन्तर्य्यमंगलपूर्वप्रकृतापेक्षारम्भलक्षणानाञ्चतुर्णामर्थानां सम्भवादारम्भार्थत्वानुपपत्तिरिति चेन्मैवं मंस्थाः विकल्पासहत्वात् आनन्तर्य्यमथशब्दार्थ इति पक्षे यतः कुतश्चिदानन्तर्य्यं पूर्ववृत्तिभावसाधारणात् कारणात्त-

नन्तर्य्यं वा । न प्रथमः, न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म-कृदिति न्यायेन सर्वो जन्तुः किञ्चित् कृत्वा किञ्चित् करोत्येवेति तस्याभिधानमन्तरेणापि प्राप्ततया तदर्थाथशब्दप्रयोगवैयर्थ्यप्रसक्तेः । न चरमः, शमाद्यनंतरं योगस्य प्रवृत्तावपि तस्यानुशासनप्रवृत्त्यनुबन्धतया शब्दतः प्राधान्याभावात् ॥ ९॥

यहां प्रश्न और कात्स्न्र्य इस दो प्रकारके अर्थका असम्भव होनेपरभी अवशिष्ट अर्थचतुष्टय का सम्भववशतः आरम्भार्थत्वकी अनुपपत्ति होती है । ऐसा समझोभी नहीं । क्योंकि, यह विकल्पसह नहीं । अथ शब्दका अर्थ आनन्तर्य है । ऐसा कहनेसे, यही जिज्ञास्य है, जो कहींसे आनन्तर्य, या पूर्ववृत्तिभाव साधारण कारणसे आनन्तर्य प्रथम पक्ष अर्थात् जो कहींसे आनन्तर्य नहीं हो सकता है । क्योंकि, जब कोई व्यक्ति क्षणकालभी कर्म्म न करके नहीं रहसकता अर्थात् विनाकर्म्म किये क्षणभरभी नहीं ठहर सकता, इत्यादिके तुल्य सब जन्तु कुछ २ किया करता है । इसप्रकार उसका अभिधान व्यतिरेकभी प्राप्त होनेपर, उसका अर्थ अथशब्दका प्रयोग वैफल्यदोष घटता है । द्वितीयपक्षभी नहीं मानाजासकता । क्योंकि शमादिके अनन्तर योगकी प्रवृत्ति होनेसेभी उसके अनुशासन प्रवृत्तिका अनुबन्धतावशात् शब्दतः प्राधान्यका अभाव घटता है ॥ ९ ॥

न च शब्दतः प्रधानभूतस्यानुशासनस्य शमाद्यानन्तर्य्यमथशब्दार्थः किं न स्यादिति वदितव्यम्। अनुशासनमिति हि शास्त्रमाह अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलसहितो योगो येन तदनुशासनमिति व्युत्पत्तेः। अनुशासनस्य च तत्त्वज्ञानचिख्यापयिषानन्तरभावित्वेन शमदमाद्यानन्तर्य्यनियमाभावात् जिज्ञासाज्ञानयोस्तु शमाद्यानन्तर्य्यमाम्नायते । तस्माच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धावित्तः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येदित्यादिना । नापि तत्त्वज्ञानचिख्यापयिषानन्तर्य्यमथशब्दार्थः तस्य सम्भवेऽपि श्रोतृप्रतिपत्तिप्रवृत्त्योरनुपयोगेनानभिधेयत्वात ॥ १० ॥

होता है, उसका नाम अनुशासन है इसप्रकार व्युत्पत्ति होती है। विशेषतः अनुशासन तत्वज्ञान व्याख्याकी इच्छाका अनन्तरभावी इसकारण शमदमादिके आनन्तर्य नियमका अभाव संघटित होता है । किन्तु जिज्ञासा और ज्ञान दोनोंका शमदमादिके आनन्तर्य आम्नात होता है । अतएव, शान्त, दान्त, उपरत तितिक्षु श्रद्धान्वित और समाहित होकर आत्मामें आत्माको अवलोकन करना चाहिये इत्यादिद्वारा भी तत्वज्ञान कहनेकी इच्छाका आनन्तर्यही अथशब्दका अर्थ है ॥ १० ॥

तथापि निःश्रेयसहेतुतया योगानुशासनं प्रमितं न वा । आद्ये तदभावेऽपि उपादेयत्वं भवेत् । द्वितीये तदभावेऽपि हेयत्वं स्यात् । प्रमितं चास्य निःश्रेयसनिदानत्वम् अध्यात्मयोगाधिगमेन चैवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहातीति श्रुतेः समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसीति स्मृतेश्च । अतएव शिष्यप्रश्नतपश्चरणरसायनाद्युपयोगानन्तर्य्यं पराकृतम् ॥ ११ ॥

इससमय जिज्ञासा यह है जो योगानुशासन निःश्रेयसका हेतुतावशतः प्रमित या अप्रमित है । प्रमित होनेसे, उसके अभावमेंभी उपादेयत्व होता है। और अप्रमित होनेसे, उसके अभावमेंभी हेयत्व होता है । इसका निःश्रेयस निदानत्व प्रमित क्योंकि उसकेद्वारा अध्यात्म योगाधिगम होता है । उसीप्रकार श्रुतिमेंभी कहा है धीर व्यक्ति इसप्रकार मननपूर्वक हर्ष शोक परिहार करता है । स्मृतिमेंभी निर्देश है समाधिमें बुद्धि अचला होनेसे योग प्राप्त होगा ॥ ११ ॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यत्र तु ब्रह्मजिज्ञासायाः अनधिकार्यत्वेनाधिकार्य्यार्थत्वं परित्यज्य साधनचतुष्टयसंपत्तिविशिष्टाधिकारिसमर्पणाय शमदमादिवाक्यविहिताच्छमादेरानन्तर्य्यमथशब्दार्थ इति शङ्कराचार्य्यैर्निरटङ्कि ॥ १२ ॥

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, इत्यादि स्थानमें ब्रह्मजिज्ञासाका अनधिकार्य्यत्ववशतः अधिकार्य्यार्थत्व परित्यागपूर्वक साधनचतुष्टय सम्पत्तिविशिष्ट अधिकारि समर्पणार्थ शमदमादि वाक्यविहित शमादिका आनन्तर्यही अथ शब्दार्थ शङ्कराचार्य्यने इसप्रकार मीमांसा किई है ॥ १२ ॥

अथ मा नाम भूदानन्तर्य्यार्थोऽथशब्दः मङ्गलार्थः किं न स्यात् न स्यान्मंगलस्य वाक्यार्थे समन्वयाभावात् । अगर्हिताभीष्टावाप्तिर्मङ्गलम् । अभीष्टं च सुखावाप्तिदुःखपरिहाररूपतयेष्टं

योगानुशासनस्य च सुखदुःखनिवृत्त्योरन्यतरत्वाभावान्न मंगलता । तथा च योगानुशासनं मंगलमिति न संपद्यते मृदंगध्वनेरिवाथशब्दश्रवणस्य कार्य्यतया मंगलस्य वाच्यत्वलक्ष्यत्वयोरसंभवाच्च यथार्थिकार्थो वाक्यार्थे निविशते तथा कार्य्यमपि निविशेत अपदार्थत्वाविशेषात् । पदार्थे पदार्थ एव हि वाक्यार्थे समन्वीयते अन्यथा शब्दप्रमाणकानां शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव पूर्य्यैति मुद्राभंगकृतो भवेत् ॥ १३ ॥

चाहे अथ शब्द आनन्तर्यार्थक न हो पर मङ्गलार्थक क्यों नहीं होगा ? इसका उत्तर यह है जो मङ्गलशब्दके वाक्यार्थमें समन्वयके अभाववशतः मङ्गलार्थ नहीं होसकता मङ्गलशब्दसे अगर्हित अभीष्टप्राप्ति सुखकी अवाप्ति और दुःखकी परिहाररूपताद्वारा जो इष्ट है उसीको अभीष्ट कहतेहैं । सुख और दुःख दोनोंहीकी निवृत्तिवशतः अन्यतरत्वका अभाव होजानेसे योगानुशासनकी मङ्गलता नहीं सिद्ध होती । और योगानुशासनशब्दसे मङ्गल यह किसीक्रमसेभी सङ्गत नहीं होसकता । इसका कारण यह है जो मृदङ्गध्वनिकीनाई अथशब्द सुननेकी कार्यतावशतः मङ्गलशब्द वाच्य वा लक्ष्य कुछभी होना सम्भव नहीं । जैसे अर्थिकार्यवाक्यमें निविष्ट होताहै कार्य्यभी उसीप्रकार निविष्ट होता है अन्यथा शब्द प्रमाणकसमूहकी शाब्दीआकांक्षा शब्दद्वाराही पूरणीय होती है, इसप्रकार मुद्राभंग विहित होताहै ॥ १३ ॥

ननु प्रारिप्सितप्रबन्धपरिसमाप्तिपरिपन्थिप्रत्यूहव्यूहशमनाय शिष्टाचारपरिपालनाय च शास्त्रारम्भे मंगलाचरणमनुष्ठेयम् । मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते आयुष्मत्पुरुषकाणि वीरपुरुषकाणि च भवन्तीत्यभियुक्तोक्तेः । भवति च मंगलार्थोऽथशब्दः । ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभाविति स्मृतिसम्भवात । तथाच वृद्धिरादैजित्यादौ वृद्ध्यादिशब्दवदथशब्दो मंगलार्थः स्यादिति चेन्मैवं भाषिष्ठाः अर्थान्तराभिधानाय प्रयुक्तस्याथशब्दस्य वीणावेण्वादिध्वनिवच्छ्रवणं मंगलफलत्वोपपत्तेः ॥ १४ ॥

यदि कहो कि, प्रारिप्सित प्रबन्धकी परिसमाप्तिका प्रतिकूल विघ्नपरम्पराके प्रशमन एवं शिष्टाचार परिपालन, इन दोनोंप्रकारके व्यापार सम्पादनार्थ शास्त्रोंके आरम्भमें मंगलाचरण अनुष्ठान करना पड़ताहै उसीप्रकार पण्डितोंने कहा है कि, शास्त्रोंकी आदिमें मंगल, मध्यमें मंगल, अन्तमें मंगल, विधान करना कर्त्तव्य है । इसकारण अथ शब्द मंगलार्थ है । स्मृतिमें कहाहै । पहिले ब्रह्माकेकण्ठ भेदकरके ओङ्कार और अथ ये दो शब्द निकलेहैं । इस कारण, ये दोनोंही मांगलिकहैं । और वृद्धिरादैच् इत्यादिमें वृद्ध्यादि शब्दकी नाईं, अथ शब्द मंगलार्थ होताहै । ऐसा कहनाभी नहीं । क्योंकि, अर्थान्तर अभिधानार्थ प्रयोजित अथशब्द सुननेसे वीणावेण्वादिध्वनिकी नाईं मंगलफल समुद्भावन करताहै ॥ १४ ॥

अथार्थान्तरारम्भवाक्यार्थधीफलकस्याथशब्दस्य कथमन्यफलकतेति चेन्न अन्यार्थनीयमानोदकुम्भोपलम्भवत् तत्सम्भवात् । न च स्मृतिव्याकोपः मांगलिकाविति मंगलप्रयोजकत्वविवक्षया प्रवृत्तेः । नापि पूर्वप्रकृतापेक्षोऽथशब्दः फलत आनन्तर्य्याव्यतिरेकेण प्रागुक्तदूषणानुषङ्गात् ॥ १५ ॥

यदि कहो कि, अर्थान्तरका आरम्भ वाक्यार्थ धीफलक अथ शब्दका किसप्रकार अन्यफलकत्व सम्भव होसकता ? इसका उत्तर यह है जो अन्यार्थ नीयमान उदक कुम्भवत् वह सम्भवित होता है । उसमें पूर्वोक्त स्मृतिका व्यभिचार नही होसकता । स्मृतिमें जो, माङ्गलिक इसप्रकार पद प्रयोजित हुआ है, सो मङ्गल प्रयोजकत्व विवक्षाहीमें कहा है । फलतः आनन्तर्य्यका अव्यतिरेकमें पूर्वोक्त दोष घटता है । इसकारण अथ शब्द पूर्वप्रकृतिका अपेक्षी नही होसकता ॥ १५ ॥

किमयमथशब्दोऽधिकारार्थः अथानन्तर्य्यार्थ इत्यादिविमर्शवाक्ये पक्षान्तरोपन्यासे तत्सम्भवेऽपि प्रकृते तदसम्भवाच्च । तस्मात्पारिशेष्याददधिकारपदवेदनीयप्रारम्भार्थोऽथशब्द इति विशेषो भाष्यते ॥ १६ ॥

यह अथ शब्दसे अधिकार या आनन्तर्य बोध होता है, इत्यादि विमर्श वाक्यमें वह सम्भव होनेसेभी, असम्भव होता है इसीकारण, परिशेषसे विशेष करके, कहा है अथ शब्दसे अधिकार पदवाच्य प्रारम्भ बोध पड़ता है ॥ १६ ॥

अथैष ज्योतिरथैष विश्वज्योतिरित्यत्राथशब्दः क्रतुविशेषप्रारम्भार्थः परिगृहीतो यथा अथशब्दानुशासनमित्यत्राथशब्दो

व्याकरणशास्त्राधिकारार्थः। तदभापि व्यासभाष्ये योगसूत्रविवरणपरे अथेत्ययमधिकारार्थः। प्रयुज्यत इति तद् व्याचख्यौ वाचस्पतिः। तस्मादयमथशब्दोऽधिकारद्योतको मंगलार्थश्चेति सिद्धमिति ॥ १७ ॥

अथैष ज्योतिः एवं अथैष विश्वज्योतिः इत्यादि स्थानमें अथ शब्द क्रतुविशेष आरम्भार्थ रूपसे परिगृहीत हुआ है। जैसे, अथ शब्दानुशासन, इत्यादि स्थलमें अथशब्दसे व्याकरण शास्त्रका अधिकार बूझ पड़ता है। योगसूत्रका विवरणपर व्यासभाष्यमें सो कहा है, अथ शब्द अधिकारार्थ प्रयोजित हुआ है। वाचस्पतिने इसप्रकार व्याख्या किया है। अतएव, अथ शब्दसे अधिकार और मङ्गल दोनोंही ज्ञात होता है, यह सिद्ध हुआ ॥ १७ ॥

तदित्थममुष्याथशब्दस्याधिकारार्थत्वपक्षे शास्त्रेण प्रस्तूयमानस्य योगस्योपवर्त्तनात् समस्तशास्त्रतात्पर्य्यव्याख्यानेन शास्त्रस्य सुखावबोधप्रवृत्तिरास्तामित्युपपन्नम् ॥ १८ ॥

इसकारण, इसप्रकार इस अथ शब्दका अधिकारार्थत्व पक्षमें शास्त्रद्वारा प्रस्तूयमान योगका उपावर्त्तन होनेसे समस्त शास्त्र तात्पर्य्यका व्याख्यानद्वारा शास्त्रकी सुखबोधता प्रवृत्तिभी उपपन्न हुई ॥ १८ ॥

ननु हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातन इति याज्ञवल्क्यस्मृतेः पतञ्जलिः कथं योगस्य शासितेति चेदद्धा अतएव तत्र तत्र पुराणादौ विशिष्य योगस्य विप्रकीर्णतया दुर्ग्राह्यार्थत्वं मन्यमानेन भगवता कृपासिन्धुना फणिपतिना सारं संजिघृक्षुणा अनुशासनमारब्धं न तु साक्षाच्छासनम् ॥ १९ ॥

यदि कहो कि, हिरण्यगर्भही योगका वक्ता दूसरा कोई नहीं। याज्ञवल्क्यस्मृतिमें इस प्रकार निर्देश किया है। सुतरां पतञ्जलि किसप्रकार योगके शासिता होसकते हैं ? इसका उत्तर यह है जो, तस २ पुराण आदिमें योगकी विप्रकीर्णतावशतः अर्थबोध होना दुष्कर है, ऐसा समझकर, कृपासिन्धु भगवान फणिपतिने सारसंग्रह वासनामें अनुशासन आरम्भ किया है, साक्षात् शासन नहीं ॥ १९ ॥

यदायमथशब्दोऽधिकारार्थः तदेवं काव्यार्थः सम्पद्येत योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यमिति तत्र शास्त्रे व्युत्पाद्यमानतया योगः ससाधनः सफलो विषयः तद्व्युत्पादनमवान्तरफलं

व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं परमप्रयोजनं शास्त्रयोगयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः योगस्य कैवल्यस्य च साध्यसाधनाभावलक्षणः सम्बन्धः । स च श्रुत्यादिप्रसिद्ध इति प्रागेवावादिषम् । मोक्षमपेक्षमाणाः श्रवणाधिकारिण इत्यर्थं सिद्धम् ॥ २० ॥

अथशब्द अधिकारार्थ होनेसे, इसप्रकार वाक्यार्थ होता है, योगानुशासन शास्त्र अधिकृत अर्थात कहना चाहिये, उस शास्त्रमें साधन और फलके सहित योग व्युत्पादित हुआ है, इसकारण योगही विषय। उसका व्युत्पादन अवान्तर फल कैवल्य इस व्युत्पादितयोगका परम प्रयोजनहै। शास्त्र एवं योग दोनोंमें प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्बन्धहै। कैवल्य दोनों साध्य साधन भावरूप सम्बन्धहै। वह श्रुत्यादिमें प्रसिद्धहै। पूर्वेही सो कहागया है ॥२०॥

न चाथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यादावधिकारिणोऽर्थतः सिद्धिराशंकनीया तत्राथशब्देनानन्तर्य्याभिधाने प्रणाडिकया अधिकारिसमर्पणसिद्धावार्थिकत्वशङ्कानुदयात् । अत एवोक्तं श्रुतिप्राप्ते प्रचरणादीनामनवकाश इति । अस्यार्थः यत्र हि श्रुत्या अर्थो न लभ्यते तत्रैव प्रकरणादयोऽर्थं समर्पयन्ति नेतरत्र । यत्र तु शब्दादेवार्थस्योपलम्भः तत्र नेतरस्य सम्भवः ॥ २१ ॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, इत्यादिस्थलमें अधिकारीकी अर्थसिद्धि आशङ्का नहीं कियी जासकती। यहां अथशब्दसे आनन्तर्य अभिहित होनेसे, प्रणालीक्रमसे अधिकारी समर्पण सिद्ध हुआ है। इसकारण, आर्थिकत्व शङ्काका उदय नहीं होसकता । इसकारण कहाहै, श्रुति प्राप्त होनेसे प्रकरणादिका अनवकाश इसका अर्थ यह है जो, जिस स्थलमें श्रुतिद्वारा अर्थलाभ होता नहीं, उसी स्थानमें प्रकरणादि अर्थसमर्पण करताहै, अपरत्र नहीं किन्तु जिसस्थानमें शब्दसेही अर्थकी उपलब्धि होती है उस स्थानमें इतरका सम्भव सिद्ध नहीं होता ॥ २१ ॥

किं प्रबोधिन्या श्रुत्या बोधितेऽर्थे तद्विरुद्धार्थं प्रकरणादि समर्पयति अविरुद्धं वा न प्रथमः विरुद्धार्थबोधकस्य तस्य बाधितत्वात् । न चरमः वैयर्थ्यात्तदाह श्रुतिलिंगवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति—

बाधिकैव श्रुतिर्नित्यं समाख्या बाध्यते सदा ।
मध्यमानान्तु बाध्यत्वं बाधकत्वमपेक्षयेति च ॥

तस्माद्विषयादिमत्वाद् ब्रह्मविचारकशास्त्रवद् योगानुशासनं शास्त्रमारम्भणीयमिति स्थितम् ॥ २२ ॥

शीघ्रबोधसम्पादिनीश्रुतिद्वारा अर्थबोधित होनेसे, उसका विरुद्धार्थ प्रकरणादिसमर्पण करता है, या अविरुद्ध अर्थ प्रतिपादित करता है, प्रथमपक्ष ग्राह्य नहीं होसकता । इसका कारण यहहै कि, विरुद्धार्थबोधिक उसका बाध्य होजाताहै । द्वितीयपक्षभी संगत नहीं होता। क्योंकि, उसमें वैयर्थ्य घटताहै । उसीप्रकार कहा है, श्रुति नित्यही बाधिका और समाख्या सदा बाधित होतीहै। इसकारण, ।विषयादिसम्पन्नतावशतः ब्रह्मविचारक शास्त्रकीनाई योगानुशासनशास्त्र आरम्भणीय है यह मीमांसित हुआ ॥ २२ ॥

ननु व्युत्पाद्यमानतया योग एवात्र प्रस्तुतो न शास्त्रमिति चेत् सत्यं प्रतिपाद्यतया योगः प्राधान्येन प्रस्तुतः स च तद्विषयेण शास्त्रेण प्रतिपाद्यत इति तत्प्रतिपादने करणं शास्त्रं करणगोचरश्च कर्तृव्यापारा न कर्मगोचरतामाचरति ॥ २३ ॥

यदि कहो कि योग व्युत्पादित हुआहै अतएव वही इस स्थानमें प्रस्तुत है शास्त्र प्रस्तुत नहीं, यह सत्यहै, किन्तु योग जब प्रतिपाद्यहै तब प्रधानतः वही प्रस्तुत कहनाचाहिये । यह योग उस विषयके शास्त्रद्वारा प्रतिपादित हुआहै इसकारण, उसके प्रतिपादनमें शास्त्र कारणहै । कर्त्तृव्यापार, करणगोचर, कर्म्मगोचरताका आचरण नहीं करता ॥ २३ ॥

यथा छेत्तुर्देवदत्तस्य व्यापारभूतमुद्यमननिपातनादिकर्मकरणभूतपरशुगोचरं न कर्मभूतवृक्षादिगोचरं तथा च वक्तुः पतञ्जलेः प्रवचनव्यापारापेक्षया योगविषयस्याधिकृतता करणस्य शास्त्रस्याभिधानव्यापारापेक्षया तु योगस्य वेति विभागः। ततश्च योगशास्त्रस्यारम्भः सम्भावनां भजते ॥ २४ ॥

जैसे, छेदनकर्त्ता देवदत्तका व्यापारस्वरूप उद्यमन निपातनादिकर्म्म, करणभूत परशुका गोचर होताहै; कर्म्मभूत वृक्षादिगोचर नहीं होता, इसीप्रकार वक्ता पतञ्जलिकी प्रवचन व्यापारापेक्षाद्वारा योगविषयकी अधिकृतता, एवं कारण शास्त्रका अभिधान व्यापारापेक्षाद्वारा योगका अधिकार, ऐसा विभाग विनिष्पन्न होता है । इसीसे योगशास्त्रका आरम्भ सम्भावित होता है ॥ २४ ॥

अत्र चानुशासनीयो योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इत्युच्यते । ननु युजियोंग इति संयोगार्थतया परिपठितात् युजेर्निष्पन्नो योगशब्दः संयोगवचन एव स्यान्न तु निरोधवचनः । अतएवोक्तं याज्ञवल्क्येन—

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोरिति ॥ २५ ॥

यहां अनुशासनीय योगशब्दसे निरोध इसप्रकार, कहा गया है । यदि कहो कि, युजियोग, इसप्रकार संयोगार्थनाद्वारा परिपठित युज धातुसे योगशब्द सिद्ध हुआ है । अतएव वह संयोग, वचनहै, निरोध वचन नहीं होसकता । अतएव, याज्ञवल्क्यने भी कहाहै, जीवात्मा और परमात्मा दोनोंके सयोगको 'योग' कहते हैं ॥ २५ ॥

तदेतद्वार्त्तं जीवपरयोः संयोगे कारणस्यान्यतरकर्मादेरसम्भवादजसंयोगस्य कणभक्षाक्षचरणादिभिः प्रतिक्षेपाच्च । मीमांसकमतानुसारेण तदंगीकारेऽपि नित्यसिद्धस्य तस्य साध्यत्वाभावेन शास्त्रवैफल्यापत्तेश्च धातूनामनेकार्थत्वेन युजेः समाध्यर्थत्वोपपत्तेश्च ॥ २६ ॥

याज्ञवल्क्यका यह वचन सर्वथा जनश्रुति है । क्योंकि, जीवात्मा और परमात्मा दोनोंके संयोगका कारण स्वरूप अन्यतरकर्म्म सम्भव नहीं । मीमांसक मतानुसार उनको माननेसे भी नित्य सिद्ध करकर उसके साध्यत्वका अभाववशात् शास्त्रवैफल्य दोष घटता है । विशेषतः धातुओंके अनेक अर्थ हैं । सुतरां, युज धातुका समाध्यर्थत्व सिद्ध होता है ॥ २६ ॥

तदुक्तम्—

निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेति ते त्रयः ।
अनेकार्थाः स्मृताः सर्वे पाठस्तेषां निदर्शनमिति ॥ २७ ॥

इसी प्रकार कहे हैं, निपात, उपसर्ग और धातु, इन तीनका अनेक अर्थ लक्षित होताहै २७॥

अतएव केचन युजिं समाधावपि पठन्ति युज समाधाविति। नापि याज्ञवल्क्यवचनव्याकोपः तत्रस्थस्यापि योगशब्दस्य समाध्यर्थत्वात् ।

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ।

इसकारण कोई कोई युजधातुका अर्थ समाधि, इसप्रकार पढ़ते हैं । याज्ञवल्क्यके वचनकाभी वैयर्थ्य नहीं होता । क्योंकि, उनने योगशब्दसे समाधि, ऐसा कहा है । जैसे जीवात्मा और परमात्मा दोनोंकी समतावस्थानका नाम समाधि है ॥ २८ ॥

तेनैवोक्तत्वाच्च । तदुक्तं भगवता व्यासेन । योगः समाधिरिति । यद्येवमष्टाङ्गयोगे चरमस्यांगस्य समाधित्वमुक्तं पतञ्जलिना यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधयोऽष्टांगानि योगस्येति । न चांगेवांगतां गन्तुमुत्सहते उपकार्य्योपकारकभावस्य दर्शपूर्णमासप्रयाजादौ भिन्नायतनत्वेनात्यन्तभेदादतः समाधिरपि न योगशब्दार्था युज्यत इति चेत्तन्न युज्यते व्युत्पत्तिमात्राभिधित्सया तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिरिति निरूपितचरमांगवाचकेन समाधिशब्देनांगिनो योगस्याभेदविवक्षया व्यपदेशोपपत्तेः । न च व्युत्पत्तिबलादेव सर्वत्र शब्दःप्रवर्त्तते तथात्वे गच्छतीति गौरिति व्युत्पत्तेः तिष्ठन् गान स्यात् गच्छतो देवदत्तस्य स्यात् ॥ २९ ॥

भगवान् व्यासने भी कहाहै कि योगशब्दार्थ समाधि है । पतञ्जलिने यद्यपि अष्टांग योगमें चरम अंगका समाधित्व निर्देश किया है, अंगी कभी अंगताको गमन करनेमें उत्साही नहीं होता । क्योंकि, दर्शपूर्णमास यज्ञादिमें उपकार्य्य और उपकारकभावका भिन्नायतनत्व वशतः अत्यन्त भेद लक्षित होता है । इसकारण, समाधिभी योगशब्दका अर्थ है । यह युक्तिसंगत नहीं होसकता; इसप्रकार मतवाद संगत नहीं । क्योंकि, व्युत्पत्तिबलसेही केवल शब्द प्रवर्त्तित नहीं होता । ऐसा होनेसे, गमन करता है, इस अर्थमें गो इसप्रकार व्युत्पत्तिवशात, गमन न करके बैठ रहनेसे, गो नहीं कहते हैं ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिनिमित्तञ्च प्रागुक्तमेव चित्तवृत्तिनिरोध इति तदुक्तं योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति । ननु वृत्तीनां निरोधश्चेद्योगोऽभिमतस्तासां ज्ञानत्वेनात्माश्रयतया तन्निरोधोऽपि प्रध्वंसपदवेदनीयस्तदाश्रयो भवेत प्रागभावप्रध्वंसयोः प्रतियोगिसमानाश्रयत्वनियमात् । ततश्चोपपन्नस्त्वयं धर्मो विकरोति हि धर्मिणामिति न्यायेनात्मनः कौटस्थ्यं विहन्यतेति चेत्तदपि न घटते निरोधानां

प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतिस्वरूपाणां वृत्तीनामन्तः करणाद्यपरपर्य्यायचित्तधर्मत्वांगीकारात्। कूटस्थनित्या चिच्छक्तिरपरिणामिनी विज्ञानधर्माश्रयो भवितुं नार्हत्येव ॥ ३० ॥

यदि वृत्तियोंके निरोधहीको योग कहना अभिमत होता है, तो कहना यह है—जो वेही वृत्तियां साक्षात् ज्ञानस्वरूप और आत्माका आश्रय हैं । अतएव, उनका प्रध्वंस पदवाच्य निरोधभी आश्रय होगा । क्योंकि प्रागभाव और प्रध्वंस दोनोंमें प्रतियोगि समानाश्रयत्व नियमसे बद्ध है । सुतरां आत्माकी कूटस्थताका व्याघात करसकताहै इसका उत्तर यह है जो, यह कभी घटनेकी सम्भावना नहीं, इसका कारण यह है कि प्रमाण, विपर्य्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, स्वरूप, वृत्ति सब अन्तःकरणादि अपर नामसे अभिहित चित्तका धर्म्म प्रकार अंगीकृत होतीहैं । चित्शक्ति कूटस्थ नित्या एवं परिणाम विहीना है सुतरां, विज्ञान धर्म्माश्रयं होनेकी सम्भावना नहीं ॥ ३० ॥

न च चितिशक्तेरपरिणामित्वमसिद्धमिति मन्तव्यं चितिशक्तिरपरिणामिनी सदा ज्ञातृत्वात् न यदेवं न तदेवं यथा चित्तादि इत्याद्यनुमानसम्भवात् तथा यद्यसौ पुरुषः परिणामी स्यात्तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात्तासां चित्तवृत्तीनां सदाज्ञातृत्वं नोपपद्येत चिद्रूपस्य पुरुषस्य सदैवाधिष्ठातृत्वेनावस्थितस्य यदन्तरंगनिर्मलं सत्त्वं तस्यापि सदैव स्थितत्वात् येन येनार्थेनोपरक्तं भवति तस्य दृश्यस्य सदैव चिच्छायापत्त्या भानोपपत्त्या पुरुषस्य निःसंगत्वं सम्भवति।ततश्च सिद्धं तस्य सदाज्ञातृत्वमिति न काचित् परिणामित्वाशंकावतरति ॥ ३१ ॥

चितिशक्तिकी परिणामशून्यता कहकर नहीं, समझाजासकता । क्योंकि, सर्वदा ज्ञातृत्व-वशतः चितिशक्ति परिणामविहीन एवं जोजो नहीं है, वहवह नहीं होसकता, जैसे चित्तादि इसप्रकार अनुमान सम्भव होताहै । इसीप्रकार यदि यह पुरुष परिणामी होताहै तो परिणाम का [illegible] इन वृत्तियोंका सदाज्ञातृत्व उपपन्न नहीं होसकता। चिद्रूपपुरुष सदा-[illegible]रूपसे अवस्थितहै । उसका जो अन्तरंग निर्म्मलसत्त्व उसका सर्व्वदा अवस्थान [illegible] । वह जिसजिस विषयमें उपरक्त होताहै, उसउस दृश्यका सदाही चित् छाया-[illegible] होता है । इसकेद्वारा पुरुषका निःसंगत्व सम्भवित होताहै । तो, सदा [illegible] परिणामित्वकी आशंकाकी अवतारणा नहीं होसकती ३१॥

चित्तं पुनर्येन विषयेणोपरक्तं भवति स विषयो ज्ञातः, यदुपरक्तं नभवति तदज्ञातमिति वस्तुनोऽयस्कान्तमणिकल्पस्य ज्ञानाज्ञानकारणभूतोपरागानुपरागधर्मित्वादयःसधर्मकं चित्तं परिणामि इत्युच्यते ॥ ३२ ॥

चित्त जिस विषयद्वारा उपरक्त होताहै वही उसको ज्ञात होता । जिसमें उपरक्त नही होता वह उसको अविदित रहता,है इसकारण, कहागया है, वस्तुमात्रही अयस्कान्त मणिकी नाई एवं ज्ञानाज्ञानका कारणस्वरूप उपराग और अनुपराग धर्म्मादि विशिष्ट एवं सधर्म्मक चित्त परिणामीहै ॥ ३२ ॥

ननु चित्तस्येन्द्रियाणां चाहंकारिकाणां सर्वगतत्वात् सर्वविषयैरस्ति सदा सम्बन्धः तथा च सर्वेषां सर्वदा सर्वत्र ज्ञानं प्रसज्येत । सर्वगतत्वेऽपि चित्तं यत्र शरीरे वृत्तिमत् तेन शरीरेण सह सम्बन्धो येषां विषयाणां तेष्वेवास्य ज्ञानं भवति नेतरेष्वित्यतिप्रसंगाभावादत एवायस्कान्तमणिकल्पा विषयाः अयःसधर्मकं चित्तमिन्द्रियप्रणालिकयाभिसम्बध्योपरञ्जयन्ति । तस्माच्चित्तस्य धर्मा वृत्तयो नात्मनः । तथा च श्रुतिः, कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा धृतिरधृतिरित्येतत्सर्वं मन एवेति ॥ ३३ ॥

चित्त एवं अहङ्कारिक इन्द्रियसमूह सर्वगत है इसकारण, सब विषयोंके साथ उसका सदा सम्बन्ध रहता है और सबहीका सर्व्वदा सर्व्वत्र ज्ञानप्रसक्त होताहै सर्वगत होनापरभी चित्त जिस शरीरमें वृत्तियुक्त होताहै । उसी शरीरके साथ सम्बन्ध होता है । जिन सब विषयोंमें सम्बन्ध लक्षित होताहै वही उसका ज्ञान होताहै, अन्यत्र नहीं इसप्रकार अति प्रसंगका अभाव घटता है इसकारण अयस्कान्त मणिसदृश विषय सब लोहेका धर्म्म मनको इन्द्रिय प्रणालिकाकी सहायतासे अभिसम्बन्धमें उपरञ्जित करता है । इसीकारण वृत्ति सब चित्तका धर्म्महै, आत्माका नहीं और, श्रुतिमें कहा है कि काम, सङ्कल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, ये सब मनही है ॥ ३३ ॥

चिच्छक्तेरपरिणामित्वं पञ्चशिखाचार्य्यैराख्यायि अपरिणामिनी भोक्तृशक्तिरिति पतञ्जलिनापि सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः

पुरुषस्यापरिणामित्वादिति चित्तपरिणामित्वेऽनुमानमुच्यते । चित्तं परिणामि ज्ञाताज्ञातविषयत्वात् श्रोत्रादिवदिति ॥ २४ ॥

चित्शक्तिके अपरिणामित्वकी व्याख्या पञ्चशिखाचार्य्यने कियी है, जैसे, भोक्तृशक्ति अपरिणामिनी है पतञ्जलिनेभी कहा है चित्तवृत्तियां सब सदैव ज्ञाता हैं । उन सबके प्रभु पुरुषका अपरिणामित्वही इसका कारण है, चित्तके परिणामित्व सम्बन्धमें ऐसा अनुमान कहाजाताहै कि श्रोत्रादिकी नाईं ज्ञाताज्ञातविषयत्ववशतः चित्त परिणामी है ॥ २४ ॥

परिणामश्च त्रिविधः प्रसिद्धः धर्मलक्षणावस्थाभेदात् । धर्मिणश्चित्तस्य नीलाद्यालोचनं धर्मपरिणामः । यथा कनकस्य कटकमुकुटकेयूरादिधर्मस्य वर्त्तमानत्वादिर्लक्षणपरिणामः । नीलाद्यालोचनस्य स्फुटत्वादिरवस्थापरिणामः । कनकादेस्तु नवपुराणत्वादिरवस्थापरिणामः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं परिणामत्रितयमूहनीयम् । तथा च प्रमाणादिवृत्तीनां चित्तधर्मत्वात्तन्निरोधोऽपि तदाश्रय एवेति न किञ्चिदनुपपन्नम् ॥ २५ ॥

धर्म्म, लक्षण, और अवस्थाभेदसे परिणाम तीन प्रकारका प्रसिद्ध है । धर्म्मी चित्तके नीलाद्यालोचनका नाम धर्म्मपरिणाम है । जैसे कनकका कटक, मुकुट, और केयूर आदि धर्मका वर्त्तमानत्व आदि लक्षणपरिणाम है और नीलादि आलोचनका स्फुटत्व प्रभृतिको अवस्थापरिणाम कहतेहैं । जैसे, कनक आदिका नया पुराणत्व आदि अवस्था परिणाम है । इस प्रकार, अन्यत्र भी यथासम्भव परिणामत्रय विचारना चाहिये । और प्रमाणादि वृत्तियोंका चित्तधर्मत्ववशतः इनका निरोधभी चित्तका आश्रित है।इस विषयमें कुछ अनुपपत्ति नहीं २५॥

ननु वृत्तिनिरोधो योग इत्यंगीकारे सुषुप्त्यादौ क्षिप्तमूढादिचित्तवृत्तीनां निरोधसम्भवाद्योगत्वप्रसंगः । न चैतद्युज्यते क्षिप्ताद्यवस्थासु क्लेशप्रहाणादेरसम्भवान्निःश्रेयसपरिपन्थित्वाच्च । तथा हि क्षिप्तं नाम तेषु तेषु विषयेषु क्षिप्यमाणमस्थिरं चित्तमुच्यते । तमःसमुद्रे मग्नं निद्रावृत्तिमच्चित्तं मूढमिति गीयते क्षिप्ताद्विशिष्टं चित्तं विक्षिप्तमिति गीयते । विशेषो नाम चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढमिति न्यायेनास्थिरस्यापि मनसः कदाचित्सुदृढविषयस्थैर्यसम्भवेन [illegible]

स्वाभाविकं व्याध्याद्यनुशयजनितं वा । तदाह व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया इति । तत्र दोषत्रयवैषम्यनिमित्तो ज्वरादिर्व्याधिः, चित्तस्याकर्मण्यत्वं स्त्यानं विरुद्धकोटिद्वयावगाहि ज्ञानं संशयः समाधिसाधनानामभावनं प्रमादः शरीरवाक्चित्तगुरुत्वादप्रवृत्तिरालस्यं विषयाभिलाषोऽविरतिः अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिदर्शनं कुतश्चिन्निमित्तात् समाधिभूमेरलाभोऽलब्धभूमिकत्वं लब्धायामपि तस्यां चित्तस्याप्रतिष्ठा अनवस्थितत्वमित्यर्थः । तस्मान्न वृत्तिविरोधो योगपदनिक्षेपमर्हति इति चेन्मैवं वोचः हेयभूतक्षिप्ताद्यवस्थात्रये वृत्तिविरोधस्य हेयत्वसम्भवेऽप्युपादेययोरेकाग्रविरुद्धावस्थयोर्वृत्तिनिरोधस्य योगत्वसम्भवात् एकतानं चित्तमेकाग्रमुच्यते निरुद्धसकलवृत्तिकं संस्कारमात्रशेषं चित्तं निरुद्धमिति भण्यते ॥ २६ ॥

यदि कहो कि, योगशब्दसे, वृत्तिनिरोध, ऐसा अंगीकार करनेसे, सुषुप्तादि अवस्थामें विक्षिप्त मूढ़ आदि चित्तवृत्तियोंका निरोध सम्भववशतः योगत्व प्रसंग होता है । इसका उत्तर यह है कि, यह कभी युक्तिसंगत नहीं होसकता । क्योंकि, क्षिप्तादि अवस्थामें हेय ग्रहणादिका असम्भव और निःश्रेयस प्रतिकूलता सङ्घटित होती है । उसीप्रकार, क्षिप्त शब्दसे उस २ विषयमें क्षिप्यमाण अस्थिर चित्त जानपड़ता है । और अन्धकार समुद्रमें मग्न निद्रावृत्तियुक्त चित्तको मूढ कहते हैं । इसप्रकार, जिसमें विशिष्ट चित्तका नाम विक्षिप्त है ।

भूमिके अलाभको अलब्धभूमिकत्व एवं भूमिलब्ध होनेपरभी उसमें चित्तके अप्रतिष्ठाको अनवस्थितत्व कहते हैं। इसकारण वृत्तिनिरोधको योगपक्षमें निक्षेप नहीं कियाजासकता । ऐसा कहनाभी नहीं क्योंकि हेयस्वरूप क्षिप्तादि तीनों अवस्थाओंमें वृत्तिनिरोधका हेयत्व सम्भव होनेपरभी उपादेय एकाग्र और विरुद्धावस्थाके वृत्तिनिरोधका योगत्व होताहै। एकतानाचित्तको 'एकाग्र' कहते है, और जिसकी सबही वृत्ति निरुद्ध हुई हैं, तादृश संस्कार मात्रशेषविशिष्ट चित्तका नाम निरुद्ध है ॥ २६ ॥

स च समाधिर्द्विविधः सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदात् । तत्रैकाग्रचेतसि यः प्रमाणादिवृत्तीनां बाह्यविषयाणां निरोधः स सम्प्रज्ञातसमाधिः सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन् प्रकृतेर्विविक्ततया चित्तमिति व्युत्पत्तेः। स चतुर्विधः सवितर्कादिभेदात् । समाधिर्नामभावना, सा च भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुनः पुनर्निवेशनं भाव्यश्च द्विविधम् ईश्वरस्तत्त्वानि च । तान्यपि द्विविधानि जडाजड़भेदात् । जडानि प्रकृतिमहदहंकारादीनि चतुर्विंशतिः अजडः पुरुषः ॥ २७ ॥

समाधि दोप्रकारकी है, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। उनमें, एकाग्र चित्त होनेमें प्रमाणादि वृत्तिविशिष्ट बाह्यविषयोंका निरोधको सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसमें प्रकृतिकी विविक्तावशतः चित्तको सम्यक्रूपसे जाना जाता है, इसप्रकार, व्युत्पत्तिमें इसका नाम 'सम्प्रज्ञात' है । यह सम्प्रज्ञात समाधि सवितर्कादि भेदसे चारप्रकारकी है। समाधि शब्दसे भावना है। विषयान्तर परिहारद्वारा चित्तमें जिस भावका पुनः पुनः निवेशन होता है उसका नाम 'भावना' है, भाव्य दो प्रकारका है ईश्वर और तत्त्वसमूह। तत्त्वसमूहभी और दो प्रकारका जड़ और अजड़। उनमे प्रकृति और अहङ्कारादि २४ तत्व जड़शब्द वाच्य हैं। और ईश्वरको अजड़ वा चैतन्य कहते है ॥ २७ ॥

तत्र यदा पृथिव्यादीनि स्थूलानि विषयत्वेनादाय पूर्वापरानुसन्धानेन शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन भावना प्रवर्त्तते स समाधिः सवितर्कः, यदा तन्मात्रान्तःकरणलक्षणं सूक्ष्मं विषयमालम्ब्य देशाद्यवच्छेदेन भावना प्रवर्त्तते तदा सविचारः, यदा रजस्तमोलेशानुविद्धं चित्तं भाव्यते तदा सुखप्रकाशं यस्य सत्त्वस्योद्रेकात् सानन्दः, यदा रजस्तमोलेशानभिभूतं शुद्धं सत्त्वमालम्बनी-

कृत्य या प्रवर्त्तते भावना तदा तस्यां सत्त्वस्य न्यग्भावाच्चितिशक्तेरुद्रेकाच्च सत्त्वमात्रावशेषत्वेन सास्मितः समाधिः वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञात इति सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः ॥ ३८ ॥

उनमें जिसमें पृथिवी प्रभृति स्थूलतत्त्व सबको विषयरूपसे ग्रहण करके, पूर्व्वापरानुसन्धान और शब्दार्थोल्लेख सम्भेदके सहारेसे भावना प्रवर्त्तित होती है, उस समाधिका नाम सवितर्क है । और जिसमें तन्मात्रान्तःकारणरूप सूक्ष्मविषयको अवलम्बन कर, देशादिके अवच्छेदानुसार भावना प्रवृत्त होती है, उसका नाम सविचार समाधिहै । इसप्रकार जिस अवस्थामें रजः और तमोलेशानुविद्ध चित्तभावित होतीहै, एवं जिस सत्त्वके उद्रेक वशतः सुखप्रकाश होताहै उसका नाम सानन्दसमाधि है । जिस अवस्थामें रजः और तमोलेशका अनभिभूत शुद्ध सत्व अवलम्बन करके, भावना प्रवृत्त हो उसका नाम सास्मिता समाधि है इसप्रकार भावना प्रसंगसे सत्त्वगुणका न्यग्भाव और चितिशक्तिका उद्रेकवशतः सत्त्वमात्र अवशिष्ट होता है । उक्तप्रकार वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता रूपका अनुगमवशतः सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं । और, सब वृत्तियोंके निरोधमें असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं ॥ ३८ ॥

ननु सर्ववृत्तिनिरोधो योग इत्युक्ते सम्प्रज्ञाते व्याप्तिर्न स्यात् तत्र सत्त्वप्रधानायाः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिलक्षणाया वृत्तेरनिरोधादिति चेत्तदेतद्वार्त्तं क्लेशकर्मविपाकाशयपरिपन्थिचित्तवृत्तिनिरोधो योग इत्यङ्गीकारात् । क्लेशाः पुनः पञ्चधा प्रसिद्धाः अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः ॥ ३९ ॥

सब वृत्तियोंके निरोधका नाम योग है ऐसा कहनेसे सम्प्रज्ञात व्याप्ति दोष नहीं बचता । क्योंकि, उस अवस्थामें सत्त्वप्रधान सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिरूपिणी वृत्तिका नाम निरोध नहीं होता । यह बात सर्वथा संगत है । इसका कारण यह है जो, क्लेश, कर्म्म, विपाक, आशय, इन सबके शत्रु चित्तवृत्तिके निरोधका नाम योग है, इसप्रकार अङ्गीकृत हुआहै, क्लेश पांच प्रकारका है अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ॥ ३९ ॥

नन्वविद्येत्यत्र किमाश्रीयते पूर्वपदार्थप्राधान्यम् अमक्षिकं वर्त्तत इतिवत् उत्तरपदार्थप्राधान्यं वा राजपुरुष इतिवत् अन्यपदार्थप्राधान्यं वा अमक्षिको देश इतिवत् । तत्र न पूर्वः

पूर्वपदार्थप्रधानत्वे अविद्यायां प्रसज्यप्रतिषेधोपपत्तौ क्लेशादि कारकत्वानुपपत्तेः अविद्याशब्दस्य स्त्रीलिंगत्वाभावापत्तेश्च, न द्वितीयः कस्यचिदभावेन विशिष्टाया विद्यायाः क्लेशादि परिपन्थित्वेन तद्बीजत्वानुपपत्तेः, न तृतीयः नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोप इति वृत्तिकारवचनानुसारेण अविद्यमाना विद्या यस्या सा अविद्या बुद्धिरिति समाधिसिद्धौ तस्या अविद्यायाः क्लेशादिबीजत्वानुपपत्तेः विवेकख्यातिपूर्वक-सर्ववृत्तिसम्पन्नायास्तस्यास्तथात्वाप्रसङ्गाच्च । उक्तञ्च, अस्मितादीनां क्लेशानामविद्यानिदानत्वम् । अविद्याक्षेत्रत्वमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदारणमिति । तत्र प्रसुप्तत्वं प्रबोधसहकार्य्यभावेनानभिव्यक्तिः तनुत्वं प्रतिपक्षभावनया शिथिलीकरणविच्छिन्नत्वबलवता क्लेशेनाभिभवः उदारत्वं सहकारिसन्निधिवशात् कार्य्यकारित्वम् । तदुक्तं वाचस्पतिमिश्रेण व्यासभाष्यव्याख्यायाम्

प्रसुप्तास्तत्त्वलीनानां तनुदग्धाश्च योगिनाम् ।

विच्छिन्नोदाररूपाश्च क्लेशाविषयसङ्गिनामिति ॥ ४० ॥

यदि कहो कि, यहाँ अविद्या शब्दसे किस प्रकार अर्थ जानना चाहिये, अमक्षिक रूपसे वर्तमान, इत्यादि तुल्य पूर्वपदार्थभावान्य, या राज पुरुष, इत्यादि तुल्य उत्तरपदपदार्थ

विच्छिन्नत्व शब्दसे बलवत् क्लेश करनेको अभिभव एवं उदारत्व शब्दसे सहकारिके सान्निध्यवशात: कार्य्यकारित्व है । वाचस्पतिमिश्रनेभी व्यासभाष्यकी व्याख्यामें इसीप्रकार कहा है ॥ ४० ॥

द्वन्द्ववत् स्वतन्त्रपदार्थद्वयानवगमादुभयपदार्थप्रधानत्वं नाशङ्कितम् । तस्मात् पक्षद्वयेऽपि क्लेशादिनिदानत्वमविद्यायाः प्रसिद्धं हीयेतेति चेत् तदपि न शोभनं विभाति पर्य्युदासशक्तिमाश्रित्याविद्याशब्देन विद्याविरुद्धस्य विपर्य्ययज्ञानस्याभिधानमिति वृद्धैरंगीकारात् ।

तदाह—

नामधात्वर्थयोगे तु नैव नञ् प्रतिषेधकः ।
वदत्यब्राह्मणाधर्मावन्यमात्रविरोधिनाविति ॥
वृद्धप्रयोगगम्या हि शब्दार्थाः सर्व एव नः ।
तेन यत्र प्रयुक्तो यो न तस्मादपनीयत इति च ॥ ४१ ॥

द्वन्दवत् स्वतन्त्र दोनों पदार्थोंकी अनवगतिसे उभयपदार्थप्रधानत्व आशङ्कित नहीं होता इसकारण दोनों पक्षहीमें अविद्याको क्लेशनिदानत्वका अपगम (त्याग) होता है । इस प्रकार मतवाद भी संगत नहीं होसकता । क्योंकि वृद्धोंने माना है कि पर्य्युदास शक्तिआश्रय करके, अविद्याशब्दद्वारा विद्या विरुद्ध विपर्यय ज्ञानका अभिधान होता है । इसीप्रकार कहा है, कि नामधात्वर्थ योगमें नञ् प्रतिषेधक नहीं होता । सब ही पदार्थ वृद्धप्रयोग गम्य है । तत्कर्तृक जिसमें जो प्रयुक्त होता है । उससे नहीं अपनीत होता ॥ ४१ ॥

वाचस्पतिमिश्रैरप्युक्तं लोकाधीनावधारणो हि शब्दार्थयोः सम्बन्धः लोके चोत्तरपदार्थप्रधानस्यापि नञ् उत्तरपदाभिधेयोपमर्दकस्य तद्विरुद्धतया तत्र तत्रोपलब्धेरिहापि तद्विरुद्धे प्रवृत्तिरिति। एतदेवाभिप्रेत्योक्तम् अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्येति । अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्विपर्य्ययः इत्युक्तं भवति । तद्यथा अनित्ये घटादौ नित्यत्वाभिमानः अशुचौ काय्यादौ शुचित्वप्रत्ययः ॥ ४२ ॥

होताहै तद्विरुद्धताद्वारा उस २ स्थानमें उसकी उपलब्धिही इसका कारण है यहांभी उसके विरुद्धमें प्रवर्तना हुईहै, इत्यादि। इस प्रकार अभिप्रायही कहा है अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मवस्तुमें नित्य, शुचि, सुख और आत्मख्यातिका नाम अविद्या है पुनः कहाहै अतत्वमें तत्वबुद्धिका नाम विपर्यय है जैसे अनित्य घटादिमें नित्यत्वका अभिमान, एवं अशुचि कार्यादिमें शुचित्व प्रत्यय ॥ ४२ ॥

स्थानाद्बीजादवष्टम्भान्निःष्पन्दान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुरिति ॥

परिणामतापसंस्कारैर्गुणवृत्तिनिरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति न्यायेन दुःखे स्रक्चन्दनवनितादौ सुखत्वारोपः अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिः ।

तदुक्तम्—
अनात्मनि च देहादावात्मबुद्धिस्तु देहिनाम् ।
अविद्या तत्कृतो बन्धस्तन्नाशे मोक्ष उच्यत इति ॥ ४३ ॥

परिणामतापसंस्कार द्वारा गुणवृत्तिका निरोधप्रयुक्त, विवेकपक्षमें सबही दुःख इत्यादि न्यायानुसार, माला, चन्द्रमा, नवनीत आदिरूप दुःखमें सुखत्वका आरोप और अनात्मदेहादिमें आत्मबुद्धि उपस्थित होती है । इसीप्रकार कहा है, अनात्मदेहादिमें देहिगणकी जो आत्मबुद्धि, उसका नाम अविद्या है । इस अविद्याद्वारा जो बंधन संघटन होता है । उसके नाशकोही मोक्ष कहते हैं ॥ ४३ ॥

एवमियमविद्या चतुष्पादा भवति । नन्वेतेष्वविद्याविशेषेषु किञ्चिदनुगतं सामान्यलक्षणं वर्णनीयम् अन्यथा विशेषस्यासिद्धेः ।

तथाचोक्तं भट्टाचार्य्यैः—
सामान्यलक्षणं त्यक्त्वा विशेषस्यैव लक्षणम् ।
न शक्यं केवलं वक्तुमंगोऽप्यस्य न वाच्यतेति ॥ ४४ ॥

इसप्रकार यह अविद्या चतुष्पादयुक्त होती है । उल्लिखित अविद्यासम्बन्ध चतुष्पादका कुछ सामान्य लक्षण वर्णन करना कर्तव्य है । सामान्यलक्षण वर्णन नहीं करनेसे, विशेषकी असिद्धि होती है, इसीप्रकार, भट्टाचार्यने कहा है, सामान्यलक्षण छोड़कर, विशेषका लक्षण [illegible] नहीं है ॥ ४४ ॥

तदपि न वाच्यमनस्मिंस्तद्बुद्धिरिति समान्यलक्षणाभिधान[illegible]त्वात् ॥ ४५ ॥

यह बात नहीं कहसकते हो । क्योंकि, अवस्तुमें वस्तु बुद्धि, इत्यादि सामान्यलक्षण निर्देश करनेहीसे उसका उत्तर दियागया है ॥ ४५ ॥

सत्त्वपुरुषयोरहमस्मीत्येकताभिमानोऽस्मिता । तदप्युक्तं, दृक्-दर्शनशक्त्योरेकात्मत्वाभिमानोऽस्मितेति ॥ ४६ ॥

सत्व और पुरुष, इन दोनोंका 'अहमस्मि, अर्थात् मैं हूँ ऐसा एकता अभिमानको आस्मिता कहते हैं । इसीप्रकार, कहाहै, दृक् और दर्शनशक्ति, दोनोंके एकताभिमानका नाम अस्मिता है ॥ ४६ ॥

सुखाभिज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकः सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धो रागः ॥ ४७ ॥

सुखाभिज्ञके सुखसाधनसमूहमें सुखानुस्मृतिपूर्वक तृष्णारूप गृध्नुताका नाम राग है ४७ ॥

दुःखज्ञस्य तदनुस्मृतिपुरःसरन्तत्साधनेषु निन्दा द्वेषः । तदुक्तं, सुखानुशयी रागः दुःखानुशयी द्वेष इति । किमत्रानुशयिशब्दे ताच्छील्यार्थे णिनिरिनिर्वा मत्वर्थो योऽभिमतः नाद्यः सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्य इत्यत्र सुपीति वर्त्तमाने पुनः सुब्ग्रहणस्य उपसर्गनिवृत्त्यर्थत्वेन सोपसर्गाद्धातोर्णिनेरनुत्पत्तेः यथाकथञ्चि-दंगीकारेऽपि अचोऽञ्णितीति वृद्धिप्रसक्तावतिशाय्यादिपदवद-नुशायिपदस्य प्रयोगप्रसंगात् । न द्वितीयः ।

एकाक्षरात् कृतो जातेः सप्तम्याश्च न तौ स्मृताविति ।

तत्प्रतिषेधादत्र चानुशयशब्दस्याजन्तत्वेन कृदन्तत्वात् ।

तस्मादनुशयिशब्दो दुरुपपाद इति चेत् नैतद्भद्रं बाधानवबो-धात् प्रायिकाभिप्रायमिदं वचनम् । अतएवोक्तं वृत्तिकारेण—इतिकरणो विवक्षार्थः सर्वत्राभिसम्बध्यत इति ।

तेन क्वचिद्भवति कार्य्यं कार्यिकस्तण्डुली तण्डुलिक इति ।

तथाच कृदन्तात् जातेश्च प्रतिषेधस्य प्रायिकत्वं अनुशयश-ब्दस्य कृदन्ततया इनेरुपपत्तिरिति सिद्धम् ॥ ४८ ॥

णिनि या इनि प्रत्यय करके, यह अनुशयी शब्द निष्पन्न हुआ है इसका उत्तर यहहै जो, ताच्छील्यार्थमें णिनि प्रत्यय होता नहीं क्योंकि 'सुप्यजातौ णिनि ताच्छील्ये' इत्यादि सूत्रानुसार सुप् वर्त्तमानमें पुनः सुप् ग्रहण करनेसे उपसर्ग निवृत्त्यर्थत्व घटता है । इसलिये उपसर्गसहित धातुके उत्तर णिनिकी अनुत्पत्ति होती है । जिस किसीप्रकार अङ्गीकार करनेपरभी अचोऽञ्णिति इत्यादि सूत्रानुसार वृद्धिप्रसक्ति घटती है । उसमें अतिशायी प्रभृति पदकी नाईं अनुशयि पदका प्रयोग प्रसंग उपस्थित होता है । द्वितीयपक्षभी सङ्गत नहीं । क्योंकि अनुशय शब्द अजन्त कहकर कृदन्त है । तब अनुशयि शब्द साधन करना दुःसाध्य है । इसप्रकार समझनाभी प्रशस्तकल्प नहीं । क्योंकि, भावके अनवरोधवशतः यह वचन प्रायिकाभिप्राय है । इसीकारण वृत्तिकारने कहा है कि इतिकरण विवक्षार्थका सर्वत्रही सम्बन्ध है । वृत्तिकारके इस वचनके अनुसार कहीं कार्य्यास्थलमें कार्यिक, एवं तण्डुली स्थलमें तण्डुलिक होता है इत्यादि नियमसे अनुशयि शब्द कृदन्त कहकर इनिप्रत्ययकी उपपत्ति सिद्ध हुई ॥ ४८ ॥

पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःखानुभववासनाबलात् सर्वस्य प्राणभृन्मात्रस्याकृमेरा च विदुषः सञ्जायमानः शरीरविषयादेर्मम वियोगो मा भूदिति प्रत्यहं निमित्तं विना प्रवर्त्तमानोभयरूपोऽभिनिवेशः पञ्चमः क्लेशः । मा च भूवं हि भूयासमिति प्रार्थनायाः प्रत्यात्ममनुभवसिद्धत्वात् । तदाह स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेश इति । ते चाविद्यादयः पञ्च सांसारिकविविधदुःखोपहारहेतुत्वेन पुरुषं क्लिश्नन्तीति क्लेशाः प्रसिद्धाः ॥ ४९ ॥

पूर्वजन्मानुभूत मरणदुःखका अनुभव वासनाबलसे कृमिसे विद्वान् पर्य्यन्त प्रत्येक प्राणी-जीवको प्रतिदिन बिना निमित्त भी, मेरा शरीरविषयादिका जिससे वियोग न हो, इसप्रकार प्रवर्त्तमान भयरूप 'अभिनिवेश' उत्पन्न होता है । यही पांचवां क्लेश है । उक्तप्रकार प्रार्थना प्रत्येक आत्मामेंही अनुभव सिद्ध है । ये अविद्या आदि पांचपदार्थ सांसारिक अनेक प्रकार दुःखोपहारका कारण कहकर पुरुषको क्लेश देता है; इसीकारण क्लेश शब्दसे प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

कर्माणि विहितप्रतिषिद्धरूपाणि ज्योतिष्टोमब्रह्महत्यादीनि विपाकाः कर्मफलानि जात्यायुर्भोगाः आफलविपाकाच्चित्तभूमौ शेरत इत्याशयाः धर्माधर्मसंस्काराः तत्परिपन्थिचित्तवृत्तिनिरोधो योगः निरोधो नाभावमात्रमभिमतं तस्य तुच्छत्वेन भावरूपसंस्कारजननसमर्थत्वानुपपत्तेः किन्तु तदाश्रयो मधुमतीमधु-

प्रतीकाविशोकासंस्कारशेषताव्यपदेश्यः चित्तस्यावस्थाविशेषः निरुध्यन्तेऽस्मिन् प्रमाणाद्याश्चित्तवृत्तय इति व्युत्पत्तेरुपपत्तेः॥५०॥

कर्म्म शब्दसे विहित और प्रतिषिद्ध स्वरूप जैसे, ज्योतिष्टोम और ब्रह्महत्या आदि विपाक शब्दसे कर्म्मफल । जैसे, जाति और आयुर्भोग । फलविपाक पर्य्यन्त चित्तभूमिमें शयन अर्थात् अवस्थिति करता है, इस अर्थमें आशय है । जैसे, धर्म्माधर्म्म संस्कार इनका प्रतिकूल चित्तवृत्ति समूहके निरोधको योग कहते हैं । निरोधशब्दसे अभाव मात्र अभिमत नहीं । क्योंकि, वह तुच्छ कहकर, चित्तभावरूप संस्कार जननमें उसका क्षमत्व सम्भव नहीं होता । किन्तु मधुमती प्रभृति नामक अवस्था विशेष उसके आश्रित हैं । क्योंकि प्रमाण आदि चित्तवृत्तिसमूह इसमें निरुद्ध होता है इसप्रकार व्युत्पत्तिकी उपपत्तिही इसका हेतु५०

अभ्यासवैराग्याभ्यां वृत्तिनिरोधः तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः । प्रकाशप्रवृत्तिरूपवृत्तिरहितस्य चित्तस्य स्वरूपनिष्ठः परिणामविशेषः स्थितिः । तन्निमित्तीकृत्य यत्नः पुनः पुनस्तथात्वेन चेतसि निवेशनमभ्यासः । चर्मणि द्वीपिनं हन्तीतिवन्निमित्तार्थेयं सप्तमीत्युक्तं भवति ॥५१॥

अभ्यास और वैराग्य, इन दो उपायोंसे वृत्तियोंका निरोध होता है उनमें स्थित यत्नका नाम अभ्यास है । प्रकाशप्रवृत्तिरूपवृत्ति रहित चित्तके स्वरूप निष्ठ परिणाम विशेषका नाम स्थिति है । इसको निमित्त करके यत्न अर्थात् पुनः पुनः इस अवस्थामें चित्तमें निवेशनका नाम अभ्यास है । यहां चर्म्मणि अर्थात् चर्म्मके लिये द्वीपिका मारना इत्यादि तुल्य निमित्तार्थमें सप्तमी विभक्ति इसप्रकार कहा गया है ॥ ५१ ॥

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् । ऐहिकपारत्रिकविषयादौ दोषदर्शनान्निरभिलाषस्य ममैते विषया वश्याः नाहमेतेषां वश्य इति विमर्शो वैराग्यमित्युक्तं भवति॥५२॥

दृष्टानुश्रविक विषयमें तृष्णारहितका वशीकार संज्ञाका नाम वैराग्य है । ऐहिक पारलौकिक विषयादिमें दोषदर्शनद्वारा अभिलाषाशून्य पुरुष, ये सब विषय मेरे वश्य हैं मैं जिससे इनके वशीभूत न होऊं, इसप्रकार जो विमर्श करता है उसीको वैराग्य कहते हैं ५२

समाधिपरिपन्थिक्लेशतनूकरणार्थं समाधिलाभार्थञ्च प्रथमं क्रियायोगविधानपरेण योगिना भवितव्यं क्रियायोगसम्पादने अभ्यासवैराग्ययोः सम्भवात् । तदुक्तं भगवता—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते इति ॥ ५३ ॥

समाधिके प्रतिकूल क्लेशोंका तनू छोटा करना और समाधिलाभ इन दोनों प्रकारके व्यापार विधानके लिये योगी व्यक्ति पहिले क्रियायोग विधानमें तत्पर होंगे । क्योंकि क्रियायोग सम्पादनमें अभ्यास और वैराग्य दोनोंहीका सम्भव होता है । भगवान्ने सो कहा है । जैसे योगारोहणमें अभिलाषी मुनिका कर्म्मही कारणरूपसे कथित होता है । एवं योगमें आरूढ़ होनेपर शमही कारणस्वरूप परिगणित होता है ॥ ५२ ॥

क्रियायोगश्चोपदिष्टः पतञ्जलिना—तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग इति । तपःस्वरूपं निरूपितं याज्ञवल्क्येन ।
विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तममिति ॥ ५४ ॥

पतञ्जलिने क्रियायोग उपदेश कियाहै। जैसे तपः स्वाध्यायान्त ईश्वर प्रणिधान इन सबका नाम क्रियायोग है । याज्ञवल्क्यने तपस्याका स्वरूप निरूपण किया है । जैसे विधि विहित मार्गानुसार कृच्छ्र चान्द्रायण अनुष्ठानपूर्वक शरीरके शोषण करनेको तपोंमें श्रेष्ठ तप कहा है ॥ ५४ ॥

प्रणवगायत्रीप्रभृतीनामध्ययनं स्वाध्याय इति । ते च मन्त्रा द्विविधाः वैदिकास्तान्त्रिकाश्च । वैदिकाश्च द्विविधाः प्रगीता अप्रगीताश्च । तत्र प्रगीताः सामानि, अप्रगीताश्च द्विविधाः छन्दोबद्धास्तद्विलक्षणाश्च । तत्र प्रथमा ऋचः द्वितीया यजूंषि। तदुक्तं जैमिनिना—तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था गीतिषु सामाख्या शेषे यजुःशब्द इति ॥ ५५ ॥

प्रणवगायत्री प्रभृतिके अध्ययनको स्वाध्याय कहते हैं। ये सब मंत्र दो प्रकारकेहैं. वैदिक और तान्त्रिक, वैदिकमन्त्र और भी दो प्रकारका है प्रगीत और अप्रगीत इनमें साम मन्त्रको प्रगीत कहते हैं। अप्रगीत मन्त्र दो प्रकारका छन्दोबद्ध तद्विलक्षण इनमें ऋक् सब छन्दोबद्ध [illegible] इनसे [illegible] है [illegible] ॥

तन्त्रेषु कामिकवातुलनपञ्चरात्रागमेषु ये ये वर्णितास्ते तान्त्रिकाः ॥ ते पुनर्मन्त्रास्त्रिविधाः स्त्रीपुंनपुंसकभेदात्तत्राह—
स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिविधा मन्त्रजातयः ।

स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ताः स्युर्नपुंसकाः ।
शेपाः पुमांसस्ते शस्ताः सिद्धा वश्यादिकर्मणीति ॥ ५६ ॥

तन्त्र सब अर्थात् कामिक कारण मपश्चादिआगम समूहमें जो जो मन्त्र वर्णित हुआ है, उसका नाम तान्त्रिक है । तान्त्रिक मन्त्र सब तीन प्रकारका । जैसे, स्त्रीमन्त्र, पुंमन्त्र और नपुंसकमंत्र हैं उनमें स्वाहान्तमन्त्रोंको स्त्रीमन्त्र, नमोन्त मन्त्रोंको नपुंसकमंत्र एवं अवशिष्ट मंत्रोंको पुंमन्त्र कहते हैं । वश्य आदि कार्य्यमें पुंमन्त्र सब प्रशस्त हैं । ये सब मन्त्रही सिद्ध हैं ॥ ५६ ॥

स्नापनादिसंस्काराभावेऽपि निरस्तसमस्तदोपत्वेन सिद्धिहेतुत्वात् सिद्धत्वम् । स च संस्कारो दशविधः कथितः शारदातिलके ॥ ५७ ॥

स्नापनादि संस्कारके अभावमें भी सब दोष विवर्जित और इसकारण सिद्धिका हेतु होता है । इसकारण सिद्ध उल्लिखित संस्कार दश प्रकारका है । शारदा तिलकमें से कहा है । जैसे ॥ ५७ ॥

मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धिदायिनः ।
निर्दोपतां प्रयान्त्याशु ते मन्त्राः साधु संस्कृताः ॥ ५८ ॥

मन्त्र सब दशप्रकारका संस्कार कहा गया है उस २ संस्कार मात्रही सिद्धिसाधन करता है । मन्त्र सब सम्यग् विधानसे संस्कृत होनेपर, आशु निर्दोष होता है ॥ ५८ ॥

जननं जीवनञ्चैव ताडनं बोधनं तथा ।
अभिपेकोऽथ विमलीकरणाप्यायने पुनः ॥ ५९ ॥

जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन हैं ॥ ५९ ॥

तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः ॥ ६० ॥

तर्पण, दीपन, गुप्ति, ये दशमन्त्रसंस्कार हैं ॥ ६० ॥

मन्त्राणां मातृकावर्णादुद्धारो जननं स्मृतम् ।
प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत सुधीः ॥ ६१ ॥

उनमें मातृकावर्णसे मन्त्र सबका उद्धार करनेको 'जनन' कहते हैं । ज्ञानी पुरुषको मन्त्र वर्ण सबको प्रणवान्तरितकरके जप करना चाहिये ॥ ६१ ॥

मन्त्राणमंख्यया तद्धि जीवनं संप्रचक्षते ।
मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥ ६२ ॥

मन्त्रवर्णका संख्याक्रमसे जप करनेको जीवन कहते हैं । मन्त्रवर्ण सब सम्यक् रूपसे लिखकर चन्दनजलमें ताडित करना ॥ ६२ ॥

प्रत्येकं वायुबीजेन ताडनं तदुदाहृतम् ॥
विलिख्य मन्त्रवर्णांस्तु प्रसूनैः करवीरजैः ॥ ६३ ॥

प्रत्येक वर्णको वायुबीज सहायसे इसप्रकार ताडन करनेको ताडन कहते हैं । मन्त्रवर्ण सब विशेषरूपसे लिखकर जितने मंत्रवर्ण हों उतनेही कणेरके फूलोंसे ॥ ६३ ॥

मन्त्राक्षरेण संख्यातैर्हन्यात्तद्बोधनं मतम् ॥
स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया ॥ ६४ ॥

हननकरनेको बोधन कहते हैं । स्वतन्त्रोक्त प्रकारसे मन्त्रवर्ण संख्यानुसार परिगृहीत होना है ॥ ६४ ॥

अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद्विशुद्धये ॥
सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् ॥ ६५ ॥
मन्त्रे मलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं हि तत् ॥
तारव्योमाग्निमनुयुक् ज्योतिर्मन्त्र उदाहृतः ॥ ६६ ॥

अश्वत्थ (पीपल) पत्रद्वारा विशुद्धिके निमित्त मंत्रको अभिषिक्त करना चाहिये, इसीका नाम अभिषेक है । मनहीमन विचारकर ज्योतिर्मंत्रसे तीनों मल निर्दहन करना चाहिये. इसीका नाम विमलीकरण है । जो 'तारव्योम' अग्निके युक्त उसका नाम ज्योतिर्मन्त्र है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः ।
वारिबीजेन विधिवदेतदाप्यायनं मतम् ॥ ६७ ॥

जप करके कुशोदकद्वारा मन्त्रके प्रत्येक वर्णको प्रोक्षित करना चाहिये । वारिबीजसे यथा विधि इसप्रकार करनेका नाम आप्यायन है ॥ ६७ ॥

मन्त्रेण वारिणा मन्त्रे तर्पणं तर्पणं स्मृतम् ॥
तारमायारमायोगो मनोर्दीपनमुच्यते ॥ ६८ ॥

मन्त्रोच्चारण करनेके जलद्वारा मन्त्रमें तर्पण करनेका नाम 'तर्पण' है मन्त्रसे तार माया और रमाबीज योग करनेका नाम 'दीपन' है ॥ ६८ ॥

जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम् ॥
संस्कारा दश मन्त्राणां सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥ ६९ ॥

जप्यमान मन्त्रका गोपन करनेको अप्रकाशन कहते हैं। मन्त्रोंके ये १० संस्कार सब तन्त्रोंमें गोपित हुए हैं ॥ ६९ ॥

यत्कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमश्नुते ॥
रुद्धकीलितविच्छिन्नसुप्तशप्तादयोऽपि च।
मन्त्रदोषाः प्रणश्यन्ति संस्कारैरेभिरुत्तमैरिति ॥ ७० ॥

सम्प्रदायानुसार इन सबका अनुष्ठान करनेसे, मन्त्री वाञ्छित फल भोग करता है। इन सब उत्कृष्टमन्त्रोंसे संस्कृत होनेपर, रुद्ध, कीलित (कीलकिया हुआ) विच्छिन्न, सुप्त और शप्तआदि मन्त्रदोष सब विनष्ट होते हैं ॥ ७० ॥

तदलमकाण्डताण्डवकल्पेन मन्त्रशास्त्ररहस्योद्घोषणेन ७१॥

अकाण्ड ताण्डवकी नाई अर्थात् अनवसर (वेवक्त) नाचकरानेकी नाई मन्त्रशास्त्रोंमे सबके रहस्य (छिपे हुए) भेदोंका अधिक प्रकटकरनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ७१ ॥

ईश्वरप्रणिधानं नामाभिहितानामनभिहितानाञ्च सर्वासां क्रियाणां परमेश्वरे परमगुरौ फलानपेक्षया समर्पणम्।

अत्रेदमुक्तम्—
कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्।
तत्सर्वं त्वयि विन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहमिति ॥ ७२ ॥

निष्कामहोकर, अभिहित और अनभिहित सबही क्रियाओंको परमगुरु परमेश्वरके समर्पण करनेका नाम ईश्वर प्रणिधान है। यहां इससे कहा गया है कि, मैं कामतः (इच्छासे) या अकामतः (विना इच्छा) शुभाशुभ जो करता हूं, सबको तुम्हारे अर्पण किया। जिसकारण मैंने तुमसे प्रेरित होकर कियाहै ॥ ७२ ॥

क्रियाफलसन्न्यासोऽपि भक्तिविशेषापरपर्य्यायं प्रणिधानमेव फलाभिसन्धानेन कर्मकरणात् तथाच गीयते गीतासु भगवता।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणीति ॥ ७३ ॥

जिसका दूसरा नाम भक्तिविशेष है, क्रियाफल सन्न्यासभी वही प्रणिधानही [illegible] है। और भगवानने स्वयं गीतामें कहा है, तुम्हें कर्ममेंही [illegible] अधिकार है, कर्मफलमें कभी नहीं। तुम कर्मफलका कारणभूत न होओ ॥ ७३ ॥

फलाभिसन्धेरपवादकत्वमभिहितं भगवद्भिर्नीलकण्ठभारतीश्रीचरणैः।

अपि प्रयत्नसम्पन्नं कामेनोपहतं तपः ।
न तुष्टये महेशस्य श्वलीढमिव पायसमिति ॥ ७४ ॥

भगवान् नीलकण्ठ भारती श्रीचरणनेभी फलाभिसन्धिका उपघातकत्व निर्देश किया है । जैसे प्रयत्नसम्पन्न तपस्याभी कामनासे नष्ट होनेपर, कुत्तेका चाटा, पायसकी नाईं महेश्वरकी तुष्टि सम्पादन नहीं करता ॥ ७४ ॥

सा च तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानात्मिका क्रिया योगसाधनत्वाद्योग इति ।शुद्धसारोपलक्षणावृत्त्याश्रयणेन निरूप्यते यथायुर्घृतमिति । शुद्धसारोपलक्षणा नाम लक्षणाप्रभेदः मुख्यार्थबाधतद्योगाभ्यामर्थान्तरप्रतिपादनं लक्षणा । सा द्विविधा रूढिमूला प्रयोजनमूला च तदुक्तं काव्यप्रकाशे ।

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् ।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रियेति ॥७५॥

ये तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानरूप क्रियायोग साधन करता है, इसकारण योग नामसे कहागया है शुद्धसार उपलक्षणवृत्तिके अवलम्बन करके यह निरूपण किया गया है । शुद्धसारोपलक्षणाशब्दसे लक्षण प्रभेद मुख्यार्थका बाध और तद्योग, इन दोनोंकेद्वारा अर्थान्तर प्रतिपादन करनेका नाम लक्षणा यह लक्षणा दो प्रकारकी है जैसे रूढिमूला और प्रयोजन मूला काव्यप्रकाशमें भी इसप्रकार कहा है ॥ ७५ ॥

तच्छब्देन लक्ष्यत इत्याख्याते गुणीभूतं प्रतिपादनमात्रं परामृश्यते । सा लक्षणेति प्रतिनिर्दिश्यमानापेक्षया तच्छब्दस्य स्त्रीलिंगत्वोपपत्तिः तदुक्तं कैयटैः । निर्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरैक्यमापादयन्ति सर्वनामानि पर्य्यायेण तत्तल्लिंगमुपाददत इति ॥ ७६ ॥

तत् शब्दसे जो लक्ष्य कियाजाता है ऐसा कहनेसे गुणीभूत प्रतिपादनमात्र परामृष्ट होता है । वही लक्षणा इत्यादि विधानसे प्रतिनिर्दिश्यमानापेक्षामें तत् शब्दका स्त्रीलिंगत्व [illegible] है, जैसे सर्व्वनाम सब निर्दिश्यमान और प्रतिनिर्दिश्यमान [illegible] पर्य्यायक्रमसे तत्तल्लिंग समाहित करता है ॥ ७६ ॥

तत्र कर्मणि कुशल इत्यादिरूढिलक्षणाया उदाहरणं कुशान् लातीति व्युत्पत्त्या दर्भादानकर्त्तरि यौगिकं कुशलपदं विवेच-

कत्वसारूप्यात् प्रवीणे प्रवर्त्तमानम् अनादिवृद्धव्यवहारपरम्परा-नुपातित्वेनाभिधानवत् प्रयोजनमनपेक्ष्य प्रवर्त्तते । तदाह, निरूढालक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवदिति ॥ ७७ ॥

उनमें कर्म्ममें कुशल इत्यादि रूढिलक्षणाका उदाहरण और कुशल शब्दका उत्तर ग्रहण शब्दार्थ ला धातु योगकरके कुशलशब्द निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ दर्भादान कर्त्ता है। इस दर्भादान कर्त्तामें यौगिक कुशल शब्द विवेचकत्व सारूप्यवशतः प्रवीणमें प्रवर्त्तमान रहा है एवं अनादि वृद्धि नहीं करके प्रचलित होता है । उसीप्रकार कहाहै, कोई २ निरूढा लक्षणा सामर्थ्यवशतः अभिधानकी नाईं ॥ ७७ ॥

तस्मात् रूढिलक्षणायाः प्रयोजनापेक्षा नास्ति । यद्यपि प्रयुक्तः शब्दः प्रथमे मुख्यार्थं प्रतिपादयति तेनार्थेनार्थान्तरं लक्ष्यत इति अर्थधर्मोऽयं लक्षणा तथापि तत्प्रतिपादके शब्दे समारोपितः सन् शब्दव्यापार इति व्यपदिश्यते । एतदेवाभिप्रेत्योक्तं लक्षणारोपिता क्रियेति ॥ ७८ ॥

उसीप्रकार, रूढिलक्षणाका प्रयोजनापेक्षा नहीं । यद्यपि प्रयुक्त शब्द पहिले मुख्यार्थ प्रतिपादन करता है, उसी अर्थद्वाराही अर्थान्तर लक्षित होता है, इसप्रकार अर्थधर्मही लक्षणा, तथापि, तत् प्रतिपादकशब्दसे शब्दव्यापार समारोपित होता है; इसप्रकार व्यपदिष्ट होता है । इसी अभिप्रायसे काव्यप्रकाशमें कहा है, " लक्षणारोपिता क्रिया " इत्यादि ॥ ७८ ॥

प्रयोजनलक्षणा तु षड्विधा उपादानलक्षणा लक्षणलक्षणा गौणसारोपा गौणसाध्यवसाना शुद्धसारोपा शुद्धसाध्यवसाना चेति । कुन्ताः प्रविशन्ति मञ्चाः क्रोशन्ति गौर्वाहीकः गौरयं आयुर्घृतं आयुरेवेदमिति यथाक्रममुदाहरणानि द्रष्टव्यानि ।

तदुक्तम्—

स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम् ।
उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा ।
सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा ।
विषय्यन्तः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका ।
भेदाविमौ च सादृश्यात् सम्बन्धान्तरतस्तथा ।

गौणौ शुद्धौ च विज्ञेयौ लक्षणा तेन षड्विधेति ॥
तदलं काव्यमीमांसामर्मनिर्मन्थनेन ॥ ७९ ॥

प्रयोजनलक्षणा ६ प्रकारकी जैसे उपादान, लक्षण, गौण सारोपा, गौणसाध्यवसाना, एवं शुद्धसाध्यवसाना । यथाक्रमसे उदाहरण, जैसे, कुन्त सब प्रवेश करता है मञ्च सब क्रोशन करता है । गौर्वाहीक, यह गौ, इत्यादि । काव्यमीमांसाके मर्म्मके निर्मन्थसे और प्रयोजन नहीं ॥ ७९ ॥

स च योगो यमादिभेदवशादष्टांग इति निर्दिष्टः । तत्र यमा अहिंसादयः । तदाह पतञ्जलिः, अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमा इति । नियमाः शौचादयः । तदप्याह, शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा इति ॥ ८० ॥

यह योग यमादिभेदवशतः अष्टांग इसप्रकार निर्दिष्ट हुआ है. उनमें अहिंसा आदिका नाम यम है । पतञ्जलिने कहा है, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह, इनका नाम यम है, शौचादिका नाम नियम है. सोभी कहा है शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, इनका नाम नियम है ॥ ८० ॥

एते च यमनियमा विष्णुपुराणे दर्शिताः—
ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वं मनो नयन् ॥ ८१ ॥

विष्णुपुराणमें इतिलिखित यम नियम प्रदर्शित हुए हैं जैसे ब्रह्मचर्य्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय अपरिग्रह. ये यमनियम योगी निष्काम सेवन करे ॥ ८१ ॥

स्वाध्यायशौचसन्तोषतपांसि नियमात्मवान् ।
कुर्वीत ब्रह्मणि परं परस्मिन् प्रवणं मनः ॥ ८२ ॥

एवं नियमात्मवान् होकर स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तपस्या एवं परब्रह्म मनः संन्निधान करे ॥ ८२ ॥

एते यमाः सनियमाः पञ्च पञ्च प्रकीर्तिताः ।
विशिष्टफलदाः कामे निष्कामानां विमुक्तिदा इति ॥ ८३ ॥

ये यम नियम पांच पांच करके कहेगये । ये निष्काम व्यक्तियोंके मुक्तिविधान और सकाम व्यक्तियोंके विशिष्ट फल उत्पन्न करते हैं । ८३ ॥

स्थिरसुखमासनं पद्मासनभद्रासनवीरासनस्वस्तिकासनदण्डकासनसोपाश्रयपर्य्यंकक्रौंचनिषदनोष्ट्रनिषदनसमसंस्थासम्भेदाद्दशविधम् ।

पादांगुष्ठौ निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ।
ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्र ! कृत्वा पादतले उभे ।
पद्मासनं भवेदेतत सर्वेषामभिपूजितम् ॥ ८४ ॥

पद्मासन, भद्रासन, वीरासन, स्वस्तिकासन, दण्डकासन, सोपाश्रय, पर्यंक, क्रौञ्चनिषदन एवं समसंस्थानभेदसे स्थिर सुखासन दश प्रकारका है उनमें हे विप्रेन्द्र ! दोनो हाथसे व्युत्क्रमानुसार दोनों पैरके अंगूठेसे निबद्ध और पादतल जांघके ऊपर रक्खे तो पद्मासन होगा इन सब आसनोंको सबही उत्तम समझते हैं ॥ ८४ ॥

इत्यादिना याज्ञवल्क्यः पद्मासनादिस्वरूपं निरूपितवान् तत्सर्वं तत एवावगन्तव्यम् । तस्मिन्नासनस्थैर्य्ये सति प्राणायामः प्रतिष्ठितो भवति । स च श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदस्वरूपः । तत्र श्वासो नाम वाह्यस्य वायोरन्तरानयनम् । प्रश्वासः पुनःकोष्ठस्य वहिर्निःसारणम् । तयोरुभयोरपि सञ्चरणाभावः प्राणायामः॥८५॥

इत्यादि विधानसे याज्ञवल्क्यने पद्मासनआदिका स्वरूप निरूपण किया है । वे सबही उसीसे जाने जावेंगे इस आसनके स्थिर होनेपरही, प्राणायाम प्रतिष्ठित होता है । यह प्राणायाम श्वास और प्रश्वास शब्दसे कोष्ठवायुका बाहर निकालना है । इन दोनोंहीके सञ्चरणाभाव को प्राणायाम कहते हैं ॥ ८५ ॥

ननु नेदं प्राणायामसामान्यलक्षणं तद्विशेषेषु रेचकपूरककुम्भकप्रकारेषु तदनुगतेरयोगादिति चेन्नैष दोषः सर्वत्रापि श्वासप्रश्वासगतिविच्छेदसम्भवात् । तथाहि कोष्ठस्य वायोर्वहिर्निःसरणं रेचकः प्राणायामः प्रश्वासत्वेन प्रागुक्तः । वाह्यवायोरन्तर्धारणं पूरकः यः श्वासरूपः । अन्तःस्तम्भवृत्तिः कुम्भकः । यस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणाख्यो वायुरवस्थाप्यते तत्र सर्वत्र श्वासप्रश्वासद्वयगतिविच्छेदोऽस्त्येवेति नास्ति शंकावकाशः। तदुक्तं तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायाम इति ॥ ८६ ॥

यदि कहो कि, यह प्राणायामका सामान्य लक्षण नहीं है, क्योंकि, प्राणायामका प्रकार भेदस्वरूप रेचक, पूरक, और कुम्भक है। उसके अनुगतिका अयोग होता है। इसका उत्तर यह है कि उसमें दोष नहीं है। इसकारण यह है कि सर्वत्रही श्वास प्रश्वासके गति विच्छेद सम्भव होता है उसीप्रकार, कोष्ठवायुके बाहर निकालनेको रेचक कहते हैं । पहिलेही यह बात प्रकारान्तरसे कही गयी है। जैसे प्राणायाम शब्दसे श्वास प्रश्वासके गतिविच्छेदक स्वरूप-है। पुनः बाह्यवायुके अन्तर्धारणको पूरक कहते हैं । इस पूरकको श्वासरूप कहते हैं-और, अन्तः स्तम्भवृत्तिका नाम कुम्भक है। जिसमें घटमें जलकी नाईं प्राणाख्य वायु निश्चलता क्रमसे अवस्थापित होता है इसप्रकार सर्वत्रही श्वास प्रश्वास दोनोंके गतिविच्छेद लक्षित होता है। सुतरां शंकाका अवसर नहीं। उसीप्रकार कहा है, तो श्वास प्रश्वासका गतिविच्छेद प्राणायाम है ॥ ८६ ॥

स च वायुः सूर्य्योदयमारभ्य सार्द्धघटिकाद्वयं घटीयन्त्रस्थितघटभ्रमणन्यायेन एकैकस्यां नाड्यां भवति । एवं सत्यहर्निशं श्वासप्रश्वासयोःषट्शताधिकैकविंशतिसहस्राणि जायन्ते अतएवोक्तं मन्त्रसमर्पणरहस्यवेदिभिरजपामन्त्रसमर्पणे ॥ ८७ ॥

यह वायु सूर्योदयसे आरम्भ करके अढाई घड़ीमें घटीयन्त्र स्थित घटभ्रमणकी नाईं एक एक नाडीमें सञ्चरित होता है। इसप्रकार दिन रातमें २१६०० बार श्वास प्रश्वास चलता है । इसीकारण मन्त्रसमर्पण रहस्य वेदि सम्प्रदाय अजपा मन्त्रसमर्पण प्रसंगमें कहा है ॥ ८७ ॥

षट्शतानि गणेशाय षट्सहस्रं स्वयम्भुवे ।
विष्णवे षट्सहस्रञ्च षट्सहस्रं पिनाकिने ॥ ८८ ॥
सहस्रमेकं गुरवे सहस्रं परमात्मने ।
सहस्रमात्मने चैवमर्पयामि कृतं जपमिति ॥ ८९ ॥

मैं, दिन रात्र जपेहुए ६०० गणेशको ६००० ब्रह्माको ६००० विष्णुको ६००० महादेवको १००० गुरुको १००० परमात्माको एवं १००० आत्म को अर्पण करता हूं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

तथा नाडीसञ्चरणदशायां वायोः सञ्चरणे पृथिव्यादीनि तत्त्वानि वर्णविशेषवशात् पुरुषार्थाभिलाषुकैः पुरुषैरवगन्तव्यानि । तदुक्तमभियुक्तैः ।

सार्द्धं घटीद्वयं नाडीरेकैकार्कोदयाद् वहेत् ।
अरघट्टघटीभ्रान्तिन्यायो नाड्योः पुनः पुनः ॥ ९० ॥

इसप्रकार पुरुषार्थकामुक पुरुषगण नाडी सञ्चरणदशामें वायुके सञ्चरणसमयमें पृथिवीआदि तत्त्वोंको सविशेषतया जानेंगे । पण्डितोंने सो कहा है, सूर्य्यके उदयसे प्रत्येक नाड़ी अढाई घडी घटीभ्रमणकी नाईं चलती है ॥ ९० ॥

शतानि तस्य जायन्ते निःश्वासोच्छ्वासयोर्नव ।
खखषड्द्विकैः संख्याहोरात्रे सकले पुनः ॥ ९१ ॥

दिनरातमें २१६०० वार श्वास प्रश्वास चलता है ॥ ९१ ॥

षट्त्रिंशद्गुणवर्णानां या वेला भणने भवेत् ।
सा वेला मरुतो नाड्यन्तरे सञ्चरतो भवेत् ॥ ९२ ॥

३६ छत्तीस गुणवर्णोके उच्चारणमें जो समय लगता है उतने समयमें नाडीके अन्तरमें वायुका सञ्चार होता है ॥ ९२ ॥

प्रत्येकं पंचतत्त्वानि नाड्योश्च वहमानयोः ।
वहन्त्यहर्निशं तानि ज्ञातव्यानि यतात्मभिः ॥ ९३ ॥

वह मान दोनों नाडियोंमें प्रत्येक पांचतत्त्व अहर्निश प्रवाहित होता है यतात्माओंको यह जानना आवश्यक है ॥ ९३ ॥

ऊर्ध्वं वह्निरधस्तोयं तिरश्चीनः समीरणः ।
भूमिमर्द्धपुटे व्योम सर्वगं प्रवहेत् पुनः ॥ ९४ ॥

उनमे अग्नि ऊपरको जल नीचेको वायु टेढा क्रमसे भूमि आधेपुटमें एवं आकाश सर्वग वहता है ॥ ९४ ॥

वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या व्योम्नस्तत्त्वं वहन् क्रमात् ।
वहन्त्योरुभयोर्नाड्योर्ज्ञातव्योऽयं यथाक्रमम् ॥ ९५ ॥

वायु वन्हि जल पृथ्वी और आकाश इन सबका तत्त्व यथाक्रमसे वहमान दोनों नाडियोंमें प्रवाहित होताहै । यह जानना परम कर्त्तव्यहै ॥ ९५ ॥

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशच्चत्वारिंशत् तथाम्भसः ।
अग्नेस्त्रिंशत् पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥ ९६ ॥

उनमें पृथिवी तत्त्व ५० पल, जलतत्त्व ४० चालीस, अग्नितत्त्व ३० तीस, वायुतत्त्व २० एवं आकाशतत्त्व दशपल चलता है ॥ ९६ ॥

प्रवाहकालसंख्येयं हेतुर्निह्नुलयोरथ ।
पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं चतुर्गुणमथानलः ॥ ९७ ॥

यहां महाहकाळकी संख्या है । पृथिवीके पांच गुण, जलके ४ गुण, अग्निके ॥ ९७ ॥

त्रिगुणो द्विगुणो वायुर्वियदेकगुणं भवेत् ।
गुणं प्रति दशपलान्युर्व्यां पञ्चाशदित्यतः ॥ ९८ ॥

तीन गुण, वायुके दो गुण एवं आकाशके एकमात्र गुण । गुणके प्रतिदशपल । इसलिये पृथिवीमें ५० पञ्चाशत पल निर्दिष्ट हुआ है ॥ ९८ ॥

एकैकहानिस्तोयादेस्तथा पञ्च गुणाः क्षितेः ।
गन्धो रसश्च रूपञ्च स्पर्शः शब्दः क्रमादमी॥ ९९ ॥

गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द यथाक्रमसे इन सबका गुण है। उनमें पृथिवीका पांचगुण । जलआदिका एक एक गुण है ॥ ९९ ॥

तत्त्वाभ्यां भूजलाभ्यां स्यात् शान्तिकार्ये फलोन्नतिः ।
दीप्ता स्थिराधिका कृत्ये तेजो वाय्वम्बरेषु च ॥ १०० ॥

पृथिवीतत्त्व और जलतत्त्व इन दोनों तत्त्वद्वारा शान्तिकार्य्यमें फलोन्नति होती है ॥१००॥

पृथ्व्यप्तेजोमरुद्व्योमतत्त्वानां चिह्नमुच्यते ।
आद्ये स्थैर्यं स्वचित्तस्य शैत्ये कामोद्भवो भवेत् ॥ १०१॥

इन पृथिवीआदि पांचतत्त्वका चिन्ह उल्लिखित होता है । पहिले अपने चित्तकी स्थिरता, शैत्य कामोद्भव ॥ १०१ ॥

तृतीये कोपसन्तापौ चतुर्थे चञ्चलात्मता ।
पञ्चमे शून्यतैव स्यादथवा धर्मवासना ॥ १०२ ॥

तृतीयमें कोप और सन्ताप, चतुर्थमें चञ्चलात्मता एवं पञ्चममें शून्यता या धर्म्मवासना होती है ॥ १०२ ॥

श्रुत्योरङ्गुष्ठौ मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये ।
सृक्कणोः प्रान्त्यकोपान्त्यांगुली शेषे दृगन्तयोः ॥ १०३ ॥

[illegible] दोनों नासापुट, दोनों सृक्कणि (दोनों [illegible] दृगन्त है ॥ १०३ ॥

न्यस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत् क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्बिन्दुभिर्निरुपाधि खम् इत्यादिना ॥ १०४ ॥

[illegible] पृथिवीआदि तत्त्वका ज्ञान होता है ॥ १०४ ॥

यथावद्वायुतत्त्वमवगम्य तन्नियमने विधीयमाने विवेकज्ञानावरणकर्मक्षयो भवति । तपो न परं प्राणायामादिति ।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।

प्राणायामैस्तु दह्यन्ते तद्वदिन्द्रियपन्नगा इति च ॥ १०५ ॥

यथावत् वायुतत्व अवगत होकर, उसके नियमन करनेपर, विवेकज्ञानका आवरण कर्म्म का क्षय (नाश) होता है । प्राणायामकी अपेक्षा उत्कृष्ट तपस्या नहीं । धातुओंके जलानेपर उनका मल जैसे न्यून होजाता वा नष्ट होजाता है उसीप्रकार प्राणायामद्वारा इन्द्रिय पन्नग (सर्प) सब दग्ध होते हैं ॥ १०५ ॥

तदेवं यमादिभिः संस्कृतमनस्कस्य योगिनः संयमप्रत्याहारः कर्त्तव्यः । चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां प्रतिनियतरञ्जनीयकोपनीयमोहनीयप्रवणत्वप्रहाणेनाविकृतस्वरूपप्रवणचित्तानुकारः प्रत्याहारः इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्तेऽस्मिन्निति-व्युत्पत्तेः ॥ १०६ ॥

अतएव उक्तप्रकार, यम नियमादिद्वारा मन संस्कृत होनेपर योगीपुरुष, संयम प्रत्याहारमें प्रवृत्त होवें । उनमें, चक्षुआदि इन्द्रिय सबका प्रतिनियत रञ्जनीय कोपनीय और मोहनीय प्रवणता का परिहाणकेद्वारा अविकृतस्वरूप प्रवणचित्तका अनुकार करनेका नाम प्रत्याहार है । इन्द्रिय आदिकको विषय प्रतीप क्रमसे आहरण किया जाता है इसमें इसकारण इसका नाम प्रत्याहार है । यही प्रत्याहारकी व्युत्पत्ति है ॥ १०६ ॥

ननु तदा चित्तमभिनिविशते नेन्द्रियाणि तेषां बाह्यविषयत्वेन तत्र सामर्थ्याभावादतः कथं चित्तानुकारः अद्धा अतएव वस्तुतस्तस्यासम्भवमभिसन्धाय सादृश्यार्थमिव शब्दं प्रकारं सूत्रकारः स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार इति ॥ १०७ ॥

सादृश्यञ्च चित्तानुकारनिमित्तं विषयासम्प्रयोगः । यदा चित्तं निरुध्यते तदा चक्षुरादीनां निरोधे प्रयत्नान्तरं नापेक्षणीयं यथा मधुकरराजं मधुमक्षिका अनुवर्त्तन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तमिति । तदुक्तं विष्णुपुराणे ।

शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् ।
कुर्य्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायण इति ॥ १०८ ॥

जब चित्तका निरोध किया जाता है. उसीसमय चक्षु आदिके निरोधके लिये प्रयत्नान्तर की अपेक्षा नहीं करनी पडती अर्थात चित्तके निरोध होनेपर सबही निरुद्ध होजाते एवं एकाग्रता होजाती है । इसका दृष्टान्त जैसे मधुमक्षिकागण मधुकरराज (रानी मक्षिका) के अनुवर्ती होती हैं. इन्द्रियभी इसीप्रकार चित्तका अनुकरण वा अनुवर्त्तन करती हैं । विष्णुपुराणमें सो लिखा है । जैसे, योगवित पुरुष प्रत्याहार परायण होकर, शब्दादि विषयसमूहमें अनुरक्त इन्द्रियादिकको निगृहीत करके, चित्तका अनुसारी करे ॥ १०८ ॥

वश्यता परमा तेन जायतेऽतिचलात्मनः ।
इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्योगी योगस्य साधक इति च ॥

नाभिचक्रहृदयपुण्डरीकनाड्यग्रादावाध्यात्मिके हिरण्यगर्भवासवप्रजापतिप्रभृतिके बाह्ये वा देशे चित्तस्य विषयान्तरपरिहारेण स्थिरीकरणं धारणा । तदाह देशबन्धश्चित्तस्य धारणेति । पौराणिकाश्च–

प्राणायामेन पवनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।
वशीकृत्य ततः कुर्य्याच्चित्तस्थानं शुभाश्रयमिति ॥ १०९ ॥

तस्मिन् देशे ध्येयावलम्बनस्य प्रत्ययस्य विसदृशप्रत्ययप्रहाणेन प्रवाहो ध्यानम्। तदुक्तं, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति।

अन्यैरप्युक्तम्—

तद्रूपप्रत्ययैकाग्र्या सन्ततिश्चान्यनिस्पृहा।
तद्ध्यानं प्रथमैरंगैः षड्भिर्निष्पाद्यते तथेति ॥ ११० ॥

उल्लिखित देशमें ध्यानावलम्बन प्रत्ययका विसदृशप्रत्यय प्रहाणद्वारा प्रवाहका नाम ध्यान है। सो कहा है, जैसे, वहां प्रत्ययके एकतानताको ध्यान कहते हैं। अन्यलोगभी कहते हैं, जो इसप्रकार प्रत्ययैकाग्र्य एवं जिसमें विषयान्तरकी स्पृहा नहीं, तादृश सन्ततिकोही ध्यान कहते हैं। प्रथम ६ प्रकार अंगद्वारा सो निष्पादित होता है ॥ ११० ॥

प्रसंगाच्चरममंगं प्रागेव प्रात्यपीपदाम।

तदनेन योगांगानुष्ठानेनादरनैरन्तर्य्यदीर्घकालासेवितेन समाधिप्रतिपक्षक्लेशप्रक्षयेऽभ्यासवैराग्यवशान्मधुमत्यादिसमाधिलाभो भवति ॥ १११ ॥

प्रसङ्गक्रमसे चरम अङ्ग पूर्वहीमें प्रतिपादित हुआ है इसप्रकार आदरनैरन्तर्य्य दीर्घकाल सेवित योगानुष्ठानद्वारा समाधिका प्रतिपक्षक्लेश समूहके प्रक्षय होने पर अभ्यास वैराग्यवशसे मधुमती आदि समाधिलाभ होती है ॥ १११ ॥

अथ किमेवमकस्मादस्मानतिविकटाभिरत्यन्ताप्रसिद्धाभिः कर्णाटगौडलाटभाषाभिर्बिभीषयते भवान् न हि वयं भवन्तं भीषयामहे किन्तु मधुमत्यादिपदार्थव्युत्पादनेन तोषयामः। ततश्चाकुतोभयेन भवता श्रूयतामवधानेन ॥ ११२ ॥

तत्र मधुमती नामाभ्यासवैराग्यादिवशादपास्तरजस्तमोलेश सुखप्रकाशमयसत्त्वभावनयानवद्यवैशारद्यविद्योतनरूपऋतम्भर-

प्रज्ञाख्यासमाधिसिद्धिः । तदुक्तम् ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञेति । ऋतं सत्यं बिभर्त्ति कदाचिदपि न विपर्य्ययेणाच्छाद्यते तत्र स्थितौ दार्ढ्ये सति द्वितीयस्य योगिनः सा प्रज्ञा भवतीत्यर्थः ११३

उनमें अभ्यास और वैराग्य वशतः रजः तमोलेश अपास्त और सुख प्रकाशमय सत्वभावनाका उदय होनेसे, अनवद्य वैशारद्य विद्योतनस्वरूप जो ऋतम्भरा नामकी प्रज्ञा समाधि सिद्ध होती है उसका नाम मधुमती है। ऋतशब्दसे सत्य, एवं उसको भरण करती है या नहीं कभी विपर्य्ययक्रमसे आच्छादन नहीं करती, इस अर्थमें ऋतम्भर हुआ है। उसमें स्थितिक्रमसे दार्ढ्य समुत्पन्न होनेपर द्वितीय योगीका उस प्रज्ञाका सञ्चार होता है। इसका अर्थ है ॥ ११३ ॥

चत्वारः खलु योगिनः प्रसिद्धाः प्रथमकल्पिको मधुभूमिकः प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तभावनीयश्चेति । तत्राभ्यासी प्रवृत्तिमात्रज्योतिः प्रथमः । न त्वनेन परचित्तादिगोचरज्ञानरूपं वै ज्योतिर्वशीकृतमित्युक्तं भवति । ऋतम्भरप्रज्ञो द्वितीयः । भूतेन्द्रियजयी तृतीयः । परवैराग्यसम्पन्नश्चतुर्थः ॥ ११४ ॥

योगी चारप्रकारके हैं, जैसे, प्रथमकल्पिक मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योतिः, एवं अतिक्रान्त भावनीय । इनमें अभ्यासी प्रवृत्तिमात्र ज्योतिः प्रथम है। इनके द्वारा परचित्तादि गोचर (दूसरेके मनकी बात जानना) ज्ञानरूप ज्योतिः वशीकृत नहीं होता । इसप्रकार कहा गया है। ऋतम्भरा प्रज्ञाका नाम द्वितीययोगी. भूतेन्द्रियजयी तृतीययोगी एवं पर वैराग्य संपन्न चतुर्थयोगी है ॥ ११४ ॥

मनोजवीत्वादयो मधुप्रतीकसिद्धयः । तदुक्तं मनोजवित्वं विकरणाभावः प्रधानजयश्चेति । मनोजवित्वं नाम कायस्य मनोवदनुत्तमो गतिलाभः । विकरणाभावः कायनिरपेक्षाणामिन्द्रियाणामभिमतदेशकाल विषयापेक्षवृत्तिलाभः । प्रधानजयः प्रकृतिविकारेषु सर्वेषु वशित्वम् ॥ ११५ ॥

एताश्च सिद्धयः करणपञ्चकस्वरूपजयात् तृतीयस्य योगिनः प्रादुर्भवन्ति । यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदते तथा प्रत्येकमेव ताः सिद्धयः स्वदन्त इति मधुप्रतीका सर्वभावाद्यधिष्ठातृत्वादि-रूपा विशोका सिद्धिः । तदाह, सत्त्वपुरुषान्यताख्या-तिमात्रप्रतिष्ठस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञत्वं चेति । सर्वेषां व्यवसायाव्यवसायात्मकानां गुणपरिणामरूपाणां भावानां स्वामिवदाक्रमणं सर्वभावाधिष्ठातृत्वं तेषामेव शान्तोदिताव्यप-देश्यधर्मित्वेन स्थितानां विवेकज्ञानं सर्वज्ञातृत्वम् । तदुक्तं विशोका वा ज्योतिष्मतीति !! ११६ ॥

ये सब सिद्धि करणपञ्चकस्वरूप जयवशतः आस्वादन कियाजाता है, उसीप्रकार इन सब सिद्धियोंमें प्रत्येक ही आस्वादित होती हैं । यह मधुमती प्रतीकाहि विशोका नामक सिद्धि है । वह सर्व्वभाव वादिके अधिष्ठातृत्व आदि रूप आदिस्वरूप है । उसीप्रकार कहा है, सत्व पुरुषान्यताख्याति मात्रमें प्रतिष्ठित होनेपर, सर्व्वभावाधिष्ठातृत्व और सर्व्व-ज्ञत्व समुत्पन्न होता है । इनमें व्यवसाय और अव्यवसाय ये उभयात्मक गुणका परिणाम स्वरूप सब भावोंका प्रभुतुल्य आक्रमणको सर्वभावाधिष्ठातृत्व कहते हैं, एवं उन्हीं सबके विवेकज्ञानको सर्वज्ञातृत्व कहते हैं ॥ ११६ ॥

सर्ववृत्तिप्रत्यस्तमये परं वैराग्यमाश्रितस्य जात्यादिबीजानां क्लेशानां निरोधसमर्थो निर्बीजः समाधिः असम्प्रज्ञातपदवेद-नीयः संस्कारशेषताव्यपदेश्यः चित्तस्यावस्थाविशेषः । तदुक्तं, विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्य इति ॥ ११७ ॥

एवञ्च सर्वतो विरज्यमानस्य तस्य पुरुषधौरेयस्य क्लेशजातानि च निर्दग्धशालिबीजकल्पानि प्रसवसामर्थ्यविधुराणि मनसा सार्द्धं प्रत्यस्तं गच्छन्ति । तदेतेषु सर्वेतेषु निरूपप्रवाहिक-

ख्यातिपरिपाकवशात् कार्य्यकारणात्मकानां प्रधाने लयः चितिशक्तिस्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसत्ताभिसम्बन्धविधुरा कैवल्यं लभेत इति। सिद्धिद्वयी च मुक्तिरुक्ता पतञ्जलिना। पुरुषार्थशून्यानां प्रतिप्रसवस्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति॥११८॥

इसप्रकार सर्व्वतः विरागसम्पन्न है उसी पुरुषधौरेयका क्लेशबीज समस्त निर्दग्ध शालिबीज सदृश, प्रसव सामर्थ्यहीन होकर मनके अस्तमित होता है। ये सब लीन होनेपर तत्पश्चात् विवेकख्यातिके परिपाकवशात् कार्य्य कारणात्मक भावसमूह प्रधानमें लय प्राप्त होता है। तत्काल चितिशक्तिस्वरूप प्रतिष्ठाभी पुनः बुद्धिसत्ताभि सम्बन्धशून्य होनेपर कैवल्य लाभ होता है पतञ्जलिने दोनों सिद्धियोंको मुक्ति कहा है। जैसे पुरुषार्थ शून्य आदिके प्रति प्रसवस्वरूप प्रतिष्ठा अथवा चितिशक्ति इत्यादि ॥ ११८ ॥

न चास्मिन् सत्यपि कस्मान्न जायते जन्तुरिति वदितव्यं कारणाभावात् कार्य्याभाव इति प्रमाणसिद्धार्थे नियोगानुयोगयोरयोगात्। अन्यथा कारणाभावेऽपि कार्य्यसम्भवे मणिवेधादयोऽन्धादिभ्यो भवेयुः तथाचानुपपन्नार्थतायामाभाणको लौकिक उपपन्नार्थो भवेत्। तथाच श्रुतिः, अन्धोमणिमविन्दत् अविध्यत् तमनंगुलिरावयत् गृहीतवान् अग्रीवः प्रत्यमुञ्चत् पिनद्धवान् तमजिह्वो वा असंस्तुत अभ्यपूजयत् स्तुतवानिति यावत्॥११९॥

इस स्वरूपमेंभी किसकारण जन्तुओंका जन्म नहीं होता ऐसा कहा नहीं जासकता। क्योंकि, कारणाभावसे कार्य्याभाव, इत्यादि प्रमाणसिद्धविषयमें नियोग और अनुयोग दोनोंका अयोग होता है अन्यथा कारणाभावमेंभी कार्य्यसम्भव होनेसे अन्धा आदिभी मणिवेध करसकता। इसीप्रकार श्रुतिमें कहा है. अन्धेने मणिवेध किया। जिसकी अंगुली नहीं, उसने उसको ग्रहण किया। जिसकी ग्रीवा नहीं उसने उसे पहना। जिसकी जिह्वा नहीं उसने उसकी प्रशंसा किई इत्यादि। ११९।

एतस्य चिकित्साशास्त्रवद्योगशास्त्रं चतुर्व्यूहम्। यथा चिकित्साशास्त्रं रोगो रोगहेतुरारोग्यं भेषजमिति तथेदमपि संसारः संसारहेतुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति। तत्र दुःखमयः संसारो हेयः प्रधानपुरु-

षयोः संयोगो हेयभोगहेतुः तस्यात्यन्तिकी निवृत्तिर्हानं तदुपायः सम्यग् दर्शनम् । एवमन्यदपि शास्त्रं यथासम्भवं चतुर्व्यूहमूहनीयमिति सर्वमवदातम् ॥ १२० ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पातञ्जलदर्शनम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार चिकित्साशास्त्रवत् योगशास्त्र चतुर्व्यूह है । रोग, रोगहेतु, आरोग्य और भैषज्य, इन्हीं चारको लेकर जैसे चिकित्सा शास्त्र, उसीप्रकार, संसार, हेतु, मोक्ष और मोक्षोपाय इन चारोंको लेकर योगशास्त्र कल्पित हुआ है । उनमें दुःखमय संसार हेय प्रधान पुरुषका संयोग वही हेय भोगका हेतु, उसकी अत्यन्तिकी निवृत्ति होना एवं उसका उपाय सम्यग् दर्शन है । इसप्रकार अन्यान्य शास्त्र सबभी यथासम्भव चार व्यूहरूपसे विचार लेना इसके आगे सब दर्शनोंमे शिरोमणिस्वरूप शाङ्करदर्शन अन्यत्र लिखा गया इसकारण यहां उसकी उपेक्षा की गयी ॥ १२० ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पातञ्जलदर्शन समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहग्रन्थ समाप्त

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय-मुंबई.